महाकवि स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

(भाग-३)

मूल-सम्पादक

डॉ. एच. सी. भायाणी

एम. ए., पी-एच. डी.

अनुवाद

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन

एम. ए., पी-एच. डी.

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला
अपभ्रंश ग्रन्थांक : ३

प्रथम संस्करण : 1958
द्वितीय संस्करण : 1989

©
भारतीय ज्ञानपीठ

पउमचरिउ, भाग-३
(अपभ्रंश काव्य)

कवि : स्वयंभूदेव
मूल सम्पादक : डॉ. एच. सी. भायाणी
अनुवादक : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

मूल्य : 22/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ,
१८, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नयी दिल्ली-११०००३

मुद्रक
शकुन प्रिंटर्स
पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

PAUMA-CHARIU (PART-III) of Svayambhudeva
Text edited by Dr. H. C. Bhayani and translated by Dr. Devendra Kumar Jain. Published by Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003. Printed at Shakun Printers, Naveen Shahdara, Delhi-110032

Second Edition : 1989 Price : Rs. 22/-

प्रकाशकीय

भारतीय दर्शन, संस्कृति, साहित्य और इतिहास का समुचित मूल्यांकन तभी सम्भव है जब संस्कृत के साथ ही प्राकृत, पालि और अपभ्रंश के चिरागत सुविशाल अपार वाङ्मय का भी अनुसन्धान और मनन हो। इसके साथ ही, यह भी आवश्यक है कि ज्ञान-विज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसंधान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण होता रहे। भारतीय ज्ञानपीठ का उद्देश्य भी यही है।

इस उद्देश्य की आंशिक पूर्ति ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, हिन्दी और अंग्रेजी में, विविध विधाओं में अब तक प्रकाशित १५० से अधिक ग्रन्थों से हुई है। वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन, अनुवाद, समीक्षा, समालोचनात्मक प्रस्तावना, सम्पूरक परिशिष्ट, आकर्षक प्रस्तुति और शुद्ध मुद्रण इन ग्रन्थों की विशेषता है। विद्वज्जगत् और जन-साधारण में इनका अच्छा स्वागत हुआ है। यही कारण है कि इस ग्रन्थमाला में अनेक ग्रन्थों के अब तक कई-कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

अपभ्रंश मध्यकाल में एक अत्यन्त सक्षम एवं सशक्त भाषा रही है। उस काल की यह जनभाषा भी रही और साहित्यिक भाषा भी। उस समय इसके माध्यम से न केवल चरितकाव्य, अपितु भारतीय वाङ्मय की प्रायः सभी विधाओं में प्रचुर मात्रा में लेखन हुआ है। आधुनिक भारतीय भाषाओं—हिन्दी, गुजराती, मराठी, पंजाबी, असमी, बांग्ला आदि की इसे

यदि जननी कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसके अध्ययन-मनन के बिना हिन्दी, गुजराती आदि आज की इन भाषाओं का विकासक्रम भलीभाँति नहीं समझा जा सकता है। इस क्षेत्र में शोध-खोज कर रहे विद्वानों का कहना है कि उत्तर भारत के प्रायः सभी राज्यों में, राजकीय एवं सार्वजनिक ग्रन्थागारों में, अपभ्रंश की कई-कई सौ हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ जगह-जगह सुरक्षित हैं जिन्हें प्रकाश में लाना आवश्यक है। प्रसन्नता की बात है कि इधर पिछले कुछेक वर्षों से विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है। उनके सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप अपभ्रंश की कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाश में भी आई हैं। भारतीय ज्ञानपीठ का भी इस क्षेत्र में अपना विशेष योगदान रहा है। मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ज्ञानपीठ अब तक अपभ्रंश की लगभग २५ कृतियाँ विभिन्न अधिकृत विद्वानों के सहयोग से सुसम्पादित रूप में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर चुका है। प्रस्तुत कृति 'पउमचरिउ' उनमें से एक है।

मर्यादापुरुषोत्तम राम के चरित्र से सम्बद्ध पउमचरिउ के मूल-पाठ के सम्पादक हैं डॉ० एच. सी. भायाणी, जिन्हें इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने का श्रेय तो है ही, साथ ही अपभ्रंश की व्यापक सेवा का भी श्रेय प्राप्त है। पाँच भागों में निबद्ध इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक रहे हैं डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन। उन्होंने इस भाग के संस्करण का संशोधन भी स्वयं कर दिया था। फिर भी विद्वानों के सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ के पथ-प्रदर्शक ऐसे शुभ कामों में, आशातीत धन-राशि अपेक्षित होने पर भी, सदा ही तत्परता दिखाते रहे हैं। उनकी तत्परता को कार्यरूप में परिणत करते हैं हमारे सभी सहकर्मी। इन सबका आभार मानना अपना ही आभार मानना जैसा होगा।

श्रुतपंचमी,
८ जून, १९८९

गोकुल प्रसाद जैन
उपनिदेशक
भारतीय ज्ञानपीठ

विषय-सूची

भाग ३

तैंतालीसवीं सन्धि

युद्धके विनाशका चित्रण ३
सुग्रीवकी चिन्ता ५
सुग्रीवकी विराधितसे भेंट ७
असली और नकली सुग्रीवमें युद्ध ९
रामका आश्वासन ११
किष्किंधा नगरका वर्णन १३
कपटी सुग्रीवके पास रामका दूत भेजना १५
युद्धका श्रीगणेश १५
सुग्रीवोंका द्वन्द्व-युद्ध १९
रामका हस्तक्षेप और धनुष चढ़ाना २१
नकली सुग्रीवकी पराजय २३
विजयी सुग्रीवका अपने नगरमें प्रवेश २३

चवालीसवीं सन्धि

लक्ष्मणका सुग्रीवके पास जाना २५
प्रतिहारका निवेदन २७
सुग्रीवका पश्चात्ताप २९
सुग्रीवकी प्रतिज्ञा २९
जिनकी स्तुति २९
सेनाको सीता खोजनेका आदेश ३१
विद्याधर रत्नकेशीसे भेंट ३३
सीताका समाचार मालूम होनेपर रामकी प्रसन्नता ३५
सुग्रीवका रामसे विवाद प्रस्ताव ३७
रामका उत्तर ३९
सुग्रीवका तर्क और संदेह ३९
रामका सुग्रीवका ढाढ़स देना ४१
जिनकी वंदना ४३

पैंतालीसवीं सन्धि

सुग्रीवका संदेह ४५
रामके दूतका श्रीनगर जाना ४७
श्रीनगरका वर्णन ४७
हनुमानकी दूतसे वार्ता ४९
मंत्रियोंका हनुमानको समझाना ५१
हनुमानका प्रकोप और शांति ५३
लक्ष्मीभुक्ति दूतका उसे समझाना ५३
हनुमानका प्रस्थान ५७

किंकिंध नगरकी सजावट ५७
हनुमानका नगर प्रवेश ५८
राम द्वारा हनुमानका सम्मान ५९
हनुमानका लंकाके लिए प्रस्थान ६३

छियालीसवीं सन्धि

महेन्द्र नगरका वर्णन ६५
राजा महेन्द्रसे युद्ध ६७
महेन्द्रराजकी पराजय ७५
दोनोंकी पहचान और परस्पर प्रशंसा ७७
हनुमानका लंकाकी ओर प्रस्थान ७९

सैंतालीसवीं सन्धि

दधिमुख नगरका वर्णन ८१
राजा दधिमुखकी चिन्ता ८३
उसकी कन्याओंका तपके लिए जाना ८५
उपसर्ग ८५
अङ्गारककी प्रतिज्ञा ८७
वनमें आग ८७
हनुमान द्वारा उपसर्गका निवारण ८९
दधिमुखसे हनुमानकी भेंट ९१

अड़तालीसवीं सन्धि

हनुमान और आशाली विद्यामें संघर्ष ९३
द्वारपालोंसे भिड़न्त ९७
लंका सुन्दरीसे युद्ध १०१
एक दूसरेको प्रेमोदय १०७
लंकासुन्दरीसे विदा १०९

उनचासवीं सन्धि

हनुमानकी विभीषणसे भेंट १११
रामादिका उससे संदेश कहना ११३
विभीषणकी चिन्ता ११७
सीताकी खोज ११९
सीताका दर्शन और उसकी कृशताका वर्णन ११९
अंगूठीका गिराना १२३
मन्दोदरीका सीताको फुसलाना १२५
सीताका कड़ा उत्तर १२७
मन्दोदरीका प्रकोप १३१
हनुमान द्वारा मन-ही-मन सीता देवीकी सराहना १३१
हनुमानकी मन्दोदरीसे झड़प १३३
मन्दोदरीका क्रुद्ध होना १३५

पचासवीं सन्धि

हनुमानका सीतासे रामकी कुशलता और संदेश कहना १३७
सीता द्वारा हनुमानकी परीक्षा १३९
हनुमानका उत्तर १४१

प्रभात वर्णन १४३
त्रिजटाका सपना १४७
सपनेके भिन्न-भिन्न अभिप्राय १४७
लंकासुन्दरीका हनुमानकी खोज करना १४६
सीता देवीका भोजन १५१
हनुमानका सीताको ले चलनेका प्रस्ताव १५१
सीता देवीका रामके प्रति संदेशा १५३

इक्यावनवीं सन्धि

हनुमान द्वारा उत्पात १५५
उद्यानोंको भग्न करना १५७
दंष्ट्रावलिकी हार १६१
कृतान्तवक्त्रसे युद्ध १६३
रावणको उद्यानके नष्ट होनेकी सूचना १६५
मंदोदरीकी चुगली १६७
रावणका हनुमानको पकड़नेका आदेश १६७
हनुमानसे सैनिकोंकी भिड़न्त १६६

बावनवीं सन्धि

अक्षयकुमारका युद्धके लिए प्रस्थान १७५
अपशकुन १७५
हनुमानसे टक्कर १७७
दोनोंमें विद्या युद्ध १८३

तिरपनवीं सन्धि

विभीषणका रावणको समझाना १८६
मेघनादका विरोध १६१
मेघनाद और हनुमानमें संघर्ष १६३
घमासान युद्ध १६७
विद्यायुद्ध १६६
इन्द्रजीतका युद्धमें प्रवेश २०१
हनुमानका बन्दी होना २०३

चउवनवीं सन्धि

सीतादेवीकी चिन्ता २०७
हनुमान और रावणमें वार्ता २०७
बारह अनुप्रेक्षाओंका वर्णन २०६

पचपनवीं सन्धि

रावणका मानसिक द्वंद २२३
हनुमानके वधका आदेश २२७
राजप्रासादका पतन २२६
हनुमानकी वापसी २३१
यात्राका विवरण २३३
दधिमुख द्वारा हनुमानकी प्रशंसा २३५

छप्पनवीं सन्धि

अभियानकी तैयारी	२३६
योधाओंकी साज-सज्जा	२३६
योधाओंकी गर्वोक्ति	२४२
विद्याएँ	२४५
शुभशकुन	२४५
प्रस्थान	२४७
सेतु और समुद्र द्वारा प्रतिरोध	२४७
भिड़न्त	२५१
हंसद्वीपमें पहुँचकर पड़ाव डालना	२५२

[३]

पउमचरिउ

•

पउमचरिउ

[४३. तियालीसमो संधि]

एहएँ अवसरें किक्किन्धपुरें [illegible]
सुग्गीवहों विड-सुग्गीउ रणें तारा-कारणें अब्भिडिउ ॥

[१]

पडिवक्खु जिणेवि ण सक्कियउ । छिद्दाणउ माण-कलङ्कियउ ॥१॥
णं हियवएँ सूलें सल्लियउ । माया-सुग्गीवें वञ्चियउ ॥२॥
सुग्गीउ भमन्तु वणेण वणु । संपाइउ खर-दूसणहँ रणु ॥३॥
बलु दिट्ठु सयलु सर-जज्जरिउ । तिल-मेत्तु खुरुप्पेंहिँ कप्परिउ ॥४॥
कत्थइ सन्दण सय-खण्ड किय । कत्थइ तुरङ्ग णिज्जीव थिय ॥५॥
कत्थवि लोट्टाविय हत्थि-हड । कत्थइ सउणेंहिँ खज्जन्ति भड ॥६॥
कत्थइ छिण्णइँ धय-चिन्धाइँ । कत्थइ णच्चन्ति कबन्धाइँ ॥७॥
कत्थइ रह-तुरय-गयासणइँ । छिप्पन्ति समरें सुणासणइँ ॥८॥

घत्ता

तं तेहउ किक्किन्धेसरेंण भय-भीसावणु दिट्ठु रणु ।
उम्मेट्ठें लक्खण-गयवरेंण णं विद्धंसिउ कमल-वणु ॥९॥

[२]

रणु भीसणु जं जें णियच्छियउ । खर-दूसण-परियणु पुच्छियउ ॥१॥
'इसु काइँ महन्तउ अच्छरिउ । बलु सयलु केण सर-जज्जरिउ' ॥२॥
तं वयणु सुणेंवि दूमिय-मणेंण । वुच्चइ खर-दूसण-परियणेंण ॥३॥
'को वि दसरहु तहों सुअ वेण्णि जण । वण-वासें पइट्ठ विसण्ण-मण ॥४॥
सोमित्ति को वि चित्तेण थिउ । तें सम्बुकुमारहों खुडिउ सिरु ॥५॥

पद्मचरित

तैंतालीसवीं सन्धि

ठीक इसी अवसरपर किष्किंधपुरमें राजा सहस्रगति बनावटी सुग्रीव बनकर असली सुग्रीवपर उसी प्रकार टूट पड़ा जैसे एक हाथी दूसरे हाथीपर टूट पड़ता है।

(१) असली सुग्रीव अपने प्रतियोगी (नकली सुग्रीव) को नहीं जीत पाया। अपना मान कलंकित होनेसे वह म्लान हो रहा था। माया सुग्रीवका पराभव उसके हृदयमें काँटे जैसा चुभ रहा था। वनोंवन भटकता हुआ वह खर-दूषणके युद्धमें पहुँच गया। उसने वहाँ देखा कि सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। वह तीरों और खुरपोंसे तिल-तिल काटी जा चुकी है। कहीं रथोंके सैकड़ों टुकड़े पड़े थे, कहींपर निर्जीव अश्व थे, कहींपर गजघटा लोट-पोट हो रही थी, कहींपर पक्षि-समूह योधाओंके शव खा रहे थे, कहींपर ध्वजचिह्न छिन्न-भिन्न पड़े हुए थे, कहींपर धड़ नृत्य कर रहे थे और कहींपर रथ, अश्व और गजोंके आसन शून्यासनकी तरह घूम रहे थे। किष्किंधराज सुग्रीवने जब उस भयभीषण युद्धको देखा तो उसे ऐसा लगा मानो लक्ष्मण रूपी महागजने (घुसकर) कमलवनको ही ध्वस्त कर दिया हो ॥१–९॥

[२] उस भीषण रणको देखकर उसने खर-दूषणके सगे सम्बन्धियोंसे पूछा, "यह कैसा आश्चर्य, किसने सेनाको इस तरह जर्जर कर दिया।" यह सुनकर खर-दूषणके एक सम्बन्धीने भारी हृदयसे कहा कि "राम और लक्ष्मण नामक, दशरथके दो पुत्र वनवासके लिए आये हैं। उनमें लक्ष्मण अत्यन्त दृढ़ मनका है और

असि-रयणु लइउ तियसहुँ वलिउ । चन्दणहिहेँ ओव्वणु दरमलिउ ॥६॥
कूवारेँ गय खर-दूसणहुँ । अजयहुँ जय-लच्छि-विहूसणहुँ ॥७॥
अब्भिट्ट ते वि सहुँ लक्खणेण । तेण वि दोहाविय तक्खणेण ॥८॥

घत्ता

केण वि मणेँ अमरिस-कुद्धएँण हिय गेहिणि वणेँ राहवहाँ ।
पाडिउ जडाइ लमान्तु कुद्धेँ एत्तिउ कारणु आहवहाँ' ॥९॥

[२]

एहिय णिसुणेँ वि संगाम-गइ । चिन्ताविउ किक्किन्धाहिवइ ॥१॥
'किर पइसमि गम्पि जासु सरणु । किउ दइवेँ तहु मि णवर मरणु ॥२॥
एवहिँ अवसरेँ को संभरमि । किं हणुवहों सरणु पईसरमि ॥३॥
तेण वि रिउ जिणेँ वि ण सक्कियउ । पच्चेल्लिउ हउँ णिरत्थु कियउ ॥४॥
किं अब्भत्थिज्जइ दहवयणु । णं णं तिय-लम्पडु लुद्ध-मणु ॥५॥
अहवइ विणिवाएँवि वे वि जण । सहुँ रज्जेँ अप्पणु लेइ धण ॥६॥
खर - दूसण - देह - विमद्दणहुँ । वरु सरणु जामि रहु-णन्दणहुँ' ॥७॥
चिन्तेविणु किक्किन्धाहिवेँण । हक्कारिउ मेहणाउ णिवेँण ॥८॥
'तं गम्पि विराहिउ एम भणु । पुच्छइ सुग्गीउ आउ सरणु ॥९॥
पिय-वयणेँहिँ दूउ विसज्जियउ । गउ मच्छर-माण-विवज्जियउ ॥१०॥
पायाल-लङ्क-पुरेँ पइसरेँ वि । तेँ वुत्तु विराहिउ ओहरेँवि ॥११॥

घत्ता

'सुग्गीउ सुतारा-कारणेँण विड-सुग्गीवेँ घल्लियउ ।
किं पइसरहु किं म पइसरउ तुम्हहँ सरणु समल्लियउ' ॥१२॥

उसने शम्बूककुमारका सिर काट डाला है और बलपूर्वक उसने देवोंका सूर्यहास खड्ग छीन लिया है। उसीने चन्द्रनखाका यौवन दलित किया है जिससे रोती-बिसूरती हुई वह, जय-लक्ष्मी से विभूषित खर और दूषण के पास आयी। तब वे दोनों आकर लक्ष्मण से भिड़ गए। परन्तु उसने तत्काल इनके दो टुकड़े कर दिये। इतने में अमर्षसे भरकर किसीने राम की पत्नी सीता देवी का अपहरण कर लिया और पीछा करते हुए जटायु को मार गिराया। युद्ध का यही कारण है। ।।१-९।।

[३] युद्धकी यह हालत सुनकर सुग्रीव इस चिन्तामें पड़ गया कि क्या मैं उनकी (राम-लक्ष्मण की) शरणमें चला जाऊँ। हाय विधाता! तूने केवल मुझे मौत नहीं दी। इस अवसर पर मैं किसे स्मरण करूँ? क्या हनुमानकी शरणमें जाऊँ? परन्तु वह भी शत्रुको नहीं जीत सकता। उल्टा मैं निरस्त्र कर दिया जाऊँगा। क्या रावण से अभ्यर्थना करूँ? नहीं नहीं। वह मनका लोभी और स्त्री का लंपट है। वह हम दोनों (असली और नकली) को मार-कर राज्यसहित स्त्रीको भी ग्रहण कर लेगा। अतः खर-दूषण का मान-मर्दन करनेवाले राम और लक्ष्मण की शरण में जाना ही ठीक है। यह सब सोच-विचार कर किष्किन्धापुरनरेश सुग्रीवने मेघनाद दूतको पुकारा, और यह कहा, "जाकर विराधितसे कहो कि सुग्रीव शरणमें आ गया है।" इस प्रकार प्रिय वचनोंसे उसने दूतको विसर्जित किया। वह दूत भी मान और मत्सर से रहित होकर गया। पाताल-लंका नगर में प्रवेश कर, उसने अभिवादन के साथ, विराधितसे पूछा, "सुतारा को लेकर मायासुग्रीव से पराजित असली सुग्रीव आपकी शरणमें आया है। उसे प्रवेश दूं या नहीं?" ।।१-१२।।

[४]

तं णिसुणेंवि हरिस-पसाहिएण । 'पइसरउ' पवुत्तु विराहिएण ॥१॥
'हउँ धण्णउ जसु किक्किन्धराउ । अहिमाणु मुएप्पिणु पासु आउ' ॥२॥
संमाणिउ राउ पल्लट्टु हूउ । पइसारिउ पहु आणन्दु हूउ ॥३॥
तं तुरहँ सद्दु सुणेवि तेण । सो वुत्तु विराहिउ राहवेण ॥४॥
'सहुँ साहणेण कम्पइय-देहु । आवन्तउ दीसइ कवणु एहु' ॥५॥
तं णिसुणेंवि [illegible] । [illegible] चन्दोयर-णन्दणेण ॥६॥
'सुग्गीव-वालि हुय भाइ बे वि । वड्डारउ गउ पव्वज्ज लेवि ॥७॥
एहु वि जिणेंवि केण वि खलेण । वण-वासहोँ घल्लिउ भुअ-बलेण ॥८॥

घत्ता

वर-वाणर-धउ सूरस्य-सुउ तारा-वल्लहु विउलमइ ।
जो सुव्वइ कहि मि कहाणएँ हिँएँहु सो किक्किन्धाहिवइ' ॥९॥

[५]

स-विराहिय लक्खण-रामएव । बोल्लन्ति परोप्परु जाव एव ॥१॥
तिण्णि मि सुग्गीवें दिट्ठ केम । आगमेंण तिलोअ तिकाय जेम ॥२॥
चउ दिस-णाय एक्कहिँ मिलिय णाइँ । वइसारिय णरवइ जम्बवाइ ॥३॥
संमाणेंवि पुच्छिय लक्खणेण । 'तुम्हहँ अवहरिउ कलत्तु केण' ॥४॥
तं वयणु सुणेंवि सव्वहुँ महन्तु । णमियाणणु पभणइ जम्बवन्तु ॥५॥
'वण-कालएँ गउ सुग्गीउ जाम । थिउ पइसेंवि विडसुग्गीउ ताम ॥६॥
थोवन्तरेँ वालि-कणिट्ठु आउ । सामन्त - मन्ति - मण्डल-सहाउ ॥७॥
णउ जाणिउ विण्हि मि कवणु राउ । मणेँ विब्भउ सव्वहोँ जणहोँ जाउ ॥८॥

[४] यह सुनकर विराधितने हर्षपूर्वक कहा, "भीतर ले आओ। सचमुच मैं धन्य हुआ कि जो किष्किधानरेश, स्वयं अभिमान छोड़कर मेरी शरणमें आये।" तब सम्मानित होकर दूत वापस गया और आनन्दके साथ अपने स्वामीको लेकर फिर आया। इतनेमें तूर्य-ध्वनि सुनकर राघवने विराधितसे पूछा, "सेना लेकर यह कौन रोमांचित होकर आता हुआ दीख पड़ रहा है।" यह सुनकर, नेत्रानंददायक चन्द्रोदर पुत्र विराधितने कहा, कि सुग्रीव और बालि ये दो भाई-भाई हैं। उनमेंसे बड़ा भाई संन्यास लेकर चला गया है। और इसको किसी दुष्टने पराजय देकर वनवासमें डाल दिया है। यह, सूरजका पुत्र, विमलमति ताराका स्वामी और वानरध्वजी, वही सुग्रीव है जिसका नाम कथा-कहानियोंमें सुना जाता है ॥१-६॥

[५] इस प्रकार राम-लक्ष्मण और विराधितमें बातें हो ही रही थीं कि इतनेमें उन्होंने सुग्रीवको वैसे ही देखा जैसे आगम त्रिलोक और त्रिकाल को देखते हैं। आते हुए वे ऐसे लगे मानो चारों दिग्गज एक साथ मिल गये हों। जाम्बवन्तने उन्हें बैठाया। तदनन्तर आदर पूर्वक लक्ष्मणने सुग्रीवसे पूछा कि तुम्हारी पत्नी का अपहरण किसने किया। यह सुनकर जाम्बवन्त अपना माथा झुकाकर सारा वृत्तान्त सुनाने लगा। (उसने कहा) कि जब सुग्रीव वनक्रीड़ा करनेके लिए गया था तो माया सुग्रीव उसके घरमें घुसकर बैठ गया। बालिका अनुज सुग्रीव जब अपने मन्त्रियोंके साथ घर लौटा तो कोई भी यह पहचान नहीं कर सका कि उन दोनोंमें असली राजा कौन है। सबके मनमें आश्चर्य हो रहा था। इतनेमें कुतूहल-जनक दो सुग्रीव देखकर, असली सुग्रीवकी सेना हर्षसे

घत्ता

सुग्गीव-जुअलु कोड्डावणउ पेक्खेँवि रहस-समुच्छलिउ ।
बलु अद्धउ सुग्गीवहोँ तणउ मायासुग्गीवहोँ मिलिउ ॥९॥

[६]

एत्तहेँ वि सत्त अक्खोहणीउ । एत्तहेँ वि सत्त अक्खोहणीउ ॥१॥
थिउ साहणु अद्धोवद्धि होवि । अङ्गङ्ग णिहञ्चिय सुहड बे वि ॥२॥
मायासुग्गीवहोँ मिलिउ अद्धु । अक्कन्द सुग्गीवहोँ रणेँ अभग्गु ॥३॥
विहिँ सिमिरेँहिँ वे वि सहन्ति भाइ । णिसि-दिवसेँहिँ चन्दाइच्च णाइँ ॥४॥
एत्तहेँ वि तार विप्फुरिय-वयणु । सुउ वालिहेँ णामेँ चन्दकिरणु ॥५॥
थिउ ताराहेँ रक्खणु अभउ देवि । "जइ ढुक्कहो तो महु मरहोँ बे वि ॥६॥
जुज्झन्तु जिणेसइ जो वि अज्जु । तहोँ सयलु स-तारउ देमि रज्जु" ॥७॥
विहि एक्कु वि णउ पइसारु लहइ । पल-णाळहुँ पुणु सुग्गीउ कहइ ॥८॥
"सच्चउ आहाणउ एहु आउ । परचारिउ जि घर-सामि जाउ" ॥९॥
असहन्त परोप्परु ढुक्क बे वि । णिय-णिय-करवालइँ करेँहिँ लेवि ॥१०॥

घत्ता

किर जाम भिडन्ति भिडन्ति ण वि ताव णिवारिय वारएँहिँ ।
मुक्कुस मत्त गइन्द जिह ओसारिय कण्णारएँहिँ ॥११॥

[७]

ओसारिय जं पुरवर-जणेण । थिय णयरहोँ उत्तर-दाहिणेण ॥१॥
अण्णेक्क-दियहेँ जुज्झन्ति जाम । पवणञ्जय-णन्दणु कुविउ ताम ॥२॥
"मरु मरु सुग्गीवहोँ मलिउ माणु" । सण्णहेवि सुहड-साहण-समाणु ॥३॥
"हणु हणु" भणन्तु हणुवन्तु पत्तु । पभणइ णिरु रहसुच्छलिय-गत्तु ॥४॥
"सुग्गीव माम मा मणेण मुज्झु । विड-भडहोँ पडीवउ देहि जुज्झु ॥५॥

उछलती हुई (दो भागों में विभक्त हो गई।) आधी असली सुग्रीव के पास रही और आधी नकली सुग्रीव से जा मिली ॥ १-६ ॥

[६] सात अक्षौहिणी सेना इधर थी और सात ही उधर। इस प्रकार वह आधी-आधी बट गई। अंग और अंगद दोनों वीर विघटित हो गये। अंग मायासुग्रीव को मिला और अभंग अंगद असली सुग्रीव को। दोनों शिविरोंमें वे दोनों भाई वैसे ही सोह रहे थे जैसे रात और दिनमें चन्द्र और सूर्य सोहते हैं। बालि के पुत्र वीर चन्द्र-किरणका चेहरा भी (क्रोध से) तमतमा उठा। वह अभय देकर तारा देवी की रक्षा करने लगा। उसने कहा—"यदि तुम इसके पास आये तो मारे जाओगे। युद्धरत तुममें से जो जीतेगा उसे मैं तारादेवी सहित समस्त राज्य अर्पित कर दूंगा।" परन्तु उन दोनोंमें से एक भी युद्धमें प्रवेश नहीं पा रहा था। इतने में सुग्रीवने नल और नीलसे कहा कि यह तो वही कहानी सच होना चाहती है कि कोई (दूसरा ही) परस्त्री लम्पट गृह-स्वामी होना चाहता है। एक दूसरे को सहन न करते हुए वे लोग अपनी-अपनी तलवारें लेकर एक-दूसरे के निकट पहुँचे। वे आपसमें लड़नेवाले ही थे कि द्वाररक्षकोंने उन्हें उसी प्रकार हटा दिया जिस तरह निरंकुश उन्मत्त गजोंको महावत हटा देते हैं ॥ १-६ ॥

[७] इस प्रकार नगरके लोगों के हटा देनेपर वे दोनों नगर के उत्तर-दक्षिणमें स्थित होकर लड़ने लगे। जब लड़ते-लड़ते बहुत दिन व्यतीत हो गये तो हनुमान सहसा कुपित हो उठा। 'मरमर' "(बनावटी) सुग्रीव का मानमर्दन हो" यह कहकर वह सुभट सेना के साथ सन्नद्ध हो गया। और "मारो मारो" कहता हुआ वह वहां जा पहुँचा। उसका शरीर वेग और हर्षसे उछल रहा था। उसने कहा—"मामा सुग्रीव, अपने मनमें खिन्न न होओ। माया

जइ ण वि भञ्जमि भुअ-दण्ड तासु । तो ण होमि पुत्तु पवणञ्जयासु'' ॥६॥
तं वयणु सुणेंवि किक्किन्धराउ । तहों उप्परि गलगज्जन्तु आउ ॥७॥
ते भिडिय बे वि कप्पद्दुय-देह । णव-पाउसें णं जल-भरिय-मेह ॥८॥

घत्ता

असि-चाव-चक्क-गय-मोग्गरेंहिँ जिह सक्किउ तिह जुज्झाउ ।
हणुवन्ते अञ्जणासेण जिह अप्पउ परु वि ण बुज्झाउ ॥९॥

[८]

जं बिहि मि मज्झें एक्कु वि ण भग्गउ । गउ मल्ले वि पडीवउ पवणजाउ ॥१॥
सुग्गीउ वि पाण लएवि णट्ठु । णं मयगलु केसरि-घाय-तट्ठु ॥२॥
किर पइसइ खर-दूसणहँ सरणु । किउ खयर कियन्तें तहु मि मरणु ॥३॥
तहिँ णिसुणिय तुम्हहँ तणिय वत्त । जिह चउदह सहसेक्कहों समत्त ॥४॥
सो वरि सुग्गीवहों करें परित्त । सरणाइउ रक्खहि परम-मित्त' ॥५॥
जं हरि अब्भत्थिउ जम्बवेण । सुग्गीउ वुत्तु पुणु राहवेण ॥६॥
'तुहुँ महु आसण्णें वि आउ पासु । अक्खहि हउँ सरणउ जामि कासु ॥७॥
जिह तुहुँ तिह हउँ मि कलत्त-रहिउ । वणें हिण्डमि काम-गहेण गहिउ' ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवें वुच्चइ 'देव सुणें कुसल-वत्त सीयहें तणिय ।
जइ णाणमि तो सत्तमऍ दिणें पइसमि जलणें हुआसणिय' ॥९॥

[९]

जं जाणइ - केरउ लइउ णामु । तं विरह - विसन्थुलु भणइ रामु ॥१॥
'जइ आणहि कन्तहें तणिय वत्त । तो वयणु महारउ णिसुणि मित्त ॥२॥

सुग्रीवसे लड़ो। यदि मैं आज उसके भुजदण्डको भग्न न कर दूँ तो मैं अञ्जनादेवीका पुत्र न कहलाऊँ।" यह सुनकर किष्किन्ध-राज सुग्रीव गरजता हुआ उसपर दौड़ा। पुलकित होकर वे दोनों ऐसे भिड़ गये मानो नव वर्षाकालमें नव मेघ ही उमड़ पड़े हों। तलवार, चाप, चक्र, गदा, मुद्गर, जिससे भी सम्भव हो सका, वे लड़ने लगे। परन्तु हनुमान भी उनमेंसे असली नकली सुग्रीवकी पहचान नहीं कर सका, जिस प्रकार अज्ञानी जीव स्व-परका विवेक नहीं कर पाता ॥१-६॥

[८] हनुमान जब दोनोंमेंसे एककी भी पहचान नहीं कर सका तो वह भी वापस चला आया। तब असली सुग्रीव भी अपने प्राण लेकर इस प्रकार भागा मानो सिंहकी चपेटसे मद-माता गज ही भागा हो। वहाँसे वह खर-दूषणकी शरणमें गया। किन्तु रामने उन्हें पहले ही समाप्त कर दिया था। वहीं पर उसने आप लोगोंके विषयमें यह खबर सुनी कि अकेले लक्ष्मणने (खर दूषणके) अठारह हजार योधाओंको किस प्रकार समाप्त कर दिया। इस लिए अच्छा हो आप ही असली सुग्रीवकी रक्षा करें। हे परम मित्र! आप शरणागतकी रक्षा करें।" इस प्रकार जाम्बवन्तके प्रार्थना करनेपर राघवने सुग्रीवसे कहा—"मित्र, तुम तो मेरे पास आ गये, पर मैं किसके पास जाऊँ। जैसे तुम, वैसे मैं भी स्त्री-वियोगमें कामग्रहसे गृहीत हूँ। और जङ्गल-जङ्गलमें भटक रहा हूँ।" इसपर सुग्रीवने कहा—"हे देव! सुनिए, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं सातवें दिन सीतादेवीका वृत्तान्त लाकर न दूँ तो चितामें प्रवेश करूँ" ॥१-९॥

[९] जब उसने जानकीका नाम लिया तो रामने विरहसे व्याकुल होकर कहा, "यदि तुम सीताकी वार्ता लाकर दो तो

सत्तमएँ दिवसेँ एन्तहउ मुज्झु । करेँ लायमि ताराएवि गुज्झु ॥३॥
सुआवमि तं किक्किन्ध-णयरु । रक्खवमि छत्त-धय-दण्ड-पवरु ॥४॥
अण्णु मि तुह केरउ हणमि सत्तु । परिरक्खइ जइ वि कियन्त-मित्तु ॥५॥
बम्भाणु भाणु गहाहिसेउ । अङ्गारउ ससहरु राहु केउ ॥६॥
तहु विहप्फइ सुक्कु सणिच्छरो वि । जमु वरुणु कुबेरु पुरन्दरो वि ॥७॥
एत्तिय मिलेवि रक्खन्ति जो वि । जीवन्तु ण छुट्टइ वइरि तो वि ॥८॥

घत्ता

जइ पइज्ज ण पूरमि एन्तडिय जइ ण करमि सयणहुँ दिहि ।
सत्तमएँ दिवसेँ सुग्गीव महु पत्तिय तो सण्णास-विहि' ॥९॥

[१०]

सीराउहु पइज्जारूढु जं जेँ । संचल्लु असेसु वि सिमिरु तं जेँ ॥१॥
संचल्लु विराहिउ दुण्णिवारु । सुग्गीउ रामु लक्खण-कुमारु ॥२॥
ते चलिय चयारि वि परम-मित्त । णावइ कलि-काल-कयन्त-मित्त ॥३॥
णं चलिय चयारि वि दिस-गइन्द । णं चलिय चयारि वि खय-समुद्द ॥४॥
णं चलिय चयारि वि सुर-णिकाय । णं चलिय चवल चउविह कसाय ॥५॥
णं चलिय चयारि विरिञ्चि-वेय । उवयाण-दण्ड णं साम-भेय ॥६॥
अह वण्णिएण किं एत्तडेण । णं चलिय चयारि वि अप्पणेण ॥७॥
थोवन्तरेँ तरल-तमाल-छण्णु । जिण-धम्मु जेम सावय-रवण्णु ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवेँ रामेँ लक्खणेँण गिरि किक्किन्धु विहावियउ ।
पिहिमिएँ उब्भाएँवि सिर-कमलु मउडु णाइँ दरिसावियउ ॥९॥

[११]

थोवन्तरेँ धूण-कञ्चण-पउरु । लक्खिज्जइ तं किक्किन्धणयरु ॥१॥
णं णहयलु तारा-मण्डियउ । णं कव्वु कइद्धय-चड्डियउ ॥२॥

हे मित्र, सुनो! मैं सातवें दिन तुम्हारी स्त्री तारादेवीको ला दूंगा, यह समझ लो। तुम्हें किष्किंधानगर का भोग कराऊँगा और छत्र तथा सिंहासन दिखाऊँगा। इसके सिवा तुम्हारे शत्रु का नाश कर दूंगा। चाहे वह अपने मित्र कृतान्त द्वारा भी रक्षित क्यों न हो। ब्रह्मा, सूर्य, ईश्वर, वह्नि, चन्द्रमा, राहु, केतु, बुध, बृहस्पति, गुरु, शनीचर, यम, वरुण, कुबेर और पुरंदर, ये भी मिलकर यदि उसकी रक्षा करें तो भी वह तुम्हारा शत्रु मुझसे जीवित नहीं बचेगा। यदि मैं इतनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता और सज्जनों को धीरज नहीं बँधाता तो हे सुग्रीव, विश्वास करो, मैं सातवें दिन संन्यास ले लूंगा॥ १-९॥

[१०] प्रतिज्ञा पर आरूढ़ होकर जब श्रीराघव चले, तो उनका अशेष सैन्यदल भी चल पड़ा। दुर्निवार विराधित भी चला। सुग्रीव, राम, कुमार, लक्ष्मण ये चारों मित्र ऐसे चले मानो कलि-काल और कृतान्तके मित्र ही चले हों। मानो चारों ही दिग्गज चल पड़े हों या मानो चारों क्षयसमुद्र ही चलित हो उठे हों, या चारों देवनिकाय ही चल पड़े हों, या चारों कषाय ही चलित हो उठे हों। या ब्रह्मा के चारों वेद ही चल पड़े हों या साम, दान, दंड और भेद जा रहे हों। अथवा इतने सब वर्णन से क्या लाभ, वे चारों अपनी ही उपमा बनकर चले। थोड़ी ही दूर चलने पर उन्होंने (सुग्रीव-राम-लक्ष्मण-विराधितने) किष्किंध पर्वत देखा। तरल तमाल वृक्षों से आच्छन्न वह पर्वत, जिनधर्म की तरह सावयों [श्रावक और वृक्षविशेष] से सुन्दर था, और जो ऐसा लगता था मानो भूमिके उच्च सिर-कमल पर मुकुट रखा हो

[११] थोड़ी दूर पर उन्हें धन-कंचन से भरपूर किष्किंध-नगर दिखाई दिया। वह ऐसा लगता था मानो तारों से मंडित आकाश हो या कपिध्वजों से आरूढ़ काव्य हो। मानो हनु (हनुमान या चिबुक) से विभूषित मुखकमल हो। मानो नल

णं हणुअ-विहूसिउ मुह-कमलु । विहसिउ सयवत्तु णाइँ स-णालु ॥३॥
णं णीलालङ्किउ आहरणु । णं कुन्द-पसाहिउ विउल-वणु ॥४॥
सुग्गीव-कन्तु णं हंस-सिरु । णं झाणु मुणिन्दहुँ तणउ थिरु ॥५॥
माया-सुग्गीवें मोहियउ । कुसलेण णाइँ कामिणि-हियउ ॥६॥
एत्थन्तरें वड्ढिय-कलयलेहिँ । जम्बव-कुन्देन्दणील-णलेहिँ ॥७॥
सोमित्ति-विराहिय-राहवेंहिँ । सव्वेंहिँ णिव्वूढ-महाहवेंहिँ ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवहों मिहुरें समावडिएँ बहु-संमाण-दाण-मणेंहिँ ।
वेढिज्जइ तं किक्किन्धपुरु णं रवि-मण्डलु णव-घणेंहिँ ॥९॥

[१२]

वेढेप्पिणु पट्टणु णिरवसेसु । पट्ठविउ दूउ विड-भडहों पासु ॥१॥
सुग्गीवें रामें लक्खणेंण । सन्देसउ पेसिउ तक्खणेंण ॥२॥
'किं बहुणा कहइ परमत्थु तासु । जिम भिडु जिम पाण लएवि णासु' ॥३॥
तं वयणु सुणेवि कप्पूरचन्दु । संचल्लु णाइँ खयकाल-इन्दु ॥४॥
दुक्कउ माया-सुग्गीउ जेत्थु । सह-मण्डवेँ दूउ पइट्ठु तेत्थु ॥५॥
जो पेसिउ रामें लक्खणेंण । सन्देसउ अक्खिउ तक्खणेंण ॥६॥
'एउ णासइ अज्जु वि एउ कज्जु । कहों तणिय तार कहों तणउ रज्जु ॥७॥
पहु पाण लएप्पिणु णासु णासु । जीवन्तु ण छुट्टहि अवसु तासु ॥८॥

घत्ता

सन्देसउ विड-सुग्गीव सुणें पुणरवि सुग्गीवहों तणउ ।
सहुँ सिर-कमलेण तुहारएण रज्जु लएव्वउ अप्पणउ' ॥९॥

[१३]

तं वयणु सुणेवि वयणुब्भडेंण । आरुट्ठें दुट्ठें विड-भडेंण ॥१॥
आएसु दिण्णु णिय-साहणहों । 'सिरथारहों मारहों आहणहों ॥२॥

(नाल या सरोवर) से सहित कमल हंस रहा हो। मानो नील (मणि या व्यक्ति विशेष) से अलंकृत आभरण हो। मानो कुंद (फूल और व्यक्ति) से प्रसाधित विपुल वन हो। मानो सुग्रीववान् (सुग्रीव या ग्रीवा सहित) सुन्दर हंस हो। मानो मुनीन्द्रों का स्थिर ध्यान हो। वह नगर माया-सुग्रीव के द्वारा उसी प्रकार मोहित हो रहा था जिस प्रकार कुशल व्यक्ति कामिनी के हृदय को मुग्ध कर लेता है। उसी अवसर पर कल-कल करते हुए बड़े-बड़े युद्धों में समर्थ, बहुसम्मान और दान का मन रखनेवाले जाम्बवंत, कुंद, इन्द्र, नील, नल, लक्ष्मण, विराधित और रामने सुग्रीवके ऊपर घोर संकट आने पर उस किष्किधानगरको वैसे ही घेर लिया जैसे नव घन सूर्यमंडल को घेर लेते हैं॥ १-९॥

[१२] समस्त नगर का घेरा डालकर कपटी सुग्रीव के पास दूत भेजते हुए सुग्रीव, राम और लक्ष्मण ने उसी क्षण यह संदेश भेजा, "बहुत कहने से क्या, उससे वास्तव बात इस प्रकार कहना कि जिससे वह लड़े और प्राणों सहित नष्ट हो जाय।" यह वचन सुनकर दूत कर्पूरचंद चल पड़ा मानो क्षयकाल का दंड ही जा रहा हो। वहाँ उसने सभामंडपमें प्रवेश किया जहाँ दुर्जेय माया-सुग्रीव था। राम-लक्ष्मणने जो सन्देश भेजा था उसे तत्काल सुनाते हुए उसने कहा, "आज भी तुम अपने इस काम को मत बिगाड़ो, नहीं तो कहाँ की तारा और कहाँ का राज्य। अपने प्राणों सहित नाश को प्राप्त हो जाओगे, तुम निश्चय ही जीवित नहीं छूट सकते। हे विटसुग्रीव, तुम सुग्रीवका भी संदेश सुनो। उसने कहा है, "तुम्हारे सिर-कमल के साथ मैं अपना राज्य लूंगा"॥ १-९॥

[१३] यह वचन सुनते ही, उद्भट मुख, दुष्ट, कपटी सुग्रीव ने क्रुद्ध होकर अपनी सेनाको यह आदेश दिया—"फैल जाओ,

पावहोँ मुण्डावहोँ सिर-कमलु । सहुँ णासेँ छिन्दहोँ मुह-कमलु ॥३॥
दूअहोँ दूअत्तणु दक्खवहोँ । पाडुमउ कयन्तहोँ पट्ठवहोँ ॥४॥
पहु मन्तिहिँ दुक्खु णिवारियउ । सुग्गीव-दूउ गउ खारियउ ॥५॥
एत्तहेँ वि णरिन्दु ण संठियउ । णिय-सन्दण-वीढेँ परिट्ठियउ ॥६॥
सण्णहेँवि स-साहणु णीसरिउ । पच्चक्खु णाइँ जमु अवयरिउ ॥७॥
पडिवक्ख-पक्ख-संखोहणिहिँ । णिग्गउ सत्तेँहिँ अक्खोहणिहिँ ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवहोँ रामहोँ लक्खणहोँ विड-सुग्गीउ गम्पि भिडिउ ।
हेमन्तहोँ गिम्भहोँ पाउसहोँ णं दुक्कालु समावडिउ ॥९॥

[१४]

अब्भिट्टइँ वेण्णि मि साहणाइँ । जिह मिहुणइँ तिह हरिसिय-मणाइँ ॥१॥
जिह मिहुणइँ तिह अणुरत्ताइँ । जिह मिहुणइँ तिह पर-सत्ताइँ ॥२॥
जिह मिहुणइँ तिह कलयल-करइँ । जिह मिहुणइँ तिह मेल्लिय-सरइँ ॥३॥
जिह मिहुणइँ तिह कसिणाहरइँ । जिह मिहुणइँ तिह सर-जज्जरइँ ॥४॥
जिह मिहुणइँ तिह सुम्भावरइँ ॥५॥
जिह मिहुणइँ तिह अवुम्भकइँ । जिह मिहुणइँ तिह विहडप्फडइँ ॥६॥
जिह मिहुणइँ तिह णिरुवेवियइँ । जिह मिहुणइँ तिह पासेइयइँ ॥७॥
जिह मिहुणइँ तिह णिच्चेट्ठियइँ । णिप्फन्दइँ सुच्छन्तइँ थियइँ ॥८॥

इसको मारो, आहत करो, इस पापीका सिरकमल काट लो, नाकके साथ इसके दोनों हाथ भी काट लो, इस दूतको दूतपन दिखाओ, इसे कृतांतका अतिथि बना दो।" तब बड़ी कठिनाईसे मंत्रियोंने, स्वामीका निवारण किया। सुग्रीवका दूत भी खारसे भरकर चला गया। यहाँ भी राजा सुग्रीव बैठा नहीं रहा और रथकी पीठपर चढ़कर, पूरी तैयारीके साथ सेनाको लेकर निकल पड़ा, मानो साक्षात् यम ही आ गया हो, प्रतिपक्ष को क्षुब्ध करनेवाली सात अक्षौहिणी सेनाके साथ उसने प्रयाण किया। इस प्रकार कपटी सुग्रीव राम लक्ष्मण और सुग्रीवसे जाकर भिड़ गया मानो दुष्काल ही हेमंत ग्रीष्म और पावसपर टूट पड़ा हो ॥१-९॥

[१४] दोनों ही सैन्यदल आपसमें टकरा गये, वैसे ही जैसे प्रसन्नचित्त मिथुन आपसमें भिड़ जाते हैं, वे वैसे ही अनुरक्त (रक्तरंजित और प्रेमपरिपूर्ण) थे जैसे मिथुन, वैसे ही परितृप्त थे जैसे मिथुन परितृप्त होते हैं। वैसे ही कलकल कर रहे थे जैसे मिथुन कलरव करते हैं, वैसे ही सर (बाणों) को छोड़ रहे थे जैसे मिथुन सर (स्वरों) को करते हैं। वैसे ही अधरोंको काट रहे थे, जैसे मिथुन अधरोंको काटते हैं, वैसे ही सरों (बाणों) से जर्जर हो रहे थे जैसे मिथुन स्वरों (सर) से क्षीण हो उठते हैं, युद्धके लिए वे वैसे ही आतुर थे जैसे मिथुन आतुर होते हैं। वे वैसे ही चकपका रहे थे जैसे मिथुन चकपकाते हैं, वैसे ही उनका मान भंग हो रहा था जैसे मिथुनोंका मान गलित हो जाता है। वैसे ही काँप रहे थे जैसे मिथुन काँप उठते हैं। वैसे ही पसीना-पसीना हो रहे थे जैसे मिथुन पसीना-पसीना हो जाते हैं। वैसे ही निश्चेष्ट हो रहे थे जैसे मिथुन निश्चेष्ट हो उठते हैं, वैसे ही निष्पंद युद्ध कर रहे थे जैसे मिथुन निष्पंद होकर लड़ते

घत्ता

तेहएँ अवसरेँ बिण्णि वि वलइँ ओसारियइँ महल्लएँहिँ ।
'पर तुम्हेँहिँ खत्त-धम्मु सरेँ वि जुज्झेव्वउ एक्कल्लएँहिँ' ॥९॥

[१५]

एत्थन्तरेँ सिमिरइँ परिहरेवि । खत्तिय खग्गेँ अब्भिट्ट वे वि ॥१॥
सुग्गीवेँ विडसुग्गीउ वुत्तु । 'जिह माया-कवडेँ रज्जु भुत्तु ॥२॥
खल खुद्द पिसुण तिह थाहि थाहि । कहिँ गम्मइ रहवरु वाहि वाहि' ॥३॥
तं णिसुणेँवि थिप्फुरियाणणेण । दोच्छिउ जलणुक्का-पहरणेण ॥४॥
'किं उत्तिम-पुरिसहुँ एहु मग्गु । मणु असइहेँ जिह सय-वार भग्गु ॥५॥
जुज्झन्तु ण लज्जहि तो वि धिट्ठ । रणेँ पाडिउ पाडिउ लेहि चेट्ठु' ॥६॥
असहन्त परोप्परु वावरन्ति । णं पलय-महाघण उत्थरन्ति ॥७॥
पुणु वाणेँहिँ पुणु तरु-गिरिवरेहिँ । करवालेँहिँ सूलेँहिँ मोग्गरेहिँ ॥८॥

घत्ता

मायासुग्गीवेँ कुद्धएँण लउडि भमाडेँवि मुक्क किह ।
सुग्गीवहो गम्पिणु सिर-कमलेँ महिहरेँ पडिय चवक्क जिह ॥९॥

[१६]

पाडिउ सुग्गीउ गयासणिएँ । कुलपव्वउ णं वज्जासणिएँ ॥१॥
णिणिवाइउ किर णिज्जीउ थिउ । रिउ-साहणेँ तूर-वमालु किउ ॥२॥
एत्तहेँ वि सु-तारहेँ पाण-पिउ । उच्चाएँवि रामहोँ पासु णिउ ॥३॥
वइदेहि-दइउ विण्णत्तु लहु । 'पइँ होन्तेँ एहावत्थ महु' ॥४॥
राहवेँण वुत्तु 'हउँ किं करमि । को मारमि को किर परिहरमि ॥५॥
वेण्णि मि समरङ्गणेँ अतुल-बल । वेण्णि मि दुज्जय विज्जहिँ पवल ॥६॥
वेण्णि मि विण्णाण-करण-कुसल । विण्णि वि थिर-थोर-वाहु-जुअलु ॥७॥

हैं। तब उस कठिन अवसर पर मन्त्रियोंने आकर दोनों दलोंको हटाते हुए कहा, "तुम लोग क्षात्र धर्मका अनुसरण कर, अकेले ही द्वन्द्व करो !" ॥ १-९ ॥

[१५] इसी अन्तर में दोनों सेनाओं को छोड़कर वे दोनों क्षत्रिय क्षात्र भाव से लड़ने लगे। सुग्रीवने मायासुग्रीवसे कहा, "जिस प्रकार माया और कपट से तुमने राज्य का भोग किया, हे खलक्षुद्र, पिशुन, उसी तरह अब ठहर-ठहर, कहाँ जाता है, रथ आगे हाँक, हाँक।" यह सुनकर, तमतमाते हुए, जलती हुई लूका शस्त्र के प्रहरण के साथ मायासुग्रीव ने उसकी भर्त्सना की, "क्या उत्तम पुरुष का यही मार्ग है कि जो वह असतीके मन की तरह सौ बार भग्न हो, फिर भी धृष्ट तुम लड़ते हुए लज्जित नहीं होते, युद्ध में गिर-गिरकर फिर भिड़ा करते हो !" इस प्रकार एक दूसरे को सहन न करते हुए वे प्रहार करने लगे। मानो प्रलय के महामेघ ही उछल पड़े हों। बाणों से, वृक्षों और पहाड़ों से, करवाल, शूल और मुद्गरों से, उनमें युद्ध ठन गया। तब मायासुग्रीव ने लकुट घुमाकर ऐसा मारा कि वह जाकर सुग्रीव के सिरकमल पर गिरा मानो महीध्र पर बिजली ही टूटी हो ॥ १-९ ॥

[१६] उस गदा-अस्त्र से सुग्रीव वैसे ही धरती पर गिर पड़ा जैसे वज्र से कुलपर्वत गिर पड़ता है। गिरकर वह जब अचेतन हो गया तो शत्रुसेना में कल-कल शब्द होने लगा। तब यहाँ भी सुताराके प्राणप्रिय असली सुग्रीवको (लोग) उठाकर रामके पास ले आये। उसने रामसे कहा, "आपके रहते मेरी यह अवस्था ?" तब राम ने कहा—"मैं क्या करूँ, किसको मारूँ और किसे बचाऊँ, दोनों ही रण-प्रांगणमें अतुल वीर हैं। दोनों ही विद्याओं से प्रबल व अजेय हैं। दोनों ही विज्ञान करने में कुशल हैं। दोनों ही स्थिर

वेण्णि वि वियसुण्णय-मच्छयल । वेण्णि वि पप्फुल्लिय-मुह-कमल ॥८॥

घत्ता

सयलु वि सोहइ सुग्गीव तउ जं वोल्लहि अवमाणियउ ।
मइ दिट्ठिएँ कुल-वहुआएँ जिह खलु पर-पुरिसु ण जाणियउ ॥९॥

[१७]

मणु धीरेंवि सुग्गीवहों तणउ । अवलोइउ धणुहरु अप्पणउ ॥१॥
सुकलत्तु जेम सुपणामि [य] उ । सुकलत्तु जेम आयामियउ ॥२॥
सुकलत्तु जेम दिढ-गुण-घणउ । सुकलत्तु जेम कोड्डावणउ ॥३॥
सुकलत्तु जेम णिव्वूढ - भरु । सुकलत्तु जेम पर - णिप्पसरु ॥४॥
सुकलत्तु जेम सद्दवरें गहिउ । घरें जणयहों जणय-सुअएँ सहिउ ॥५॥
तं सज्जावत्तु हत्थें चडिउ । अप्फालिउ दिसहिँ णाइँ रडिउ ॥६॥
णं कालें पलय-कालें हसिउ । णं जुय-खएँ सायरेण रसिउ ॥७॥
णं पडिय चडक्क खडक्क-यलेँ । भउ कम्पिय विडसुग्गीव-वलेँ ॥८॥

घत्ता

तं भीसणु चावसद्दु -सुणेंवि केलि व वाएं थरहरिय ।
पर-पुरिसु रमेप्पिणु असइ जिह थिउ सरीरहों णीसरिय ॥९॥

[१८]

मायासुग्गीउ विसालियएँ । मेल्लिउ विजएँ वेयालियएँ ॥१॥
णं भग्गिदणु सुक्क विलासिणिएँ । णं वर - मयलञ्छणु रोहिणिएँ ॥२॥
णं सुरवइ परिसेसिउ सइएँ । णं राहउ सीय - महासइएँ ॥३॥
णं मयण-राउ मेल्लिउ रइएँ । णं पाव-पिण्डु सासय-गइएँ ॥४॥

और स्थूल बाहु हैं। दोनोंका ही वक्षःस्थल विशाल और उन्नत है। दोनोंका ही मुखकमल खिला हुआ है। हे सुग्रीव, तुम्हारा सब कुछ उसे भी सोहता है। जो तुम कहते हो, वह मैं मानता हूँ। जैसे कुलवधू दूसरे पुरुषको नहीं पहचानती, वैसे ही मेरी दृष्टि माया सुग्रीवको पहचाननेमें असफल है" ॥१-९॥

[१७] तब रामने सुग्रीवके मनको धीरज बँधाकर अपने धनुषकी ओर देखा। जो सुकलत्रकी तरह प्रमाणित, और उसीकी तरह समर्थ था। सुकलत्रकी तरह जो दृढ़ गुण (अच्छे गुण और डोरी) से घनीभूत था। सुकलत्रकी ही तरह आश्चर्यजनक था, सुकलत्रकी तरह भार उठानेमें समर्थ था, सुकलत्रकी तरह, दूसरेके निकट अप्रसरणशील था, सुकलत्रकी तरह स्वयंवरसे गृहीत था, जनककी सुता सीताके साथ ही जिसे उन्होंने ग्रहण किया था। उस वज्रावर्तको अपने हाथमें लेकर जैसे ही चढ़ाया वह दसों दिशाओंमें गूँज उठा, मानो प्रलयकालमें काल ही अट्टहास कर उठा हो, मानो युगका क्षय होनेपर सागर ही ध्वनित हो उठा हो, मानो पहाड़पर बिजली गिरी हो। उसे सुनकर माया सुग्रीवके सैनिक काँप उठे। उस भीषण चाप-शब्दको सुनकर विद्या उसी तरह थरथर काँप उठी जैसे हवासे केलेका पत्ता, और वह सहस्रगतिके शरीरसे उसी प्रकार निकलकर चली गई जैसे असती स्त्री पर-पुरुषका रमण करके चली जाती है ॥१-९॥

[१८] विशाल वैतालिकी विद्याने माया-सुग्रीवको छोड़ दिया, मानो विलासिनीने निर्धन व्यक्तिको छोड़ दिया हो, मानो रोहिणीने चन्द्रमाको छोड़ दिया हो, मानो इन्द्राणीने देवेन्द्रको छोड़ दिया हो, मानो सीता महासतीने राम को छोड़ दिया हो, मानो रतिने मदनराजको छोड़ दिया हो, मानो शाश्वत

जं विसमगयणु हिमपव्वइएँ । धरणेन्दु णाइँ पउमावइएँ ॥५॥
णिय-विज्जएँ जं अवमाणियउ । सहसगइ पयडु जणेँ जाणियउ ॥६॥
जं सिहरिउ सुग्गीवहोँ तणउ । वलु मिलिउ पडीवउ अप्पणउ ॥७॥
एक्कल्लउ पेक्खेँवि वइरि थिउ । वलएवेँ सर-सन्धाणु किउ ॥८॥

घत्ता

खणेँ खणेँ अणवरय-गुणड्ढिएँहि तिक्खेँहिँ राम-सिलीमुहेँहिँ ।
विणिभिण्णु फरक्कुसुग्गाउ रणेँ पच्चारिउ जेम बुहेँहिँ ॥९॥

[१६]

रिउ णिवडिउ सरेँहिँ वियारियउ । सुग्गीउ वि पुरेँ पइसारियउ ॥१॥
जय - मङ्गल - तूर-णिघोसु किउ । सहुँ तारएँ रज्जु करन्तु थिउ ॥२॥
एत्तहेँ वि रामु परितुट्ठ-मणु । णिविसेण पराइउ जिण-भवणु ॥३॥
किय वन्दण सुह-गइ-गामियहोँ । भावेँ चन्दप्पह - सामियहोँ ॥४॥
'जय तुहुँ गइ तुहुँ मइ तुहुँ सरणु । तुहुँ माय वप्पु तुहुँ वन्धु-जणु ॥५॥
तुहुँ परम-पक्खु परमत्ति-हरु । तुहुँ सव्वहुँ परहुँ पराहिपरु ॥६॥
तुहुँ दंसणेँ णाणेँ चरित्तेँ थिउ । तुहुँ सयल-सुरासुरेहिँ णमिउ ॥७॥
सिद्धन्तेँ मन्तेँ तुहुँ वायरणेँ । सज्झाएँ झाणेँ तुहुँ तव-चरणेँ ॥८॥

घत्ता

अरहन्तु बुद्धु तुहुँ हरि हरु वि तुहुँ अण्णाण-तमोह-रिउ ।
तुहुँ सुहुमु णिरञ्जणु परमपउ तुहुँ रवि वम्भु सयम्भु सिउ' ॥९॥

गतिने पापपिण्डको छोड़ दिया हो, पार्वतीने शिवको छोड़ दिया हो। मानो पद्मावतीने धरणेन्द्रको छोड़ दिया हो। अपनी विद्यासे अपमानित होने पर सहस्रगतिका असली रूप लोगोंने प्रगट जान लिया। और असली सुग्रीव की जो सेना पहले विघटित हो गई थी वह अब उसीकी सेनामें आकर मिल गई। शत्रु को एकाकी स्थित देखकर बलदेव रामने सरसन्धान किया। अनवरत डोरी पर चढ़े हुए रामके तीखे बाणोंसे कपट-सुग्रीव युद्ध में उसी तरह छिन्न-भिन्न हो गया जैसे विद्वानोंके द्वारा प्रत्याहार (व्याकरण के) छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥ १-९ ॥

[१६] इसप्रकार शत्रुको बाणोंसे विदीर्ण कर रामने सुग्रीव को नगरमें प्रवेश कराया। तब जयमंगल और तूर्योंका निर्घोष होने लगा। सुग्रीव तारा के साथ प्रतिष्ठित होकर राजकाज करने लगा। इधर राम भी संतुष्टमन होकर शीघ्र ही जिन-भवनमें पहुँचे और वहाँ उन्होंने शुभगति-गामी चन्द्रप्रभ जिनकी स्तुति की—"जय हो, तुम्हीं मेरी गति हो। तुम्हीं मेरी बुद्धि हो। तुम्हीं मेरी शरण हो, तुम्हीं मेरे माता-पिता हो। तुम्हीं बन्धुजन हो, तुम्हीं परमपक्ष हो, तुम्हीं परमति-हरणकर्ता हो। तुम्हीं सबमें परात्पर हो। तुम दर्शन, ज्ञान और चारित्रमें स्थित हो। तुम्हें सुरासुर नमन करते हैं। सिद्धान्त, मन्त्र, व्याकरण, सन्ध्या, ध्यान और तपश्चरण में तुम्हीं हो। अरहन्त, बुद्ध तुम्हीं हो। हरि, हर और अज्ञानरूपी तिमिर के शत्रु तुम्हीं हो। तुम सूक्ष्मनिरंजन और परमपद हो। तुम सूर्य, ब्रह्मा, स्वयम्भू और शिव हो ॥१-९॥

[४४. चउयालीसमो संधि]

भणु जूरइ आस ण पूरइ खणु वि सहारणु णउ करइ ।
सो लक्खणु रामाएसें घरु सुग्गीवहों पइसरइ ॥

[१]

विडसुग्गीवें समरें सर-भिण्णएँ । गएँ सत्तमएँ दिवसें वोलीणएँ ॥१॥
तुट्टु सुमित्ति - पुत्तु बलएवें । 'भणु सुग्गीउ गम्पि विणु खेवें ॥२॥
तं दिट्ठन्तु णिरुत्तउ आयउ । सव्वहों सायलु कज्जु परायउ ॥३॥
जं मुआविउ रज्जु स - तारउ । कालहों फेडिउ वइरि तुहारउ ॥४॥
तं उवयारु किं पि अइ जाणहि । कन्तहें तणिय वत्त तो आणहि' ॥५॥
गउ सोमित्ति विसज्जिउ रामें । सरु पच्छमउ मुक्कु णं कामें ॥६॥
गिरि-किक्किन्ध-णयरु मोहन्तउ । कामिणि - जण-मण- संखोहन्तउ ॥७॥
जिह जिह घरु सुग्गीवहों पावइ । तिह तिह जणु विहडप्फडु धावइ ॥८॥
ण गणइ कण्ठउ कडउ गलिप्पउ । णाइँ कुमारें मोहणु दिण्णउ ॥९॥

घत्ता

किक्किन्ध-णराहिव-केरउ दिट्ठु पुरउ पडिहारु किह ।
थिउ मोक्ख-वारें पडिकूलउ जीवहों दुप्परिणामु जिह ॥१०॥

चवालीसवीं सन्धि

सीतादेवी के वियोग में राम का मन विसूर रहा था। उनकी आशा पूरी नहीं हो रही थी। एक भी क्षण का सहारा उन्हें नहीं मिल पा रहा था। इसलिए रामके आदेशसे लक्ष्मणको सुग्रीव के घर जाना पड़ा।

[१] जब कपट-सुग्रीव युद्ध में बाणों से क्षत-विक्षत हो चुका और सात दिन भी व्यतीत हो गये, तब रामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम बिना विलम्ब जाकर सुग्रीवसे कहो। वह तो एकदम निश्चिन्त सा जान पड़ता है। सभी दूसरे के काम में ढील करते हैं। (उससे कहना) कि तुम जो (अपनी पत्नी) तारा सहित राज का भोग कर रहे हो और जो (हमने) तुम्हारा शत्रु काल (देवता) की भेंट चढ़ा दिया है। यदि तुम उस उपकार को थोड़ा भी जानते हो तो सीतादेवी का वृत्तान्त लाकर दो। इस प्रकार राम से विसर्जित होने पर लक्ष्मण (सुग्रीव के पास) इस वेग से गया मानो कामदेव ने अपना पाँचवाँ बाण ही छोड़ा हो। वह किष्किन्ध पर्वत और नगर को मुग्ध करता तथा कामिनीजनों के मन को क्षुब्ध बनाता हुआ जैसे-जैसे सुग्रीवके घरके निकट पहुँच रहा था वैसे-वैसे जन-समूह हड़बड़ाकर दौड़ा। वह अपना कण्ठा, कटक और गलिण्ण नहीं देख पा रहा था। (उस समय जन-समूह) ऐसा जान पड़ रहा था मानो लक्ष्मण ने संमोहन कर दिया हो। इतने में कुमार लक्ष्मण ने किष्किन्धराज सुग्रीवके प्रतिहारको अपने सम्मुख इस प्रकार (स्थित) देखा मानो मोक्ष के द्वार पर जीव का प्रतिकूल दुष्परिणाम ही स्थित हुआ हो॥ १-१०॥

[२]

'कहिँ पडिहार गम्पि सुग्गीवहोँ । जो परमेसरु जम्बू - दीवहोँ ॥१॥
अच्छइ सो वण-वासेँ भमन्तउ । अप्पुणु रज्जु करहि णिच्चिन्तउ ॥२॥
जं तुहुँ केरउ अवसरु सारिउ । चक्कउ पउमणाहु उवयारिउ ॥३॥
तो वरि हउँ उवयारु समारमि । विडसुग्गीव जेम तिह मारमि ॥४॥
जं संदेसउ दिण्णु कुमारेँ । णिसुणिउ कहिय तेण पडिहारेँ ॥५॥
'देव देव जो समरेँ अणिट्ठिउ । अच्छइ लक्खणु बारेँ परिट्ठिउ ॥६॥
आउ महब्बलु रामाएसेँ । जसु पच्छण्णु णाइँ णर-वेसेँ ॥७॥
किं पइसरउ किं व मं पइसउ । गम्पिणु वत्त काइँ तहोँ सीसउ' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेंवि सुग्गीवेंण मुहु पडिहारहोँ जोइयउ ।
'किं केण वि गाहा-लक्खणु बारेँ महारएँ ढोइयउ ॥९॥

[३]

किं लक्खणु जं लक्खण-विसुद्धउ । किं लक्खणु जो गेय-णिबद्धउ ॥१॥
किं लक्खणु जं पाइय-कव्वहोँ । किं लक्खणु वायरणहोँ सव्वहोँ ॥२॥
किं लक्खणु जं छन्देँ णिविट्ठउ । किं लक्खणु जं भरहेँ गविट्ठउ ॥३॥
किं लक्खणु णर-णारी-अङ्गहुँ । किं लक्खणु मायङ्ग-तुरङ्गहुँ' ॥४॥
पभणइ पुणु पडिहारु वियक्खणु । एयहुँ मज्झेँ ण एक्कु वि लक्खणु ॥५॥
सो लक्खणु जो दसरह-णन्दणु । सो लक्खणु जो पर-बल-मद्दणु ॥६॥
सो लक्खणु जो णिसियर-मारणु । सम्बु - कुमार वीर - संघारणु ॥७॥

[२] तब कुमारने कहा—"प्रतिहारी, तुम जाकर सुग्रीवसे कहना कि जो जम्बूद्वीप के स्वामी हैं, वे वनमें भटक रहे हैं और तुम निश्चिन्त होकर अपना राज कर रहे हो? जिस प्रकार तुम्हारा काम साधा गया, अच्छा है, तुम राम का उपकार करो। नहीं तो अच्छा है कि मैं उपकार करूँ और जिस प्रकार कपट-सुग्रीवको, उसी प्रकार तुम्हें मारता हूँ।" कुमारने जो संदेश दिया, द्वारपाल ने जाकर वह वार्ता कह दी—"हे देवदेव, जो युद्ध में अनिष्ट हैं, वह लक्ष्मण द्वार पर खड़े हैं। वह महाबली रामके आदेशसे आए हैं, मानो मनुष्यके रूपमें प्रच्छन्न यम ही हैं। उन्हें प्रवेश दूँ या नहीं, उनसे जाकर क्या बात कहूँ?" यह वचन सुन कर सुग्रीव प्रतिहार का मुख देखने लगा। क्या किसी ने गाथा में प्रसिद्ध को मेरे द्वार पर भेजा है॥१-६॥

[३] क्या वह लक्षण (लक्ष्मण) जो विशुद्ध लक्ष्य होता है? क्या वह लक्षण जो गेय-निबद्ध होता है? क्या वह लक्षण जो प्राकृत काव्य में होता है? क्या वह लक्षण जो व्याकरण में होता है? क्या वह लक्षण जो छंदशास्त्र में निर्दिष्ट है? क्या वह लक्षण जो भरत की गोष्ठी में काम आता है? क्या वह लक्षण जो स्त्री-पुरुषों के अंगों में होता है? क्या वह लक्षण जो अश्वों और गजों में होता है?" तब प्रतिहार ने पुनः निवेदन किया, "देव-देव, इनमेंसे एक भी लक्षण नहीं है प्रत्युत यह वह लक्ष्मण है जो दशरथका पुत्र है। वह लक्ष्मण है जो निशाचर-का नाशक है। वह लक्ष्मण है जो शम्बुक कुमार का वधकर्त्ता

सो लक्खणु जो राम-सहोयरु । सो लक्खणु जो सीयहेँ देवरु ॥८॥
सो लक्खणु जो णरवर-केसरि । सो लक्खणु जो खर-दूसण-अरि ॥९॥
दसरह-तणउ सुमित्तिहेँ जायउ । रामें सहुँ वण-वासहों आयउ ॥१०॥

घत्ता

अणुणिज्जउ जेम पयत्तें जाव ण कुप्पइ णिय-गोत्तेण ।
मं पच्छें पइँ पेसेसइ मायासुग्गीवहों मग्गेण' ॥११॥

[४]

तं णिसुणेवि वयणु पडिहारहों । हियवउ भिण्णु कइद्धय-सारहों ॥१॥
'एहु सो लक्खणु राम-कणिट्ठउ । जासु आसि हउँ सरणु पइट्ठउ' ॥२॥
सीसु व गुरु-वयणेंहिँ उब्भूढउ । णावइ विणय - गइन्दारूढउ ॥३॥
स-बलु स-पिण्डवासु स-कलत्तउ । चलणेंहिँ पडिउ विसन्थुल-गत्तउ ॥४॥
पभणिउ कलुणु कियञ्जलि-हत्थउ । 'हउँ पाविट्ठु धिट्ठु अकियत्थउ ॥५॥
तारा-णयण-सरेंहिँ जज्जरियउ । तुम्हारउ णाउ मि वीसरियउ ॥६॥
अहों परमेसर पर-उवयारा । एक्क-वार महु खमहि भडारा' ॥७॥
जं पिय-वयणेंहिँ विणउ पयासिउ । णरसिंहु लक्खणेण आसासिउ ॥८॥
'अभउ वयहु छुडु सीय गवेसहि । लहु विज्जाहर दस-दिसि पेसहि' ॥९॥

घत्ता

सोमित्तिहिँ वयणु सुणेप्पिणु सुहड-सहासेंहिँ परियरिउ ।
णं सायरु समयहों चुक्कउ किक्किन्धाहिउ णीसरिउ ॥१०॥

[५]

णराहिओ विसालयं । पराइओ जिणालयं ॥१॥
थुओ तिलोय-सामिओ । अणन्त-सोक्ख-गामिओ ॥२॥

है। वह लक्ष्मण है जो रामका सगा भाई है। वह लक्ष्मण है जो सीतादेवी का देवर है। वह लक्ष्मण है जो श्रेष्ठ मनुष्यों में श्रेष्ठ है। वह लक्ष्मण है जो खर-दूषणका हत्यारा है। वह लक्ष्मण है जो सुमित्रासे उत्पन्न दशरथका पुत्र है और जो रामके साथ वनवासके लिए आया है। हे देव! प्रयत्नपूर्वक उसे मना लीजिए, जिससे वह कुपित न हो। और तुम्हें मायासुग्रीव के पथ पर न भेज दे" ॥१-११॥

[४] प्रतिहार के उन वचनों को सुनकर कपिध्वज शिरोमणि सुग्रीव का हृदय विदीर्ण हो गया। (वह सोचने लगा) अरे, यह वह लक्ष्मण है [राम का अनुज], जिसकी शरणमें मैं गया था। यह विचारते ही वह वैसे ही सचेत हो गया जैसे गुरुके उपदेश-वचन से शिष्य सचेत जाता है। तब राजा सुग्रीव विनयरूपी हाथी पर चढ़कर, अपनी सेना-परिवार और स्त्री के साथ जाकर व्याकुल शरीर हो, लक्ष्मण के सामने गिर पड़ा। दोनों हाथ जोड़कर उसने करुण स्वरमें कहा—"हे देव, मैं बहुत ही पापात्मा, ढीठ और अकृतज्ञ हूँ। तारा के नेत्रबाणों से जर्जर होकर मैं आपका नाम तक भूल गया। अहो परोपकारी परमेश्वर, एक बार मुझे क्षमा कर दीजिए।" जब सुग्रीवने इतने प्रिय वचनोंमें विनय प्रकट की तो लक्ष्मणने आश्वासन दिया और कहा, "वत्स, तुम्हें मैं अभय देता हूँ, शीघ्र जाकर अब सीतादेवी की खोज करो, हरेक दिशा में विद्याधर भेज दो।" लक्ष्मण के वचन सुनकर, सहस्र सैनिकों से परिवृत सुग्रीव निकल पड़ा। मानो समुद्र ने ही अपनी मर्यादा विस्मृत कर दी हो ॥१-१०॥

[५] तब नराधिप सुग्रीव एक विशाल जिनालय में पहुँचा। वहाँ उसने अनन्त सुखगामी जिन-स्वामीकी स्तुति प्रारम्भ की;

'अयहु-कम्म - दारणा । अणङ्ग - सङ्ग - वारणा ॥३॥
पसिद्ध - सिद्ध - सामणा । समोह-मोह - मालणा ॥४॥
कसाय - माय - वज्जिया । तिलोय-लोय - पुज्जिया ॥५॥
मयट्ठ - दुट्ठ - मद्दणा । तिसल्ल-वेल्लि-छिन्दणा' ॥६॥
तुमं एम णाहो । विहूई - सणाहो ॥७॥
महादेव - देवो । ण तुज्झो ण खेओ ॥८॥
ण खेभो ण सूलं । ण चावं ण सूलं ॥९॥
ण कङ्काल - माला । ण दिट्ठी कराला ॥१०॥
ण गउरी ण गङ्गा । ण खन्दो ण णागा ॥११॥
'ण पुत्तो ण कन्ता । ण दाहो ण चिन्ता ॥१२॥
ण कामो ण कोहो । ण लोहो ण मोहो ॥१३॥
ण माणं ण माया । ण सामण्ण - छाया ॥१४॥

घत्ता

पणवेप्पिणु जिणवर-सामिउ सुह-गइ-गामिउ पइजारूढु णराहिवइ ।
'जइ सीयहेँ वत्त ण-याणमि तुम्ह पराणमि तो मल मइ सण्णास-गइ' ॥१५॥

[६]

एव भणेवि अणिट्ठिय - वाहणु । कोक्काविउ विज्जाहर - साहणु ॥१॥
'जाहु गवेसा जहिँ आसङ्कहोँ । जल-दुग्गाइँ थल - दुग्गाइँ लङ्घहोँ ॥२॥
पइसँवि दीवेँ दीउ गवेसहोँ' । गय अक्खय उत्तर - देसहोँ ॥३॥
गवय - गवक्ख वे वि पुव्वद्धेँ । णल - कुन्देन्द - णील पच्छद्धेँ ॥४॥
दाहिणेण सुग्गीउ स-साहणु । अण्णु वि जम्बवन्तु हरिसिय-मणु ॥५॥
चलिय विमाणारूढ महाहव । णिविसेँ कम्बु-दीउ पराइय ॥६॥
ताव तेत्थु विज्जाहर - केउ । कम्पइ चलइ वलइ विवरेउ ॥७॥

"आठ कर्मों का दलन करने वाले आपकी जय हो। आप कामका संग निवारण करने वाले, प्रसिद्ध सिद्ध शासनमें रहनेवाले, मोह के घनतिमिर को नष्ट करनेवाले, कषाय और माया से रहित, त्रिलोक द्वारा पूज्य, आठ मदोंका मर्दन करनेवाले, तीन शल्योंकी लताका उच्छेद करनेवाले हैं।" इस प्रकार उसने विभूतियोंसे परिपूर्ण स्वामी महादेव जिनेन्द्र की स्तुति की। जिनका न आदि है न अन्त है। न अन्त है, न मूल है। न चाप है न त्रिशूल। न कंकाल माला है और न भयंकर दृष्टि। न गौरी है न गंगा। न चन्द्र है न सर्प। न पुत्र है न स्त्री। न ईर्ष्या है और न चिंता। न काम है और न क्रोध। न लोभ है न मोह। न मान है और न माया। और न साधारण छाया ही है। इस प्रकार जिनवर स्वामी को प्रणाम करके सुगतिगामी सुग्रीव ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सीतादेवी का वृत्तान्त न लाऊं और जिनदेवको नमन न करूं तो मेरी गति संन्यास की हो (अर्थात् मैं संन्यास ग्रहण कर लूंगा" ॥ १-१५ ॥

[६] यह कहकर उसने अपनी अनिर्दिष्ट वाहनवाली विद्याधर सेनाको पुकारा और उसे यह आदेश दिया कि जहाँ पता लगे वहाँ जाकर वह सीतादेवी की खोज करे। इस पर अंग और अंगद उत्तर देशकी ओर गये। गवय और गवाक्ष आधे पूर्वकी ओर। नल, कुंद, इन्द्र और नील आधे पश्चिमकी ओर गये। स्वयं सुग्रीव अपनी सेना लेकर दक्षिणकी ओर गया। प्रसन्नमन जाम्बवंत भी उसके साथ था। आदरणीय वे दोनों विमान में बैठकर चल पड़े। और पल भर में कम्बू द्वीप पहुंच गये। वहाँ पर उन्होंने विद्याधर रत्नकेशी का ध्वज देखा। कंपित, चलता और विपरीत दिशा में मुड़ता हुआ दीर्घ दंडवाला और पवन से आंदो-

दीहर-दण्डु पवण - पडिपेल्लिउ । णं जस-पुञ्जु महण्णवे मेल्लिउ ॥८॥

घत्ता

सो राएं धउ धुव्वन्तउ दीसइ णयण-सुहावणउ ।
'कहु एहु एहु हक्कारइ णाइँ इत्थु सोवइँ तणउ ॥६॥

[७]

तेण वि दिट्ठु चिन्धु सुग्गीवहों । उप्परि एन्तउ कम्बू-दीवहों ॥१॥
चिन्तइ रयणकेसि 'कहु बुज्झिउ । जेण समाणु आसि हउँ जुज्झिउ ॥२॥
सो तइलोक - चक्क - संतावणु । मच्छुडु आउ पडीवउ रावणु ॥३॥
कहिँ णासमि कहों सरणु पइसमि । एयहों हउँ जीवन्तु ण चुक्कमि' ॥४॥
दुक्खु दुक्खु साहारिउ णिय मणु । 'जइ सयमेव पराइउ रावणु ॥५॥
तो किं तासु मेहद्धएँ वाणरु । णं णं दीसइ किक्किन्धेसरु' ॥६॥
तहिँ अवसरेँ सु-गीउ पराइउ । णाइँ पुरन्दरु सग्गहों आइउ ॥७॥
'भो भो रयणकेसि किं भुक्खउ । अच्छहि काइँ एत्थु एक्कल्लउ' ॥८॥

घत्ता

सुग्गीवहों वयणु सुणेप्पिणु हियवएँ हरिसु ण माइयउ ।
णव-पाउसेँ सलिलें सित्तउ विञ्झु जेम अप्पाइयउ ॥६॥

[८]

णिय कह कहइ लग्गु विज्जाहरु । अतुल - मल्लु भामण्डल-किङ्करु ॥१॥
'सामिहे जामि जाम ओलग्गएँ । दिट्ठु विमाणु ताम गयणग्गएँ ॥२॥
तहिँ कन्दन्ति सीय आयण्णेँवि । धाइउ रावणु तिण-समु मण्णेँवि ॥३॥
हउ वच्छत्थलेँ असिवर - घाएँ । गिरि व पलोट्टिउ वज्ज-णिहाएँ ॥४॥
दुक्खु दुक्खु चेयणउ लहेप्पिणु । पाडिउ विज्जा-छेउ करेप्पिणु ॥५॥

लिन यह ऐसा लगता था मानो किसीका यश:पुंज ही समुद्रमें प्रक्षिप्त कर दिया गया हो। नेत्रोंको सुहावना लगनेवाला हिलता हुआ वह ध्वज उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो सीता देवीका हाथ ही उसे यह पुकार रहा हो कि शीघ्र आओ शीघ्र आओ ॥१-६॥

[७] इतनेमें विद्याधर रत्नकेशीको भी द्वीपपरसे जाते हुए सुग्रीवका ध्वज-चिह्न दिखाई दे गया। वह अपने तई सोचने लगा कि "लो, जिसके साथ मैं अभी-अभी युद्धमें लड़ा था त्रिभुवन-संतापदायक वही रावण शायद फिरसे लौट आया है। अब मैं कहाँ भागूँ, किसकी शरणमें जाऊँ। इससे मेरे प्राण बचना अब कठिन है।" इस तरह उसने मनमें यह सोचकर बड़े कष्टसे अपने आपको सम्हाला कि यदि यह रावण ही आ रहा है तो उसके ध्वजमें वानरका चिह्न कैसे हो सकता है। नहीं नहीं, यह तो किष्किंध नरेश है। ठीक इसी समय सुग्रीव वहाँ आ पहुँचा। मानो स्वर्गसे इन्द्र ही आ गया हो। उसने कहा, "अरे रत्नकेशी क्या तुम भूल गये। यहाँ एकाकी कैसे पड़े हुए हो"। सुग्रीवके यह वचन सुनकर विद्याधर रत्नकेशी मारे हर्षके फूला नहीं समाया। वैसे ही जैसे नव-पावसके जलसे सिक्त होनेपर भी विन्ध्याचल आप्लावनसे नहीं अघाता ॥१-६॥

[८] तब भामंडलका अनुचर अतुल बली विद्याधर रत्न-केशीने सुग्रीवको बताया कि जब मैं अपने स्वामीकी सेवामें जा रहा था तो मुझे गगनांगनमें एक विमान दिखाई दिया। उसमें सीता देवीका आक्रंदन सुनाई पड़ा। बस मैं रावणको तृणवत् भी न समझकर, उससे भिड़ गया। उसने अपने श्रेष्ठ खड्ग चन्द्रहास से छातीमें आहत कर दिया। तब मैं वज्रसे आहत पहाड़की भाँति लोट-पोट हो गया। बड़ी कठिनाईसे जब मुझे कुछ चेतना आई

जिह जक्खन्तु दिसाउ विमुक्कउ । अच्छमि तेण एत्थु एक्कल्लउ' ॥६॥
णिसुणेंवि सीया-हरणु महागुणु । उभय-करेंहिं अवगूढु पुणुप्पुणु ॥७॥
अण्णु वि तुट्ठएण मण-भाविणि । दिण्ण विज्ज तहों णहयल-गामिणि ॥८॥

घत्ता

णिउ रयणकेसि सुग्गीवेंण जहिं अच्छइ बलु दुम्मणउ ।
जसु मणहएँ णाइँ हरेप्पिणु आणिउ दहवयणहों तणउ ॥९॥

[९]

विज्जाहर - कुल - भवण - पईवें । रामहों मद्धाविउ सुग्गीवें ॥१॥
'देव देव तरु दुक्ख-महाणइ । सीयहें तणिय वत्त एँहु जाणइ' ॥२॥
तं णिसुणेवि वयणु बलहद्दें । हसिउ स - विब्भमु कहकह-सद्दें ॥३॥
'भो भो वच्छ वच्छ दे साहिउ । जीविउ णवर अज्जु आसाइउ' ॥४॥
एव भणेवि तेण सव्वङ्गिउ । णेह - महाभरेण आलिङ्गिउ ॥५॥
'कहें कहें केण कन्त उद्दालिय । किं मुअ किं जीवन्ति णिहालिय' ॥६॥
तं णिसुणेवि चविउ विज्जाहरु । णाइँ जिणिन्दहों अग्गएँ गणहरु ॥७॥
'देव देव कलुणाइँ कन्दन्ती । हा लक्खण हा राम भणन्ती ॥८॥

घत्ता

णागिन्दि व गरुड-विहङ्गमेंण सारङ्गि व पञ्चाणणेंण ।
मइँ विज्जा-छेउ करेप्पिणु णिय वइदेहि दसाणणेंण ॥९॥

[१०]

तहिं तेहएँ वि कालें भय-भीयहें । केण वि सीलु ण खण्डिउ सीयहें ॥१॥
पर-पुरिसेंहिं णाउ चित्तु लइज्जइ । वालेंहिं जिह वायरणु ण भिज्जइ' ॥२॥
तं णिसुणेवि विज्जाहर - वुत्तउ । कण्ठउ दिण्णु कडउ कडिसुत्तउ ॥३॥

तो उसने मेरी विद्या छेदकर मुझे यहाँ फेंक दिया। जन्मांधकी तरह मैं अब दिशा भूल गया हूँ और इसीलिए यहाँ अकेला पड़ा हूँ।" इस प्रकार सीता देवीके अपहरणकी बात सुनकर महागुणी सुग्रीवने बार-बार रत्नकेशीका आलिंगन किया तथा खूब संतुष्ट होकर उसे मनचाही आकाशगामिनी विद्या दे दी। फिर सुग्रीव रत्नकेशीको वहाँ ले गया जहाँ दुर्मन राम थे। इस प्रकार वह मानो बलपूर्वक रावणका यशःपुंज हरण कर लाया हो ॥१-८॥

[६] आकर, विद्याधर-कुल-भुवन-प्रदीप सुग्रीवने रामका अभिनंदन करते हुए निवेदन किया, "देव-देव! अब आपने दुख-रूपी महासरिताका संतरण कर लिया है। यह सीता देवीका पूरा पूरा वृत्तान्त जानता है।" उसके वचन सुनकर राम कहकहा लगाकर विभ्रमपूर्वक खूब हँसे, और फिर उन्होंने कहा, "अरे वत्स-वत्स, तुम मुझे आलिङ्गन दो। आज तुमने सचमुच मेरे जीवनको आश्वासन दिया है।" यह कहकर रामने उसका सर्वांग आलिङ्गन कर लिया और फिर पूछा, "कहो-कहो, किसने सीता देवीका अपहरण किया है। तुमने उसे मृत देखा या जीवित।" यह सुनकर विद्याधर इस प्रकार बोला मानो जिनेन्द्रके सम्मुख गणधर ही बोल रहा हो कि "हे देव-देव! वह करुण क्रन्दन करती हुई, 'हा राम' 'हा लक्ष्मण' कह रही थीं। रावण, मेरी विद्याको छेदकर उन्हें वैसे ही ले गया जैसे गरुड़ नागिनको या सिंह हरिणीको पकड़कर ले जाता है ॥१-९॥

[१०] परन्तु उस भयभीत कठोर कराल कालमें भी किसी तरह सीताका शील खंडित नहीं हुआ था। परपुरुष उसका चित्त नहीं पा सके वैसे ही जैसे मूर्ख व्याकरणका भेद नहीं कर पाते।" विद्याधरका कथन सुनकर रामने उसे कंठा, कटक और कटिसूत्र

तहिँ अवसरेँ जे गया गवेसा । आय पडीवा ते वि असेसा ॥४॥
पुच्छिय राहवेण 'वर-वीरहोँ । जम्बव अङ्गय सोण्डीरहोँ ॥५॥
अहोँ णल-णीलहोँ गवय-गवक्खहोँ । सा किं दूरेँ लङ्क महु अक्खहोँ' ॥६॥
जम्बउ कहइ लग्गु हल्लोहलेँ । 'रक्खस-दीवहोँ सायर-मेइहेँ ॥७॥
जोयण-सयइँ सत्त तिहिँ अन्तरु । तहि मि समुद्दु रउद्दु भयङ्करु ॥८॥
लङ्का-दीउ वि तेण पमाणेँ । कहिउ जिणिन्देँ केवल-णाणेँ ॥९॥
तहिँ तिकूडु णामेण महीहरु । जोयणाइँ पञ्चास स-वित्थरु ॥१०॥
णव तुङ्गत्तणेण तहोँ उप्परि । थिय जोयण बत्तीस लङ्काउरि ॥११॥

घत्ता

एक्कु वि णरिन्दु णासक्कउ अण्णु समुद्दें परियरिउ ।
एक्कु वि केसरि दुप्पेक्खउ अण्णु पलीवउ पक्खरिउ ॥१२॥

[११]

जसु सइलोक-चक्कु आसङ्कइ । तेण समाणु भिडेँवि को सक्कइ ॥१॥
राहव एण काइँ आलावेँ । काइँ म सीयहेँ तणेण पलावेँ ॥२॥
पिण्डत्थणिउ लडह-लायण्णउ । लइ महु तणियउ तेरह कण्णउ ॥३॥
गुणवइ हिययवम्म हिययावलि । सुरवइ पउमावइ रयणावलि ॥४॥
चन्दकन्त सिरिकन्ता गुणधरि । चारुलच्छि मणवाहिणि सुन्दरि ॥५॥
सव्वउ जिणवरइएँ रूव-संपण्णउ । परिणि भडारा एयउ कण्णउ' ॥६॥
तं णिसुणेंवि वलएवेँ वुच्चइ । आयहुँ मज्झेँ ण एक्क वि रुच्चइ ॥७॥
जइ वि रम्भ अह होइ तिलोत्तिम । सीयहेँ पासिउ अण्ण ण उत्तिम' ॥८॥

घत्ता

वलएवहोँ वयणु सुणेप्पिणु किक्किन्धाहिवेण हसिउ ।
'किउ रत्तहोँ तयउ कहाणउ भोयणु मुएँवि छाणु असिउ ॥९॥

[१२]

खणेँ खणेँ बोल्लहिँ णाइँ अयाणउ । किं पइँ ण सुयउ लोयाहाणउ ॥१॥
ज॰ व किं पि अक्खरएँ ण छिज्जइ । ता किं माणुस-मेत्तेँ छिज्जइ ॥२॥

दिया। जो लोग सीता को खोजने के लिए गये थे वे भी इसी अवसर पर लौटकर आ गये। तब राम ने उनसे पूछा, "अरे नर-वीर प्रचंड नल-नील और गवय-गवाक्ष, बताओ वह लंकानगरी यहाँ से कितनी दूर है?" इस पर जाम्बवंतने रामको यह उत्तर दिया कि "लवण समुद्रके घेरे में राक्षसद्वीप है जो सात सौ इक्कीस योजनका है। यह बात जिनेन्द्र ने केवलज्ञान से बताई है। उस लंका द्वीप में त्रिकूट नाम का पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन विस्तृत है। उस पर बत्तीस योजनकी लंकानगरी है। रावण उसका एक मात्र निःशंक राजा है। वह दूसरे समुद्रों से घिरी हुई है। एक तो सिंह देखने में वैसे ही भयंकर होता है दूसरे वह कवच पहने हो॥ १-१२॥

[११] जिस रावणसे तीनों लोक आशंकित रहते हैं उससे कौन लड़ सकता है। अतः हे राघव, इस आलापसे क्या और सीता देवीके प्रति प्रलापसे क्या। मेरी पीन स्तनोंवाली और रूप में अत्यन्त सुन्दर तेरह कन्याएं स्वीकार कर लें। इनके नाम हैं— गुणवती, हृदयवर्म, हृदयावलि, स्वरवती, पद्मावती, रत्नावली, चन्द्रकान्ता, श्रीकान्ता, अनुद्धरा, चारुलक्ष्मी, मनवाहिनी और सुन्दरी। जिनवर की साक्षी लेकर आप इनसे विवाह कर लें।" यह सुनकर राम ने कहा कि इनमें से मुझे एक भी नहीं रुचती। यदि रम्भा या तिलोत्तमा भी हो तो भी सीता की तुलना में मेरे लिए कुछ नहीं। रामके इन वचनों को सुनकर किष्किन्धानरेश सुग्रीव ने हँसते हुए निवेदन किया, "अरे तुम तो उस अनुरक्त (प्रेमी) की कहानी कह रहे हो जो भोजन छोड़कर छाछ पसन्द करता है॥ १-६॥

[१२] तुम जो बार-बार अज्ञानीकी तरह बोल रहे हो, तो क्या तुमने यह लोक-आख्यान नहीं सुना कि जो बात एक

पुसमाणु जइ सीयहेँ पासिउ । सो करेँ वयणु महारउ भासिउ ॥३॥
वरिसेँ वरिसेँ तिहुवण-संतावणु । जइ वि णेइ एक्केक्का रावणु ॥४॥
सो वि अक्लित सउ सेरह वरिसइँ । जाहँ सुरिन्द-भोग-अणुसरिसइँ ॥५॥
उप्परन्तेँ पुणु काइ मि होसइ' । तं णिसुणेवि वयणु बलु घोसइ ॥६॥
'मइ मारेवउ वइरि स-हत्थेँ । लाएवउ सर-कुसुम-पन्थेँ ॥७॥
तिय-परिहउ सव्वह मि गरूवउ । णं तो पइ मि सइँ जि अणुहुअउ ॥८॥

घत्ता

जो मइलिउ विहि-परिणामेँण अयस-कलङ्क-पङ्क-मलेँहिं ।
सो जस-पङ्कु पक्खालेवउ दहमुह-सीस-सिलायलेँहिं' ॥९॥

[१२]

तं णिसुणेवि वुत्तु सुग्गीवें । 'चिन्तहुं कवणु समउ दहगीवें ॥१॥
एक्कु कुरङ्गु एक्कु अइरावउ । पाहणु एक्कु एक्कु कुल-पावउ ॥२॥
एक्कु समुद्दु एक्कु कमलायरु । एक्कु भुअङ्गु एक्कु खगेसरु ॥३॥
एक्कु मणुसु एक्कु वि विज्जाहरु । तहोँ तुम्हहुँ वड्डारउ अन्तरु ॥४॥
जेँ जस-पडहु जेण अप्फालिउ । गिरि कइलासु करेँहिं संचालिउ ॥५॥
जेण महाहवेँ भग्गु पुरन्दरु । जसु वइसवणु वरुणु वइसाणरु ॥६॥
जेम समीरणो वि जिउ सव्वेँ । कवणु गहणु तहोँ माणुस-मेत्तेँ' ॥७॥
हरि वयणेण तेण आरुट्ठउ । णाइँ सणिच्छरु विसेँ दुट्ठउ ॥८॥

घत्ता

'अङ्गय-णल-सुग्गीवहोँ बाहु-सहेज्जा होइ तुहुँ ।
हउँ लक्खणु एक्कु पहुच्चमि जो दहगीवहोँ जीव-खउ' ॥९॥

अप्सरा नहीं कर सकती क्या वह एक मनुष्यनी कर सकती है। यदि तुम्हारा सन्तोष और तृप्ति सीतादेवीसे ही सम्भव है तो हमारी बात मानो। जब तक रावण वर्ष-वर्ष करके तेरह वर्ष निकालता है तब तक देवेन्द्रके भोगोंके सदृश तुम्हारे तेरह वर्ष बीत जाएँगे, उसके बाद कुछ तो भी होगा।" यह सुनकर रामने उत्तर दिया—"मैं तो शत्रु को अपने हाथ मारूँगा और उसे खर-दूषण के पथ पर पहुँचाऊँगा। स्त्री का पराभव सबसे भारी होता है। क्या स्वयं तुमने इसका अनुभव नहीं किया? भाग्य के फलोदय से जो मेरा यशरूपी वस्त्र अकीर्ति और कलंक के पंकमलसे मैला हो गया है उसे मैं रावण के सिर रूपी चट्टान पर (पछाड़कर) साफ करूँगा" ॥१-९॥

[१२] यह सुनकर सुग्रीव बोला, "अरे रावण के साथ कैसी लड़ाई? एक हिरन है तो दूसरा ऐरावत। एक पाहन है तो दूसरा कुलपावक। एक सरोवर है तो दूसरा समुद्र है। एक साँप है तो दूसरा गरुड़ है। एक मनुष्य है तो दूसरा विद्याधर। तुममें और उसमें बहुत बड़ा अन्तर है। जिसने दुनियामें अपने यशका डंका बजाया है, अपने हाथ से कैलाश पर्वत को उठा लिया है, जिसने महायुद्ध में इन्द्र, यम, वैश्रवण, अग्नि और वरुण को भी परास्त कर दिया है, क्षात्रत्व में जिसने पवनको भी जीत लिया, मनुष्य के द्वारा उसका ग्रहण कैसे हो सकता है?" उसके वचनसे लक्ष्मण ऐसे कुपित हो उठा मानो शनिश्चर ही अपने मन में रूठ गया हो। उसने कहा, "अंग, अंगद, नील अपनी भुजाओं को सहेजकर बैठे रहो। जाओ। रावण के जीवन को नष्ट करनेवाला अकेला मैं लक्ष्मण ही पर्याप्त हूँ" ॥१-९॥

[१४]

तं वयणु सुणेंवि णयणुप्पाएण । सुग्गीउ वुत्तु जम्बुण्णाएण ॥१॥
'एहु होइ ण कों वि सावण्णु णरु । सच्चउ पडिवक्ख विणासयरु ॥२॥
जं चवइ सव्वु तं णिव्वहइ । को असिवरु सूरहासु लहइ ॥३॥
जो जीविउ सम्बुकहों हरइ । जो खर-दूसण-कुल-खउ करइ ॥४॥
सो रणें पहरन्तु केण धरिउ । खय-कालु दसासहों अवयरिउ ॥५॥
परमागमु णीसन्देहु थिउ । केवलिहिँ आसि आएसु किउ ॥६॥
आलिङ्गेंवि बाहहिँ जिह महिल । जो संचालेसइ कोडि-सिल ॥७॥
सो होसइ मच्चु दसाणणहों । सामिउ विज्जाहर - साहणहों' ॥८॥

घत्ता

जम्बवहों वयणु णिसुणेप्पिणु धुणिउ कुमारें भुअ-जुअलु ।
'किं एक्कें पाहण-खण्डेंण धरमि स-सायरु धरणि-यलु' ॥९॥

[१५]

तं णिसुणेवि वयणु परितुट्ठें । वुत्तु जणद्दणु वालि-कणिट्ठें ॥१॥
'जं जं चवहि देव तं सच्चउ । अण्णु वि एउ करहि जइ पच्चउ ॥२॥
तो हउँ भिच्चु होमि हियइच्छिउ । सूरहों दिवसु व वेल पडिच्छिउ' ॥३॥
तं णिसुणेवि समर - दुस्सीलेंहिँ । णरवइ बुज्झाविउ णल-णीलेंहिँ ॥४॥
'जेण सरेंहिँ खर-दूसण घाइय । पत्तिय कोडि-सिल वि उच्चाइय' ॥५॥
एम चवेवि चलिय विज्जाहर । णव - कङ्कालें णाइँ णव जलहर ॥६॥
लक्खण-राम चडाविय जाणेंहिँ । घण्टा - झुणि - झङ्कार-पहाणेंहिँ ॥७॥
कोडि-सिला - उद्देसु पराइय । सिद्धेंहिँ सिद्धि जेम णिज्झाइय ॥८॥

[१४] तब इन वचनोंको सुनकर जाम्बवन्तने सुग्रीवसे निवेदन किया कि शत्रुपक्षके संहारकर्त्ता इसे आप मामूली आदमी न समझें। यह जो कहते हैं कर दिखाते हैं। जिसने सूर्यहास खड्ग ग्रहण किया और जिसने शम्बूक कुमार के प्राण लिये, जिसने खर-दूषणके कुलका नाश कर दिया, युद्धमें प्रहार करते हुए उसे कौन पकड़ सकता है? रावण के लिए मानो वह क्षयकाल ही अवतरित हुआ है। परमागम आज प्रमाणित हो गया है। केवलज्ञानियोंने बहुत पहले यह आदेश कर दिया था कि जो कोटिशिला का संचालन वैसे ही कर लेगा जैसे कि कोई अपनी स्त्री को बाँहों में भरकर आलिंगन कर लेता है, वही रावणका प्रतिद्वन्द्वी और विद्याधरोंकी सेना का स्वामी होगा। जाम्बवंत के इन वचनोंको सुनकर कुमार लक्ष्मणने अपना भुजकमल ठोककर कहा, "अरे एक पाषाणखण्ड से क्या, कहो तो सागर सहित धरती ही उठा लूँ" ॥१-९॥

[१५] यह वचन सुनकर, सन्तुष्ट होकर बालिके छोटे भाई सुग्रीवने लक्ष्मण से कहा, "हे देव ! तुम जो कहते हो यदि वह सच है, तो इस बातको और सच करके दिखा दो तो मैं हृदय से तुम्हारा अनुचर हो जाऊँगा, वैसे ही जैसे सूर्यका दिन या समय अनुचर है।" यह सुनकर युद्धमें दुःशील नल और नीलने सुग्रीवको समझाया कि जिसने बाणोंसे खरदूषणको आहत कर दिया है, विश्वास करो, वह कोटिशिला भी उठा देगा। यह कहकर विद्याधर चल पड़े। मानो नव पावस में मेघ ही चल पड़े हों। घंटाध्वनि और झंकारसे प्रमुख यानों पर राम-लक्ष्मणको बैठाकर वे कोटिशिलाके प्रदेशमें पहुँचे वैसे ही जैसे सिद्धि सिद्धि का ध्यान करते हुए वहाँ पहुँचते हैं। वह शिला उन्हें ऐसी लगी मानो

घत्ता

जा सयल-काल-छिण्डन्तहुँ हुअ वण-वासेँ परम्मुहिय ।
सा एवहिँ लक्खण-रामहुँ णं थिय सिय सवडम्मुहिय ॥९॥

[१६]

लोयग्गहोँ सिव-सासय-सोक्खहोँ । जहिँ मुणिवरहुँ कोडि गय मोक्खहोँ ॥१॥
सा कोडि-सिल तेहिँ परिअञ्चिय । गन्ध - धूव-बलि-पुप्फेँहिँ अञ्चिय ॥२॥
दिण्ण स-सङ्खपडह किउ कलयलु । घोसिउ चउ-पयारु जिण-मङ्गलु ॥३॥
'जसु दुन्दुहि असोउ भामण्डलु । सो अरहन्तु देउ तउ मङ्गलु ॥४॥
जे गय तिहुयणग्गु तं णिक्कलु । ते सिद्धवर देन्तु तउ मङ्गलु ॥५॥
जेहिँ अणङ्गु भग्गु जिउ कलि-मलु । ते वर-साहु देन्तु तउ मङ्गलु ॥६॥
जो छज्जीव-णिकायहुँ वच्छलु । सो दय-धम्मु देउ तउ मङ्गलु' ॥७॥
एम सु-मङ्गलु उच्चारेप्पिणु । सिद्धवरहुँ णवकारु करेप्पिणु ॥८॥
जय-जय-सद्दें सिल संचालिय । रावण-रिद्धि णाइँ उद्दालिय ॥९॥
मुक्क पईवि करयल-तालिय । दहमुह-हियय-गण्ठि णं फालिय ॥१०॥

घत्ता

परितुट्ठेँ सुरवर-लोऍण जय - सिरि-पवण-कडक्खणहोँ ।
पम्मुक्कु स हं भु व-दण्डेँहिँ कुसुम-वासु सिरेँ लक्खणहोँ ॥११॥

●

[४५. पञ्चचालीसमो सन्धि]

कोडि-सिलएँ संचालियएँ दहमुह-जीविउ संचालि(य)उ ।
णाइँ देवेँहिँ महियलेँ णरेँहिँ आणन्द-तूरु अप्फालि(य)उ ॥

[१]

रह - विमाण - मायङ्ग - तुरङ्गम- वाहणे ।
विजउ घुट्ठु सुग्गीवहोँ केरएँ साहणे ॥१॥

हमेशा विहार करनेवाले राम-लक्ष्मणके चरणोंमें निश्चल होकर सीता ही इस समय शिलाके रूपमें सामने स्थित है ॥१–९॥

[१६] जिस शिलासे करोड़ों मुनि शाश्वत सुख-स्थान मोक्षको गये थे, ऐसी उस शिलाकी उन्होंने परिक्रमा दी और गन्ध, धूप, नैवेद्य और पुष्पोंसे उसकी अर्चा की, फिर शंख और पटह बजाकर कलकल शब्द किया और चार मंगलोंका इस प्रकार उच्चारण किया—"जिसके दुन्दुभि अशोक और भामण्डल हैं वे अरहंत देव मंगल करें। जो निष्कल तीनों लोकोंके अग्रभागमें स्थित हैं वे सिद्धवर तुम्हें मङ्गल दें। जिन्होंने कलिमलकी तरह कामको भी भङ्ग कर दिया है, वे वरसाधु तुम्हें मंगल दें, जो छह जीव निकायोंके प्रति ममता रखता है, वह दया-धर्म (जिनधर्म) तुम्हें मंगल दें," इस प्रकार सुमंगलोंका उच्चारणकर और सिद्धोंको नमस्कारकर, जय-जय शब्दोंके साथ उन्होंने कोटिशिला ऐसे संचालित कर दी, मानो रावणकी ऋद्धि ही उखाड़ दी हो! हाथसे उसे ताडितकर छोड़ दिया मानो रावणके हृदयकी गाँठ ही तोड़ दी हो। तब सुरलोकने भी सन्तुष्ट होकर जयश्री पानेवाले लक्ष्मणके ऊपर अपने हाथोंसे फूलोंकी वर्षा की ॥१–११॥

●

पैंतालीसवीं सन्धि

कोटिशिलाके चलित होने पर, रावणका जीवन भी डोल उठा, देवोंने आकाशमें और मनुष्योंने धरतीपर आनन्दकी दुंदुभि बजाई।

[१] विद्याधरोंने हाथ जोड़कर रामका अभिनन्दन किया। योधाओंका समूह, विश्वम्भरके जिन-मन्दिरोंकी परिक्रमा और

एत्थन्तरेँ सिरेँ छाइय करेहिँ । ओहारिउ बलु विज्जाहरेहिँ ॥२॥
जगेँ जिणवर-भवणइँ जाइँ जाइँ । परिभमेँवि अच्चेँवि ताइँ ताइँ ॥३॥
पच्छइ पईसरिउ सुहड-पवरु । णिविसेण पत्तु किक्किन्ध-णयरु ॥४॥
एत्तियइँ कियइँ साहसइँ जइ वि । सुग्गीवहोँ मणेँ संदेहु तो वि ॥५॥
अहोँ जम्बव चरिउ महन्तु कासु । किं रहुवयणहोँ किं लक्खणासु ॥६॥
कइलासु तुलिउ एक्कें पचण्डु । अण्णेक्कें पुणु पाहाण - खण्डु ॥७॥
वज्जरउ साहसु विहि मि कवणु । किं सुहगइ किं संसार-गमणु' ॥८॥
जम्बवेँण वुत्तु 'मा मणेँण मुज्झु । किं अज्ज वि पडु सन्देहु तुज्झु ॥९॥

वज्जरउ वसुन्धरेँण परमागमु सव्वहोँ पासिउ ।
जम्म-सए वि णराहिवइ किं चुक्कइ मुणिवर-भासिउ' ॥१०॥

[२]

तं णिसुणेँवि सुग्गीवहोँ हरिसिय - गत्तहो ।
फिट्ट भन्ति जिण-वयणेँहिँ जिह मिच्छत्तहो ॥१॥

आगम - बलेण उवलद्धएण । अवलोइउ सेण्णु कइद्धएण ॥२॥
'किं को वि अत्थि एत्तियहँ मज्झेँ । जो लग्गु समोहइ गरुअ-चोज्जेँ ॥३॥
जो उज्जालइ महु तणउ वयणु । जो दरिसइ वलहोँ कलत्त-रयणु ॥४॥
जो तारइ दुक्ख - महण्णईहेँ । जो जाइ गवेसउ जाणईहेँ ॥५॥
तं णिसुणेँवि जम्बउ चविउ एव । 'हणुवन्तु मुएँवि को जाइ देव ॥६॥
णउ जाणहुँ किं आरुट्ठु सो वि । जं णिहउ सम्बु खरु दूसणो वि ॥७॥
तं रोसु धरेँवि मच्छर - तणुउ । रावणहोँ मिलेसइ पवर हणुउ ॥८॥
जं जाणहोँ चिन्तहोँ तं पएसु । तेँ मिलिएँ मिलियउ जगु असेसु ॥९॥

वन्दना-भक्ति करके किष्किन्धा नगरी आधे पलमें ही चला आया। राम और लक्ष्मण यद्यपि इतने साहसका प्रदर्शन कर चुके थे फिर भी सुग्रीवके मनमें सन्देह बना रहा। उसने कहा, "अहो जाम्बवन्त बताओ महान् चरित्र किसका है, रावणका या लक्ष्मणका, एकने प्रचण्ड कैलाश पर्वत उठाया तो दूसरेने कोटिशिलाको उठा लिया। बताओ दोनोंमें साहसी कौन है? कौन शुभ गतिवाला है, और कौन संसारगामी है?" तब जाम्बवन्तने कहा, "मनमें मूर्ख मत बनो, क्या प्रभु तुम्हें आज भी सन्देह है। सबकी अपेक्षा परमागम (जिनागम) बड़ेसे भी बड़ा है। हे राजन्, क्या सैकड़ों जन्मोंमें भी मुनिवरोंका कहा झूठ हो सकता है" ॥१-९॥

[२] यह सुनकर हर्षित शरीर सुग्रीवके मनकी भ्रान्ति दूर हो गई। वैसे ही जैसे जिन वचनको सुननेसे मिथ्यादृष्टिकी भ्रान्ति मिट जाती है। आगमके बलपर इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सुग्रीवने अपनी सेनाका अवलोकन करते हुए पूछा, "क्या आप लोगोंके बीचमें ऐसा कोई वीर है, जो इस गुरु भारको अपने कन्धेपर उठा सकता हो, मेरा मुख उज्ज्वल कर सकता हो, रामको उसका छोर दिखा सकता हो, जो इस दुख महानदीसे तार सकता हो, और जाकर सीता देवीको खोज सकता हो"। यह सुनकर जाम्बवन्त बोला, "हे देव, हनुमानको छोड़कर और कौन जा सकता है। यह मैं नहीं जानता कि वह भी आजकल हमसे रुष्ट क्यों है, शायद खरदूषण और शम्बूक मार जो दिये गये हैं। इस रोषको लेकर शीघ्र हनुमान् केवल रावणसे ही मिलेगा। जो जानते हो तो उसे लानेका उपाय सोचो। क्योंकि हनुमानके मिलनेसे अशेष जग मिल जायगा। राम और रावणकी सेनामें

घत्ता

विहि मि राम-रामण-बलहुँ एक्कु वि वङ्किमउ ण दीसइ ।
सहुँ जय-लच्छिएँ विजउ तहिँ पर जहिँ हणुवन्तु मिलेसइ' ॥१०॥

[३]

तं णिसुणेँवि किक्किन्ध - णराहिउ रञ्जिओ ।
लच्छिभुत्ति हणुवन्तहोँ पासु विसज्जिओ ॥१॥

'पइँ मुएँवि अण्णु को बुद्धिवन्तु । जिह मिलइ तेम करि किं पि मन्तु ॥२॥
गुण-वयणेँहिँ गम्पिणु पवण-पुत्तु । भणु "एत्थु कालेँ रूसँवि ण जुत्तु ॥३॥
खर- दूसण- सम्बु पसाहियत्त । अप्पणु दुच्चरिएँहिँ मरणु पत्त ॥४॥
णउ रामहोँ णउ लक्खणहोँ दोसु । जिह तहोँ तिह सव्वहोँ होइ रोसु ॥५॥
भणु एत्तिएण कालेण काइँ । चम्मुणहिहेँ चरियइँ ण वि सुयाइँ ॥६॥
लक्खण- सुआएँ विरहाउराएँ । खर-दूसण पसाहिय-मलाएँ" ॥७॥
तं वयणु सुणेँवि आणन्दु हूउ । आरूढु विमाणेँ तुरन्तु दूउ ॥८॥
संचल्लिउ पुलय - विसट्ट-गत्तु । णिविसद्धे लच्छीणयरु पत्तु ॥९॥
पइट्ठणु पवण-सुअहोँ तणउ थिउ हणुरुह-दीवेँ रवण्णउ ।
महियलेँ केण वि कारणेँण ण सग्ग-खण्डु अवइण्णउ ॥१०॥

[४]

लच्छिभुत्ति तं लच्छीणयरु पईसई ।
पवहरन्तु जं सुन्दरु तं तं दीसई ॥१॥
देवल्याउ पण्णु पडिखुउ । फोप्फलु अण्णु मूलु चेडखुउ ॥२॥
जाईहलु करहाडउ चुण्णउ । चित्तउडउ कक्कडउ रवण्णउ ॥३॥
रामउरउ गुलु सरु पइट्ठाणउ । अङ्गवङ्गउ भुजङ्गु वहु - जाणउ ॥४॥
अङ्ग-वेसु पिउ अवुअ - केरउ । जोव्वणु कण्णाडउ सवियारउ ॥५॥
पेलउ हरिकेलउ - सच्छायउ । वङ्गायरउ लोणु विक्खायउ ॥६॥
वइरायरउ वज्ज मणि सिंहलु । णेवालउ कत्थूरिय - परिमलु ॥७॥
मोत्तिय - हार-णियरु सञ्जाणउ । खरु बब्बरउ तुरउ केक्काणउ ॥८॥
वर काविहि सुहु पउणारी । वाणि सुहासिणि पण्डुरवारी ॥९॥

एक भी बलवान नहीं दिखाई देता। हाँ जयलक्ष्मीके साथ विजय उसीकी होगी जिसके पक्षमें हनुमान होगा" ॥१-१०॥

[३] यह सुनकर किष्किन्धराज सुग्रीव प्रसन्न हो गया। उसने लक्ष्मीभुक्ति दूत को हनुमान के पास भेजा (यह कहते हुए) कि "तुम्हारे समान दूसरा कौन बुद्धिमान है। ऐसा कोई उपाय करो जिससे वह (पक्ष में) मिल जाए। जाकर, गुणों और वचनोंके साथ हनुमानसे कहो कि इस समय रूठना ठीक नहीं। प्रसिद्धि से रहित खर दूषण और शम्बूकुमार अपने खोटे आचरणों से मृत्यु को प्राप्त हुए। इसमें न रामका और न लक्ष्मणका दोष है। जिस प्रकार उन्हें रोष हुआ, उस प्रकार सबको रोष होता है। कहना कि इस समय तक क्या तुमने चन्द्रनखा के आचरणों को नहीं सुना ? लक्ष्मण से अपमानित होकर, विरह से पीड़ित उस दुष्टा ने खर-दूषण को मरवा डाला।" ये वचन सुनकर दूत आनन्दित हुआ। वह तुरन्त विमानमें बैठ गया। पुलकसे खिला हुआ शरीर वाला वह दूत आधे पलमें लक्ष्मीनगर पहुँच गया। हनुमान का नगर, हनुरुह द्वीप में सबसे सुन्दर था। वह ऐसा लगता था जैसे किसी कारण स्वर्ग ही धरती पर आ पड़ा हो।

[४] लक्ष्मीभुक्ति उस लक्ष्मीनगर में प्रवेश करता है, और घूमते हुए जो-जो सुन्दर है उसे देखता है।

पहला देवकुलवाट पर्ण था, दूसरा पूगफल मूल चैत्यकुल, जातिपुष्प करहाटक, चूर्णक चित्रकुटक, सुन्दर कंचुक, रामपुर, गुल सर प्रतिष्ठान, अत्यंत विशाल भुजंग बहुयान, अर्द्ध वेश्म प्रिय अर्बुद, केरक जोव्वण कर्णाटक सविकार, हरिकेल वस्त्र, सुंदर कांतिवाला, विशाल विख्यात लवण, वैदूर्यमणि, सिंहलका वज्र-मणि, मोतियों के हारसमूह नेपालकी कस्तूरीगंध, खर वज्जर,

कण्णी-केरउ णयरु विसिट्ठउ । णाणउ णेत्तु विहडेंहिं दिट्ठउ ॥१०॥
अण्णु इन्दु-वायरणु गुणिज्जइ । भुअबलइँ [illegible] [illegible] ॥११॥
एम णयरु गउ णिक्खणन्तउ । रायउलु पवण-सुअहों संपत्तउ ॥१२॥

घत्ता

सो पडिहारिएँ णम्मयएँ सुग्गीव-दूउ ण णिवारिउ ।
णाइँ महण्णवों णम्मयएँ णिय-जलपवाहु पइसारिउ ॥१३॥

[५]

दिट्ठु तेण दूरहों वि समीरण-णन्दणो ।
सिसिर कालें दिवसयरु व णयणाणन्दणो ॥१॥

सिरिसइल णरेण णिहालियउ । णं करि करिणिहिं परिमालियउ ॥२॥
एक्केत्तहें गुरु णिविट्ठ तिय । वर - वीणाविहत्थी पाण-पिय ॥३॥
णामेणाणङ्गकुसुम सुभुअ । सस सम्बुकुमारहों खरहों सुअ ॥४॥
अण्णेक्केत्तहें अण्णेक्क तिय । वर-कमल-विहत्थी णाइँ सिय ॥५॥
सा पङ्कयराय अभङ्गयहों । सुग्गीवहों सुअ सस अङ्गयहों ॥६॥
विहिं पासेंहिं बे वि वरङ्गणउ । कुवलय - दल - दीहर-लोयणउ ॥७॥
रेहइ सुन्दरु मज्झत्थु किह । विहिं सञ्झहिं परिमिउ दिवसु जिह ॥८॥
एत्थन्तरें गुज्झु ण रक्खियउ । हणुवन्तहों दूएं अक्खियउ ॥९॥

घत्ता

'खेमु कुसलु कल्लाणु जउ सुग्गीवङ्गय-वीरहुँ ।
अकुसलु मरणु विणासु खउ खर-दूसण-सम्बुकुमारहुँ' ॥१०॥

[६]

कहिउ सव्वु तं लक्खण-राम-कहाणउं ।
दण्डयारु मुणि-कोञ्चि-सिला-अवसाणउं ॥१॥

तं सुणेंवि अणङ्गकुसुम रुइय । पङ्कयरायाणुराय - भरिय ॥२॥

केवकाणक, श्रेष्ठ कपित्थ, गउणारी वाणी, सुभादिणी नंदुरवारी, विशिष्ट कांची नगरी, चीनी वस्त्र, उन विदग्धोंने देखा। और भी, वहाँ इन्द्रका व्याकरण पढ़ा जा रहा था। तूपाल रागमें गान हो रहा था। इस प्रकार नगर को देखता हुआ, लक्ष्मीभुक्ति पवन-सुतके राजकुलमें पहुँचा। नर्मदा प्रतिहारीने आते हुए उस दूतको नहीं रोका। मानो नर्मदा ने महासमुद्रमें सुग्रीवके अपने प्रवाहको प्रवेश कराया हो।" ॥१-१३॥

[५] उसने भी दूरसे समीर-पुत्र हनुमानको देखा। मानो शिशिरकालमें नयनानन्दकारी दिवाकरको ही देखा हो। दूतने हनुमानको ऐसे देखा, मानो हाथी हथिनियोंसे घिरा हुआ बैठा हो। एक ओर एक स्त्री बैठी थी। प्राणप्रिय उसके हाथमें वीणा थी। सुबाहुओं वाली उसका नाम अनंगकुसुम था। वह शम्बूक-कुमारकी बहन और खरकी लड़की थी। दूसरी ओर एक और स्त्री बैठी थी जो अपने सुन्दर करकमलोंसे लक्ष्मीकी तरह जान पड़ती थी। वह अभंग सुग्रीवकी लड़की और अंगदकी बहन पंकजरागा थी। उन दोनोंके पास ही, सुन्दर अंगोंवाला, कुवलयदलकी तरह दीर्घनयन, बीचमें बैठा हुआ हनुमान ऐसा सोह रहा था मानो दोनों संध्याओंके बीचमें परिमित दिन हो। इसी अन्तरमें दूतने कोई बात छिपा नहीं रक्खी, हनुमानसे सब कुछ कह दिया। उसने वीर सुग्रीव, अंग और अंगदके क्षेमकुशल, कल्याण और जयका (वृत्तान्त) बताया और खरदूषण तथा शम्बुककुमारका, अकुशल, अकल्याण, विनाश और क्षय बताया ॥ १-१० ॥

[६] उसने राम-लक्ष्मणकी सब कहानी उन्हें सुना दी कि किस प्रकार दण्डकवनमें उन्होंने कोटिशिलाको उठा लिया। यह सुनकर अनंगकुसुम डर गई परन्तु पंकजरागा अनुराग से भर

एक्कहें णं मज्झासणि पडिय । अण्णेक्कहें रोमावलि चडिय ॥३॥
एक्कहें मणें णाहें पलेवणउ । अण्णेक्कहें पुणु वद्धावणउ ॥४॥
एक्कहें सरीरु णिच्चेयणउ । अण्णेक्कहें सव्वगय - वेयणउ ॥५॥
एक्कहें हियवउ पलु पलु सहसिउ । अण्णेक्कहें पलु पलु ओससिउ ॥६॥
एक्कहें ओहुल्लिउ मुह-कमलु । अण्णेक्कहें वियसिउ अहर-दलु ॥७॥
एक्कहें जल-भरियइँ लोयणइँ । अण्णेक्कहें रहस - पलोयणइँ ॥८॥
एक्कहें सरु वर-णयहों तणउ । अण्णेक्कहें कलुणु हवावणउ ॥९॥
एक्कहें थिउ राउलु विमण-मणु । अण्णेक्कहें णच्चइ णाइँ जणु ॥१०॥

घत्ता

अद्धउ अंसु - जलोल्लियउ अद्धउ सरहसु रोमञ्चियउ ।
राउलु पवण-सुयहों तणउ णं हरिस-विसाय-पणच्चियउ ॥११॥

[७]

खरहों धाय सुप्पणह पुणु वि पराइया ।
चन्दणेण पक्खालिय पच्चुज्जीविया ॥१॥

उट्ठिय रोवन्ति अणङ्गकुसुम । णं चम्पय-लय उच्छिण्ण-कुसुम ॥२॥
'हा ताय केण विणिवाइओ सि । विज्जाहरु होन्तउ माइओ सि ॥३॥
सूराण सूरु जस-णिक्कलङ्कु । विज्जाहर - कुल-णहयल - मयङ्कु ॥४॥
हा भाइ सहोयर देहि वाय । मिलवन्ति कासु पइँ मुक्क माय' ॥५॥
तं णिसुणेंवि कुसलेंहिं पण्डिएहिं । सद्दत्थ - सत्थ - परिचड्डिएहिं ॥६॥
'किं ण सुउ जिणागमु जगेँ पगासु । जायहों जीवहों सव्वहों विणासु ॥७॥
जल-बिन्दु जेम चडुलें पडन्तु । जं दीसइ तं साहसु महन्तु ॥८॥
साहारु ण बन्धइ एइ जाइ । अरहन्त-जम्में णव घडिय णाइँ ॥९॥

उठी। एक पर मानो वज्र ही टूट पड़ा हो तो दूसरी पर पुलक चढ़ आया। एकके मनमें प्रलाप उठा तो दूसरे के मनमें बधाईकी बात आई। एकका शरीर निश्चेतन हो गया तो दूसरीको समस्त वेदना चली गई। एकाका हृदय पल-पलमें टूटने लगा, तो दूसरी पल-पलमें आश्वस्त होने लगी। एकका मुखकमल कुम्हला गया, दूसरीका अधरदल हँस उठा। एककी आँखोंमें पानी भर आया, दूसरी हर्ष से देख रही थी। एकका स्वर संगीतमय हो रहा था और एक अन्य करुण विलाप कर रही थी। एकका राजकुल विमन हो उठा, दूसरीका पूर्णचन्द्रकी तरह बढ़ने लगा। पवनपुत्र हनुमानके शरीरका आधा भाग आँसुओंसे आर्द्र हो रहा था और आधा हर्षसे पुलकित ॥१-११॥

[७] खरकी लड़की, बार-बार मूछित हो उठती। चन्दनका लेप करने पर उसे चेतना आई। वह विलाप करती हुई ऐसी उठी, मानो छिन्नकुसुम चन्दनकी लता ही हो। "हे तात, तुम्हें किसने मार दिया। विद्याधर होकर भी तुम्हारा घात हो गया। शूरोंके भी शूर, अकलंक, यशस्वी, विद्याधरोंके कुलरूपी आकाशके चन्द्र, हे भाई, हे सहोदर, मुझसे बात करो। हे माँ, मुझ विलाप करती हुई को तुमने भी क्यों छोड़ दिया।" यह सुनकर शब्द-अर्थ और शास्त्रमें पारंगत कुशल पंडितोंने कहा, "क्या तुमने जगमें प्रसिद्ध जिनागममें यह नहीं सुना कि जो जीव उत्पन्न होता है, उसका नाश भी अवश्य होता है? जलबिन्दुकी तरह धुँधलमें पड़े हुए जीव को जो कुछ दिखाई देता है, वही बहुत साहसकी बात है, उसे कोई सहारा नहीं बाँध पाता, आता और जाता है. वैसे ही जैसे

घत्ता

रोवहि काइँ अकारणेंण धीरवहि माएँ अप्पाणउ ।
अम्हहँ तुम्हहुँ अवरहु मि कहिवसु थि अवस-पयाणउ' ॥१०॥

[८]

खरहो धीय परिधीरविया परिवारेंणं ।
मय-जलं व हेवाविय लोयाचारेंणं ॥१॥
इहेरिसम्मि वेलए । परिट्ठिए धमालए ॥२॥
समुट्ठिओऽरिमद्दणो । समीरणस्स णन्दणो ॥३॥
पलम्ब-बाहु-पञ्जरो । णिरङ्कुसो व्व कुञ्जरो ॥४॥
महाहवस्स उप्परी । विरुद्धउ व्व केसरी ॥५॥
फुरन्त-रत्त-लोयणो । सणि व्व सावलोयणो ॥६॥
दुवारसो व्व भक्खरो । जमो व्व दिट्ठि-णिट्ठुरो ॥७॥
विहि व्व किञ्चिदुट्ठिओ । ससि व्व अट्ठमो ठिओ ॥८॥
विहप्फइ व्व अम्मणो । अहि व्व कूर-कम्मणो ॥९॥

घत्ता

'मइँ हणुवन्तें कुइएँण कहिँ जीविउ लक्खण-रामहुँ ।
दिवसेँ चउत्थएँ पइसमि पन्थेँ खर-दूसण-णामहुँ' ॥१०॥

[९]

लच्छिभुत्ति पभणिउ सुहि-सुमहुर-वायए ।
'एउ सच्चु किउ सम्बुकुमारहो मायए ॥१॥
देव गयण-गोयराएँ । कामकुसुम-मायराएँ ॥२॥
उववणं पढुक्कियाएँ । सुअ-विओय-सुक्कियाएँ ॥३॥
रावणस्स लहु-ससाएँ । काम-सर-परव्वसाएँ ॥४॥
लक्खणम्मि गय-मणाएँ । दिव्व-रूव-दावणाएँ ॥५॥

रहटयन्त्रमें लगी हुई नई घड़ियाँ आती जाती रहती हैं। तुम अकारण क्यों रोती हो। हे माँ अपनेको धीरज दो, हमारा तुम्हारा और दूसरोंका भी किसी-न-किसी दिन प्रयाण अवश्य होगा ॥१-१८॥

[८] परिवारने भी खरकी पुत्रीको धीरज बँधाया और लोकाचारके अनुसार, मृतजल भी उससे दिलवाया। इस तरहके कलकल ध्वनि बढ़नेपर शत्रुसंहारक, पवनका पुत्र हनुमान उठा, लम्बी बाहुओंसे पुष्ट ?, गजकी तरह निरङ्कुश, राजाके ऊपर सिंह की तरह क्रुद्ध, फड़कते हुए नेत्रोंवाला, वह देखनेमें शनिकी तरह था। सूर्यकी तरह दुर्निवार, यमकी तरह निष्ठुरदृष्टि, भाग्यकी तरह कुछ उठा हुआ, अष्टमीके चन्द्रकी तरह वक्र, जन्ममें बृहस्पति की तरह, क्रूरकर्ममें अहिकी तरह था वह। उसने घोषणा की, "मुझ हनुमानके क्रुद्ध होनेपर राम और लक्ष्मणका जीवन कैसे (सम्भव है) चौथे ही रोज मैं उन्हें खरदूषण मामा (ससुर) के पथपर भेज दूँगा ?" ॥१-१०॥

[९] तब लक्ष्मीभुक्ति दूतने अत्यन्त, श्रुतिमधुर वाणीमें कहा, "यह सब शम्बुकुमारकी माँने किया है। हे देव, अनंग-कुसुमकी माँ, विद्याधरी चन्द्रनखा, एक दिन उपवनमें पहुँची। रावणकी बहन उसका मन, वहाँ अपने पुत्र वियोगके दुखको भुलाकर, कुमार लक्ष्मणपर रीझ गया। अपना दिव्यरूप दिखाते हुए उसने कहा, "मेरी रक्षा करो" परन्तु उन महापुरुषोंने उसकी

परइं समञ्छियाएँ । सुपुरिसेहिँ पञ्छियाएँ ॥६॥
विरह-दाह-झिम्भलाएँ । गय वियारिया खलाएँ ॥७॥
खरो स-दूसणो वि जेत्थु । गय कयन्ति ढुक्क तेत्थु ॥८॥
ते वि सलक्खणम्मि कुद्धय । चन्द-भक्खर व्व उद्धय ॥९॥
भिडिय राम-लक्खणाहँ । जिह कुरङ्ग वारणाहँ ॥१०॥
विच्छुणा सरेहिँ भिण्ण । पडिय पायव व्व छिण्ण ॥११॥
एत्तहेँ वि रणेँ थिरेण । णीय सीय दससिरेण ॥१२॥
हरि बला वि बे वि तासु । गय पुरं विराहियासु ॥१३॥
एत्थु अवसरम्मि राउ । मिलिउ अञ्जयस्स ताउ ॥१४॥
विड-भडो वि राहवेण । विणिहओ अलाहवेण ॥१५॥

घत्ता

तं किउ कोडि-सिलुद्धरणु केवलिहिँ आसि जं भासिउ ।
अम्हहुँ जउ रावणहों खउ कुद्धु लक्खण-रामहुँ पासिउ ॥१६॥

[१०]

कहिउ सव्वु जं चन्दणहिहेँ गुण-कित्तणु ।
अणिल-पुत्तु लज्जाविउ थिउ हेट्ठाणणु ॥१॥
जं पिसुणिउ कोडि-सिलुद्धरणु । अण्णु वि विडसुग्गीवहों मरणु ॥२॥
तं पवण-पुत्तु रोमञ्चियउ । णडु जिह रस-भाव-पणच्चियउ ॥३॥
कुलु णासु पसंसिउ लक्खणहों । सुर-सुन्दरि-णयण-कडक्खणहों ॥४॥
'सत्तउ णारायणु अट्ठमउ । दहवयणहों चन्दु व अट्ठमउ ॥५॥
मायासुग्गीउ जेण वहिउ । हलहरु अट्ठमउ सो वि कहिउ' ॥६॥
मणु जाणेंवि हणुवन्तहों तणउ । दूअहों हियवएँ वड्ढावणउ ॥७॥
सिरु णवेंवि णिरारिउ पिउ चवइ । सुग्गीउ देव पइँ सम्भरइ ॥८॥
अच्छइ गुण-सलिल-तिसाइयउ । तें हउँ हक्कारउ आइयउ ॥९॥

उपेक्षा कर दी, तब विरहसे विह्वल होकर उस दुष्टाने अपने स्तन विदीर्ण कर लिये और रोती-विसूरती हुई खरदूषणके पास पहुँची। वे दोनों भी तत्काल कुपित होकर, चन्द्र-सूर्यकी तरह प्रकट हुए। वे दोनों राम और लक्ष्मणसे उसी प्रकार भिड़े जिस प्रकार हरिणोंका झुण्ड सिंहसे भिड़ता है। लक्ष्मणके तीरोंसे आहत होकर वे दोनों कटे पेड़की तरह गिर पड़े। इधर रणमें अविचल रावणने छलसे सीताका हरण कर लिया। तब वहाँसे राम और लक्ष्मण विराधितके नगरको चले गये। ठीक इसी अवसरपर अंगदके पिता सुग्रीव रामसे मिले। तब रामने शीघ्र ही कपटी सुग्रीवको भी मार डाला। फिर उन्होंने उस कोटिशिलाको उठाया कि जिसके विषयमें केवलियोंने भविष्यवाणी की थी। अतः स्पष्ट है कि हमारी जय और रावणका क्षय राम-लक्ष्मणके पास है ॥१-१६॥

[१०] जब दूतने चन्द्रनखाके सब गुणोंका कीर्तन किया तो हनुमान लज्जित होकर मुख नीचा करके रह गया। और जो उसने कोटिशिलाका उद्धार तथा माया-सुग्रीवका मरण सुना तो वह पुलकित हो उठा। और वह नटकी तरह रसभावोंसे भरकर नाचने लगा। उसने सुर-सुन्दरियोंसे इष्ट लक्ष्मणके कुल-नामकी प्रशंसा की, राम ही वह आठवें नारायण हैं जो रावणके लिए अष्टमीके चन्द्रकी तरह वक्र हैं। माया सुग्रीवका जिसने वध किया, ऐसे ही आठवाँ नारायण कहा गया है। हनुमानके मनकी बात जानकर, दूतका हृदय अभिनन्दनसे भर आया। माथा नवाकर, निराकुल होकर उसने कहा, "देव, सुग्रीवने आपको स्मरण किया है। वह आपके गुणरूपी जलके प्यासे बैठे हैं, उन्हींके कहनेपर

घत्ता

पइँ विरहिउ झुलझुलुउ पुण्णालिहिँ चित्त व ऊणउ ।
ण वि सोहइ सुग्गीव-बलु जिह जोव्वणु धम्म-विहूणउ' ॥१०॥

[११]

एहु बोल्लु णिसुणेवि समीरण-णन्दणु ।
स-णाउ स-धउ स-तुरङ्गमु स-भडु स-सन्दणु ॥१॥
स-विमाणु स-साहणु पवण-सुउ । संचल्लिउ पुलय-विसट्ट-भुउ ॥२॥
तंवेसँ हणुएँ संचल्लु बलु । णं पाउसेँ मेह-जालु स-जलु ॥३॥
णं रिसह-जिणिन्द-समोसरणु । णं णाण-समएँ देवागमणु ॥४॥
णं तारा-मण्डलु उग्गमिउ । णं णहेँ मायामउ णिम्मविउ ॥५॥
आणन्द-घोसु हणुवहोँ तणउ । णिसुणेवि तूरु कोड्डावणउ ॥६॥
पमयद्धय-साहणेँ जाय दिहि । घणेँ गज्जिएँ णं परितुट्ठ सिहि ॥७॥
णरवइ सुग्गीउ करेवि धुरेँ । किय हट्ट-सोह किक्किन्ध-पुरेँ ॥८॥
कञ्चण-तोरणइँ णिबद्धाइँ । घरेँ घरेँ मिहुणइँ समलद्धाइँ ॥९॥
घरेँ घरेँ परिट्ठियइँ रयणाइँ । लोयइँ पडिपाणिय-वण्णाइँ ॥१०॥
लइ गहिय-पसाहण सयल णर । णिग्गय सवडम्मुह अग्घ-कर ॥११॥

घत्ता

अम्बर-थल-णालङ्करणेँहिँ हणुवन्तु एन्तु जयकारिउ ।
णाण-चरित्तेंहिँ दंसणेँहिँ णं सिद्धु मोक्खेँ पइसारिउ ॥१२॥

[१२]

पइसन्तु पुर पेक्खइ णिम्मल-तारइं ।
घरेँ घरेँ जि मणि-कञ्चण-तोरण-बारइं ॥१॥
चन्दण-छडाइँ सिरिखण्डइँ । पेक्खइ पुरेँ णाणाविह-भण्डइँ ॥२॥
कुङ्कुम-कत्थूरिय,-कप्पूरइँ । अगरु-गन्ध-सिसिरय-सिन्दूरइँ ॥३॥

मैं यहाँ आया हूँ, आपके बिना सुग्रीवकी सेना उसी तरह नहीं सोहती जैसे पुंश्चलीका उछलता हुआ हृदय, आधारके बिना नहीं सोहता' और जैसे धर्म-विहीन यौवन नहीं सोहता" ॥१-११॥

[११] तब पुलकितबाहु पवनपुत्र अपने विमान और सेनाके साथ चल पड़ा। उसके चलते ही सैन्यदल भी चला। मानो पावस में सजल मेघसमूह ही उमड़ पड़ा हो, या ऋषभ भगवानका समवसरण हो, या केवलज्ञानके उत्पन्न होनेके समय देवागम हो रहा हो, या तारामण्डल उदित हुआ हो या नभमें मायामयी रचना हो। हनुमानका आनन्दघोष और कुतूहलजनक तूर्य सुनकर कपिध्वजियोंकी सेनामें आनन्द फैल गया, मानो मेघके गरजनेपर मयूर सन्तुष्ट हो उठा हो। राजा सुग्रीवने आगे होकर, किष्किन्धनगरके बाजारकी शोभा करवाई। सोनेके तोरण बाँधे गये, घर-घरमें मिथुन तैयार होने लगे। घर-घरमें सुन्दरियाँ रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर (वस्त्र) पहनने लगीं। शीघ्र ही सभी लोग सज-धजकर, और हाथोंमें अर्घ्य लेकर सामने निकल आये। जाम्बवन्त, नल, नील और अंग तथा अंगदने आते हुए हनुमानका इस तरह जय-जयकार किया, मानो ज्ञान, दर्शन और चारित्रने ही सिद्धको मोक्षमें प्रविष्ट कराया हो ॥१-१२॥

[१२] नगरमें प्रवेश करते हुए, हनुमानने घर-घरमें निर्मल-तार वाले मणि और सुवर्णके तोरणोंसे सजे द्वार देखे। नगरमें उसने देखा कि चन्दनसे चर्चित और श्रीखंड (दही) से भरे, केशर, कस्तूरी, कर्पूर, अगरुगन्ध, सुगंधित द्रव्य और सिन्दूर से

कत्थइ कल्लूरियहँ कणिक्कउ । णं सिज्झन्ति तियउ पिय-मुक्कउ ॥४॥
अइ-वण्णुज्जलाउ णउ मिट्ठउ । णं वर-वेसउ बाहिर-मिट्ठउ ॥५॥
कत्थइ पुणु तम्बोलिय-सत्थउ । णं मुणिवर-माइउ मज्झत्थउ ॥६॥
अहवइ सुर-महिलउ पहुल्लयउ । जण-मुहसुहालेवि समत्थउ ॥७॥
कत्थइ पडियइँ पासा-जूअइँ । णट्ठहरइँ पेक्खणइँ व हूअइँ ॥८॥
मुणिवर इव जिण-णामु लयन्तइँ । बन्दिण इव सु-दाय मगन्तइँ ॥९॥
कत्थइ वर-मालाहर-सत्थउ । णं वायरण-कहउ सुसत्थउ ॥१०॥
कत्थइ लवणइँ णिम्मल-सारइँ । खल-दुज्जण-वयणइँ व सु-खारइँ ॥११॥
कत्थइ गुप्पइँ लेह-विमीसइँ । णाइँ कुमित्तत्तणइँ असरिसइँ ॥१२॥
कत्थइँ उब्भवन्ति पर-माणइँ । ण जम-दूआ आउ-पमाणइँ ॥१३॥
कत्थइ कामिणीउ मय-मत्तउ । णं रिद्धि-बहुलउ अधिय-कत्तउ ॥१४॥
एम असेसु णयरु वण्णन्तउ । मोत्तिय-रंगावलि पूरन्तउ ॥१५॥
लीलऍ पइट्ठु समीरण-णन्दणु । जहिँ हलहरु सुग्गीउ जणद्दणु ॥१६॥

घत्ता

रामहों हरिहें कइद्धयहों हणुवन्तु कयअंजलि-हत्थउ ।
कालहों जमहों सणिच्छरहों णं मिलिउ कयन्तु चउत्थउ ॥१७॥

[१२]

राहवेण वइसारिउ णिय-अद्धासणे ।
मुणिवरो व्व थिउ णिच्चलु जिणवर-सासणे ॥१॥

भरे घड़े रखे थे। कहीं मिठाई की दुकानों पर 'कन कन' शब्द हो रहा था, मानो प्रियोंसे मुक्त स्त्रियाँ ही कुन-मुना रही हों। नई मिठाइयाँ अत्यंत उजले रंग की थीं, जो उत्तम वेश्याओंके समान बाहरसे मीठी थीं। कहीं पर तंबोलीकी दूकान थी जो मुनिवरकी मतिकी तरह मध्यस्थ (तटस्थ और बीचों-बीच (स्थित) थी, अथवा अर्ध-बहुल देश्यमहिला थी जो लोगोंका मुख उजला (उज्ज्वल करने, रंगने) करने में समर्थ थी। कहीं जुए के पांसे पड़े हुए थे, जो नाट्यगृह और तमाशे के समान थे। कहीं पर मुनिवरों के समान जिनेन्द्र का नाम लिया जा रहा था और कहीं पर बंदीजनके समान अपना दाय (दांव, दाय) माँगा जा रहा था। कहीं कहीं पर उत्तम मालाओंकी दुकानें थीं मानो सूत्र और अर्थवाली व्याकरणकी पुस्तक हों। कहीं-कहीं सुंदर स्वच्छ तारक थे जो खलजनोंके शब्दोंकी तरह खारे थे। कहीं तेलसे मिले हुए घी थे मानो असमान खोटे मित्र हों। कहीं पर नरों के मान को उन्नमित किया जा रहा है, मानो आयुप्रमाण वाले यमदूत हों। कहीं पर मदमुक्त कामनियाँ थीं तो कहीं अधिक रेखाओं वाली वृद्धाएँ। इस तरह समस्त नगर को देखता हुआ, मोतियोंकी रंगोली को चूर-चूर करता हुआ पवन-पुत्र हनुमान लीलापूर्वक वहाँ प्रविष्ट हुआ जहाँ राम, लक्ष्मण और सुग्रीव थे। उनमें हाथ जोड़े हुए हनुमान ऐसा लग रहा था मानो काल, यम और शनिमें चौथा कृतान्त आ मिला हो ॥१-१७॥

[१२] रामने उसे अपने आधे आसनपर बैठाया। वह भी जिनवर शासनमें मुनिवरकी तरह निश्चल होकर उस पर बैठ

एक्कहिँ णिविट्ठ हणुवन्त-राम । मण-मोहण णाइँ वसन्त-काम ॥२॥
जम्बव-सुग्गीव सहन्ति ते वि । णं इन्द-पडिन्द वइट्ठ बे वि ॥३॥
सोमित्ति-विराहिय परम मित्त । णमि-विणमि णाइँ थिर-थोर-चित्त ॥४॥
अङ्गङ्गय सुहड सहन्ति बे वि । णं चन्द-सूर थिय अवयरेंवि ॥५॥
णल-णील-णरिन्द णिविट्ठ केम । एक्कासणेँ जम-वइसवण जेम ॥६॥
गय-गवय-गवक्ख वि रण-समत्थ । णं वर-पञ्चाणण गिरिवरत्थ ॥७॥
अवर वि एक्केक्क पचण्ड वीर । थिय पासेंहिँ पवर-सरीर धीर ॥८॥
एत्थन्तरेँ जय-सिरि-कुलहरेण । हणुवन्तु पसंसिउ हलहरेण ॥९॥

घत्ता

'अज्जु मणोरह अज्जु दिहि महु साहणु अज्जु पसण्णउ ।
चिन्ता-सायरेँ पडियहुँ णं माइह लद्धु तरण्डउ ॥१०॥

[१४]

पवण-पुत्तेँ मिलिए मिलियउ सव्वलोक्कु वि ।
रिउहुँ सेण्णेँ एयहोँ धुर धरइ ण एक्कु वि' ॥१॥
तं णिसुणेँवि जयकारु करन्तेँ । जाणइ-कन्तु वुत्तु हणुवन्तेँ ॥२॥
'देव देव बहु-रयण वसुन्धरि । अत्थि एत्थु केसरिहिँ मि केसरि ॥३॥
जहिँ जम्बव-णल-णीलङ्गङ्गय । णं मुक्कङ्कुस मत्त महागय ॥४॥
जहिँ सुग्गीवकुमार - विराहिय । अतुल-मल्ल जय-लच्छि-पसाहिय ॥५॥
गवय-गवक्ख समुण्णय-माणा । अण्ण वि सुहडेक्केक्क-पहाणा ॥६॥
तहिँ हउँ कवणु गहणु किर केहउ । सीहहुँ मज्झेँ कुरङ्गमु जेहउ ॥७॥
तो वि तुहारउ अवसरु सारमि । दे आएसु देव को मारमि ॥८॥
भग्गु भडट्टु कासु रणेँ भञ्जउ । जगेँ जस-पडहु तुहारउ वज्जउ' ॥९॥

गया। एक ओर हनुमान और राम आसीन थे, मानो मनमोहन वसन्त और काम ही हों। जाम्बवन्त और सुग्रीव भी ऐसे सोह रहे थे मानो इन्द्र और प्रतीन्द्र दोनों ही बैठे हों, परममित्र लक्ष्मण और विराधित भी, स्थिर और स्थूल चित्त नमि-विनमिकी तरह लगते थे। सुभट अंग और अंगद भी ऐसे सोहते थे मानो चन्द्र और सूर्य ही अवतरित हुए हों। राजा नल नील ऐसे बैठे थे मानो एकासन पर यम और वैश्रवण बैठे हों। रणमें समर्थ गय, गवय और गवाक्ष भी ऐसे लगते थे मानो गिरिवरमें रहनेवाले सिंह हों। और भी एक-से-एक विशालशरीर धीर प्रचण्ड वीर पास बैठे थे। इसी अन्तरमें जयश्रीके कुलगृह रामने हनुमानकी प्रशंसा करते हुए कहा, "आज मेरा मनोरथ सफल है, आज मेरा भाग्य है, आज मेरी सेना प्रचण्ड है, क्योंकि आज ही चिन्ता-सागरमें पड़े हुए मुझे हनुमानरूपी नाव मिली ॥१-१०॥

(१४) पवनपुत्रके मिलनेपर हमें त्रिलोक ही मिल गया। शत्रुकी सेनामें इसका भार कोई भी धारण नहीं कर सकता।" यह सुनकर, जयकारपूर्वक, हनुमानने रामसे कहा, "देव देव! इस समुन्धरामें बहुतसे रत्न हैं। यहाँपर सिंहोंमें भी सिंह हैं। जहाँ जाम्बवन्त, नल, अंग और अंगद निरंकुश मत्त और मदगजकी तरह हैं; जहाँ सुग्रीव, कुमार विराधित जैसे अतुल वीर जय-लक्ष्मीका प्रसाधन करनेवाले हैं। समुन्नतमान गवय और गवाक्ष हैं, और भी अनेक एक से एक सुभटप्रधान हैं उनमें मेरी गिनती वैसी ही है जैसी सिंहोंके बीचमें कुरंग की। लेकिन तब भी आपके अवसरका निस्तार करूँगा। आदेश दीजिये किसे मारूँ, युद्धमें किसके मान और अहंकारको नष्टकर दुनियामें तुम्हारे यश का

घत्ता

तं णिसुणेंवि परितुट्ठएण जम्बवेण विण्णु सन्देसउ ।
'पूरें मणोरह राहवहों वइदेहिहें जाहि गवेसउ' ॥१०॥

[१५]

तं णिसुणेंवि उवयारिउ सीरप्पहरणु ।
'देव देव जाएवउं केत्तिउ कारणु ॥१॥

अण्णु वि वड्ढारउ स-विसेसउ । राहव किं पि देहि आएसउ ॥२॥
जेण दसाणणु जम-उरि पावमि । सीय सुहासएँ करयलें लावमि' ॥३॥
णिसुणेंवि गलगज्जिउ हणुवन्तहों । हरिसु पवड्ढिउ जाणइ-कन्तहों ॥४॥
'भो भो साहु साहु पवणञ्जइ । अण्णहों कासु विणिम्मिउ छज्जइ ॥५॥
तो वि करेवउ मुणिवर -भासिउ । तहों खय-कालु कुमारहों पासिउ ॥६॥
ण वि पइँ ण वि मइँ ण वि सुग्गीवें । जुज्झेवउ समाणु दहगीवें ॥७॥
णवरि एक्कु सन्देसउ णेज्जहि । जइ जीवइ तो एम कहेज्जहि ॥८॥
झूरइ "सुन्दरि तुज्झ विओएं । झीणु करी व करिणि-विच्छोएं ॥९॥
झीणु सु-धम्मु व कलि-परिणामें । झीणु सु-पुरिसु व पिसुणालावें ॥१०॥
झीणु मयङ्कु व वर-पक्ख-क्खएँ । झीणु मुणिन्दु व सिद्धिहें कङ्खएँ ॥११॥
झीणु दु-राउलेण वर-देसु व । अबुह-मज्झें कइ-कव्व-विसेसु व ॥१२॥
झीणु सु-पन्थु व जण-परिचत्तउ । रामचन्दु तिह पइँ सुमरन्तउ" ॥१३॥

घत्ता

अप्पण वि लइ अङ्गुत्थलउ अहिणाणु समप्पहि मेरउ ।
आणेज्जहि सइँ भू सणउ चूडामणि सीयहें केरउ ॥१४॥

डंका बजाऊँ।" यह सुनकर सन्तुष्टमन जाम्बवन्तने सन्देश देते हुए कहा, "राघवका मनोरथ पूरा करो, और जाकर सीताकी खोज करो" ॥१-१०॥

यह सुनकर हनुमानने राम (हलधर) का जय-जयकार किया (और कहा) "हे देव, हे देव, जाऊँगा, यह कितना-सा काम है। राघव, कोई बड़ा-सा विशेष आदेश दीजिये, जिससे रावणको यमपुरी भेज दूँ और सीता तुम्हारी हथेलीपर ला दूँ।" हनुमानकी महागर्जना सुनकर राम (सीतापति) का हर्ष बढ़ गया। उन्होंने कहा, "भो भो हनुमान, साधु साधु, भला यह विस्मय और किसको सोहता है तो भी मुनिवरका कहा करना चाहिए। उसका (रावणका) विनाशकाल कुमार लक्ष्मणके पास है। इसलिए रावणके साथ लड़ना मेरे, तुम्हारे या सुग्रीवके लिए अनुचित है। हाँ, एक सन्देश और ले जाओ। यदि सीता जीवित हो तो उससे कह देना कि राम कहते हैं कि तुम्हारे वियोगमें वन्य हथिनीसे वियुक्त हाथीकी तरह क्षीण हो गये हैं। राम तुम्हारे वियोगमें उसी तरह क्षीण हो गये हैं जिस तरह चुगलखोरोंकी बातोंसे सज्जन पुरुष, कृष्ण पक्षमें चन्द्रमा, सिद्धिकी आकांक्षामें मुनि, खोटे राजासे उत्तम देश, मूर्खमण्डलीमें कविका काव्य-विशेष, मनुष्योंसे वर्जित सुपंथ, क्षीण हो जाता है। और भी उन्होंने अपनी पहचानके लिए अँगूठी दी है, और कहा है कि सीतादेवीका चूड़ा लेते आना ॥ १-१४ ॥

[४६. छायालीसमो संधि]

जं अब्भुत्थलउ उवलद्धु राम - सन्देसउ ।
गउ कण्टइय-भुउ सीयहेँ अणुवन्तु गवेसउ ॥

[१]

मणि - मऊह - सञ्छाइयएँ । णिम्मं देव-णिम्मिएँ ।
चन्दकन्ति-सोमिए । रयणी-चन्दे व णिम्मिए ॥१॥
चन्दसाल - साला - विसालए । टणटणन्त - घण्टा - घमालएँ ॥२॥
रणरणन्त - किङ्किणि - सुघोसए । धवधवन्त - घग्घर-णिघोसए ॥३॥
धवल - धयवडाडोय - डम्बरे । पवण - पेल्लणुव्वेल्लियम्बरे ॥४॥
छत्त - दण्ड - उद्दण्ड - पण्डुरे । चारु - चमर - पब्भार-भासुरे ॥५॥
मणि-गवक्ख - मणि-मत्तवारणे । मणि - कवाड-मणि - बार-तोरणे ॥६॥
मणि - पवाल - मुत्तालि-झुम्बिरे । भमिर - भमर - पब्भार-चुम्बिरे ॥७॥
पडह - मद्दलुल्लोल - तालए । जिणवरो व्व सुरगिरि-जिणालए ॥८॥
तहिँ विमाणेँ थिउ पवण-नन्दणो । चलिउ णाइँ णहेँ रवि स-सन्दणो ॥९॥

घत्ता

गयणङ्गणेँ थिएँण विज्जाहर - पवर-णरिन्दहोँ ।
णाइँ सणिच्छरेँण अवलोइउ णयरु महिन्दहोँ ॥१०॥

[२]

चउ-दुवारु चउ-गोउरु चउ - पायारु पण्डुरं ।
गयण - लग्ग - पवणाहय - धय-मालाउलं पुरं ॥१॥
गिरि - महिन्द - सिहरे रमाउलं । रिद्धि - विद्धि- धण-धण्ण-संकुलं ॥२॥
तं णिएवि हणुएण चिन्तियं । 'सुरपुरं किमिन्देण घत्तियं' ॥३॥
पुच्छिया रविन्दाभ - लोयणा । कहहुँ लग्ग विज्जावलोयणी ॥४॥

छयालीसवीं सन्धि

रामका सन्देश और अंगूठी पाकर, पुलकितबाहु हनुमान सीताकी खोज करने चल पड़ा।

[१] विमानमें बैठा हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें रथसहित सूर्य ही जा रहा हो, उसका विमान मणि किरणोंकी कांतिसे चमक रहा था, वह निशा चन्द्रके समान चन्द्रकान्त मणियोंसे जड़ा हुआ था। ऊपर, सुन्दर चन्द्रशालासे विशाल था। वह घण्टोंकी टन-टन ध्वनिसे झंकृत हो रहा था। रुनझुन करती हुई किंकिणियोंसे मुखर था। घव-घव और घर-घर शब्दसे गुंजित था, हवासे उड़ती हुई, ऊपर सफेद ध्वजाओंके विस्तृत आटोपसे नाच-सा रहा था। वह लतागृहसे उन्नत, सफेद सुन्दर चमरोंके भारसे भास्वर था। उसमें मणियोंके झरोखे, छज्जे, किवाड़ और तोरणद्वार थे, तथा मणियां और प्रवालों और मोतियोंके झूमर लटक रहे थे। मड़राते हुए भ्रमरोंका समूह उसको चूम रहा था, मन्दराचल पहाड़पर स्थित जिनालयकी जिनप्रतिमाकी तरह, चह, पटह, मृदंग और उत्तालकसे सहित था। आकाशमें जाते हुए उसने विद्याधरोंके राजा महेन्द्रका नगर शनीचरकी भाँति देखा। उसमें चार द्वार, चार गोपुर और चार परकोटे थे और वह उड़ती हुई पताकाओंसे व्याप्त था॥१-१०॥

[२] महेन्द्र पर्वतपर स्थित वह नगर लक्ष्मीसे भरपूर, और धनधान्य तथा ऋद्धि-वृद्धिसे व्याप्त था। उसे देखकर हनुमानको ऐसा लगा मानो इन्द्रने स्वर्गको ही नीचे गिरा दिया हो। पूछनेपर, कमलनयनी अवलोकिनी विद्याने कहा, "देव, इस नगरमें वही महासाहसी दुष्ट और क्षुद्रहृदय राजा महेन्द्र रहता है, जिसने जनमनको आनन्द देनेवाले तुम्हारे प्रसवकालमें

'देव गब्भ-सम्भवें तुहारए । सव्व-जण-मणाणन्द-गारए ॥५॥
केण घल्लियं अण-पसूयणे । वग्घ-सिङ्घ-गय-संकुले वणे ॥६॥
सो पडिन्दु णिब्भन्त-साहसो । वसइ एत्थु खल-खुद्द-माणसो ॥७॥
एहु णयरि माहिन्द-णामयं । कामपुरि व णिम्मविय कामिणं' ॥८॥
तं सुणेवि बहु-भरिय-मच्छरो । झम्प-रासि णं गउ सणिच्छरो ॥९॥

घत्ता

अमरिस-कुद्धएँण मणे चिन्तिउ 'गयणु सिवक्कमि ।
भायहों आहयणें लइ ताम मडप्फरु भञ्जमि' ॥१०॥

[३]

तक्खणें जें पण्णत्ति-बलेण विणिम्मियं बलं ।
रह-विमाण-मायङ्ग-तुरङ्गम-जोह-संकुलं ॥१॥
मेह-जालमिव विज्जुलुज्जलं । पडह-मन्दलुद्दाम-गोन्दलं ॥२॥
धुरुहुरन्त-सय-सङ्ख-संघडं । धवल-छत्त-धुव्वन्त-धयवडं ॥३॥
मत्त-गिल्ल-गिल्लोल-गय-घडं । कण्ण-चमर-चवलन्त-मुहवडं ॥४॥
हिलिहिलन्त-तुरयाणणुब्भडं । दुट्ठ-कुट्ठ-घड-सुहड-सङ्कडं ॥५॥
कलयलारउग्घुट्ठ-भड-थडं । कसर-रासि-सव्वलि-विसावडं ॥६॥
तं णिएवि पर-बल-पलोट्टणे । खोहु जाउ माहिन्द-पट्टणे ॥७॥
भड विरुद्ध सण्णद्ध दुद्धरा । परसु-चक्क-मोग्गर-धणुद्धरा ॥८॥
वज्ज-परिकराकार भासुरा । कुइय-दिट्ठि-दट्ठोट्ठ-णिट्ठुरा ॥९॥

घत्ता

स-बलु महिन्द-सुउ सण्णहॅंवि महा-भय-भीसणु ।
हणुवहों अब्भिडिउ विज्झइरिहे जेम हुआसणु ॥१०॥

[४]

मरु-महिन्द-णन्दण-बलाण जायं महाहवं ।
चारु-जय-सिरी-रामालिङ्गण-पसर-लाहवं ॥१॥

तुम्हारी माँ को, जनशून्य, वनगजों और सिंहोंसे संकुल जंगलमें छुड़वा दिया। यह माहेन्द्र नामकी नगरी है जिसे कामदेवने कामनगरी की तरह निर्मित किया है।" यह सुनकर, हनुमान बहुत भारी मत्सरसे भर उठा मानो शनीचर ही मीन राशिमें पहुँच गया हो। अमर्षसे क्रुद्ध होकर उसने विचार किया कि गमन स्थगितकर पहले मैं युद्धमें इस राजाका अहंकार चूर-चूरकर दूँ॥ १-१० ॥

[३] उसने तत्काल विद्याके बलसे रथ, विमान, हाथी, घोड़ों और योधाओंसे संकुल सेना गढ़ ली, जो बिजलीसे चमकते हुए मेघजालकी तरह, पटह और मृदंगोंसे अत्यन्त मुखर थी। बजते हुए सैकड़ों शंखोंसे संघटित थी। धवल छत्र और उड़ते हुए ध्वजपटोंसे सहित, मुख पर कानके चमरोंको डुलाते हुए, और मद झरते हाथियोंकी घटासे व्याप्त, हिनहिनाते हुए अश्वमुखोंसे उत्कट, सन्तुष्ट और स्फुट शरीरवाले सुभटोंसे संकुल, और ससर, शक्ति तथा सब्बलसे व्याप्त उस सेनाको देखकर, शत्रुसेनाका संहार करनेवाले महेन्द्रनगरमें क्षोभ फैल गया। दुर्धर कठोर योधा तैयार होने लगे। फरसा, खड्ग, मुद्गर और धनुष लेकर, आकार में भयंकर सैनिक घेरे बनाने लगे। उनकी दृष्टि कठोर थी और वे निष्ठुर दाँतोंसे अधर काट रहे थे। महाभयसे भीषण, राजा महेन्द्रका पुत्र भी सेनाके साथ तैयार होकर, हनुमानसे वैसे ही भिड़ गया मानो विन्ध्याचलमें आग लग गई हो ॥ १-१० ॥

[४] पवनञ्जय और महेंद्रराजके पुत्रोंकी सेनाओंमें घमासान लड़ाई होने लगी। वे दोनों ही सुन्दर विजयलक्ष्मीका आलिंगन करनेके लिए शीघ्रता कर रहे थे। आक्रमणकी हनहनाकारसे युद्धमें

हणुव - कमलदलाकार - भीसावणं । मेह-दुग्घोट्ट - संघट्ट - रोक्खावणं ॥२॥
खग्ग - खणखणाकार - गम्भीरयं । जाय-किलिकिलिकिलि-गुप्पन्त-वर-वीरयं ॥
भिउडि-भूभङ्गुराकार - रत्तच्छयं । पहर-पब्भार-वावार - दुप्पेच्छयं ॥३॥
हक्क - मुक्कोक्क - हुङ्कार लक्खयं । दन्ति - दन्तग्ग-खग्गग्ग-पाडक्खयं ॥५॥
भिण्ण-वच्छत्थलुद्देस - विहलङ्घलं । णीसरन्तन्त-मालावली - सुम्भलं ॥६॥
तेत्थु वट्टन्तए दारुणे भण्डणे । हणुव-माहिन्द अब्भिट्ट समरङ्गणे ॥७॥
बे वि सुग्गीव-सब्भाव-सब्भारणा । बे वि मायङ्ग - कुम्भत्थलुद्दारणा ॥८॥
बे वि णह-गामिणो बे वि विज्जाहरा । बे वि जस-कङ्खिणो बे वि कुरियाहरा ॥

घत्ता

पवण-महिन्दहुँ णिय-णिय-वाहणेंहिँ णिविट्ठहुँ ।
जुज्झु समब्भिडिउ णावइ हयगीव-तिविट्ठहुँ ॥१०॥

[५]

तहिँ महिन्द-णन्दणेण विरुद्धें परम-अब्भिट्टें ।
थरहरन्ति सर-धोरणि लाइय हणुव-थयवट्टे ॥१॥
माइणा वि तिउ - बाण-जालयं । णिसि-खएँ व्व रविणा तमालयं ॥२॥
वड्डमंतुल - माया - दवग्गिणा । मोह-जालमिव परम-जोग्गिणा ॥३॥
जलइ णह-यलं जलण-जीवियं । पर-बलं असेसं पलीवियं ॥४॥
कहीं वि मुउ कासु वि धयग्गयं । कहीं वि पज्जलियं उत्तमङ्गयं ॥५॥

भीषणता बढ़ रही थी। बलिष्ठ गजघटा संघर्षमें लोट-पोट हो रही थी। खड्गोंकी खनखनाहट भयंकरता उत्पन्न कर रही थी। किलकिली वरवीरोंके उरमें घुसेड़ी जा रही थी। उनकी भौंहें और उनकी भंगिमा विकट आकार की थीं। आँखें लाल हो रही थीं। प्रहारोंके प्रकृष्ट भार और व्यापारसे वह संग्राम दुर्दर्शनीय हो उठा था। योधागण हलकार हुँकार और ललकारमें व्यस्त थे। गजोंके दंताग्र पदाति सैनिकोंको लग रहे थे। वक्षःस्थल विदीर्ण होनेसे उनके अंग-अंग विकल थे। निकली हुई आँतोंकी मालाओंसे वह युद्ध व्याप्त था। ऐसे उस अत्यन्त भयंकर युद्धमें हनुमान और माहेन्द्र दोनों आपसमें जा भिड़े। दोनों प्रचण्ड आघातोंसे संहार कर रहे थे। दोनों ही गजोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर रहे थे। दोनों आकाशगामी विद्याधर थे। दोनों यशके इच्छुक थे। दोनोंके अधर काँप रहे थे। इस प्रकार अपने-अपने आतोंकी मालासे वह युद्ध व्याप्त हो रहा था। ऐसे उस अत्यन्त भयंकर युद्धमें हनुमान और माहेन्द्र दोनों भिड़ गये। दोनों ही प्रचण्ड आघातोंसे संहार करनेवाले थे, दोनों ही अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ होकर त्रिविष्टप और हयग्रीवकी तरह लड़ने लगे ॥१-१०॥

[५] तब पहली ही भिड़न्तमें महेन्द्र-पुत्रने एक दम विरुद्ध होकर हनुमानके ध्वज-पटपर तीरोंकी धरोंती बौछार छोड़ी। परन्तु हनुमानने उसके तीर जालको उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार निशान्त होनेपर सूर्य अन्धकारके पटलको नष्ट कर देता है, जैसे परम योगी मोहजालको खाक कर देता है वैसे ही मायावी आगसे उसने उसके तीरोंको नष्ट कर दिया। आगसे प्रदीप्त होकर आकाशतल जल उठा। समस्त शत्रुसेना नष्ट होने लगी। कहीं किसीका छत्र था तो कहीं किसीकी पताका का अग्रभाग।

कहीँ वि कवउ कासु कप्पियं । कहो वि कवयं संकडिल्लयं ॥६॥
एम पवर - हुअवह - फुल्लियं । रिउ - बलं गयं घोण - वलियं ॥७॥
णवर एक्कु माहिन्दि थक्कओ । केसरि व्व केसरिहिँ ढुक्कओ ॥८॥
वावरन्तु सन्धइ ण जावेँहिँ । सीसिएण हणुएण तावेँहिँ ॥९॥

घत्ता

कप्पण-समुज्जलेँहिँ सिहिँ सरेँहिँ सरासणु ताडिउ ।
दुज्जण-हियउ जिह उब्भिज्जन्तेँ वि धणुवरु पाडिउ ॥१०॥

[६]

अवरु ताउ किर गेण्हइ जाम महिन्द-णंदणो ।
मरु-सुएण विद्धु सिउ ताव सरेहिँ सन्दणो ॥१॥
खण्ड-खण्ड-किए रहवरावलिए । वर-तुरङ्गम-जुए पडिए भय-गलिए ॥२॥
मोडिए धुय-दण्डे धए छिण्णए । लहु विमाणे समारूढु विच्छिण्णए ॥३॥
तं पि हणुवेण बाणेहिँ णिण्णासियं । णरय-दुक्खं व सिद्धेहिँ विद्धंसियं ॥४॥
णिग्गओ विप्फुरन्तो णिरत्थो णरो । णाइँ णिग्गन्थ-रूओ थिओ मुणिवरो ॥५॥
पवण-पुत्तेण घेत्तूण रिउ बद्धओ । वर-भुयङ्गु व्व गरुडेण उद्धुद्धओ ॥६॥
पुत्तेँ बद्धे सुए सवर-वावारिओ । अणिल-पत्तो महिन्देण हक्कारिओ ॥७॥
अञ्जणा-पियर-पुत्ताण दुद्दरिसणो । संपहारो समालग्गु भय-भीसणो ॥८॥
खग्ग-तिक्खग्ग-वर-मोग्गरुग्गामिणो । सेल्ल-णाराय - भल्लाइ-सङ्घायणो ॥९॥

कहींपर किसीका सिर जलने लगा, कहीं किसीका कवच और कटिसूत्र। कहीं किसीका, शृंखलासहित कवच खिसक गया। इस प्रकार आगकी प्रचण्ड ज्वालामें शत्रुसेनाकी नाक घूमने लगी? केवल महेन्द्र-पुत्र ही शेष रहा। वह पवनपुत्रके पास इस प्रकार पहुँचा मानो सिंहके पास सिंह पहुँचा हो। वह जब तक अपने वरुण तीरका संधान करता तब तक पवन-पुत्र हनुमानने रुष्ट होकर अपने स्वर्णिम तीरोंसे उसे आहत कर दिया। तथा दुर्जनके हृदयकी तरह उसके श्रेष्ठ धनुषको छिन्न-भिन्न कर गिरा दिया ॥१–१०॥

[६] और जब तक महेन्द्रपुत्र दूसरा धनुष ले, तबतक हनुमानने तीरोंसे उसका रथ छेद डाला। उसके श्रेष्ठ रथकी पीठ टूक-टूक होने पर, जुते हुए अश्व गिर पड़े। छत्र-दंड झुक गया। पताका छिन्न-भिन्न हो गई। तब महेन्द्रपुत्र दूसरे विमानपर जाकर बैठ गया। किन्तु पवनपुत्रने उसे तीरोंसे उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार सिद्ध पुरुष नरकके घोर दुखोंको नष्ट कर देते हैं ॥१–४॥

तब महेन्द्रपुत्र अस्त्रहीन होकर ही तमतमाता हुआ निकला, अब वह निर्ग्रंथ मुनिकी भाँति प्रतीत हो रहा था। किंतु हनुमानने उसे आहतकर बाँध लिया। उसे उसने वैसे ही उठा लिया जैसे गरुड़ पक्षी साँपको उठा लेता है। इस प्रकार अपने पुत्रके आहत और बद्ध हो जानेपर राजा महेन्द्रने युद्धरत पवनपुत्र हनुमानको ललकारा, और प्रहरणशील दुर्दर्शनीय और भयभीषण वह, अंजनाके प्रियपुत्र हनुमानसे आकर भिड़ गया। उसके हाथमें खड्ग, और नुकीले तेज मुद्गर थे। सेल्ल सावल्ल और भालेसे

घत्ता

पवण-भिडन्तएँण सर-पञ्जरु मुक्कु महिन्दें।
खिण्णु कइद्धएँण जिह भव-संसारु जिणिन्दें ॥१०॥

[७]

खिण्णु जं जें जर-पञ्जरु रणउहें पवण-जाएँण।
धगधगन्तु अग्गेउ विमुक्कु महिन्द-राएँ ण ॥१॥
धुधुवन्तु जालऽसणि-घोसणो। जलजलन्तु जालोलि-भीसणो ॥२॥
दिट्ठु जाणु जं पवण-पुत्तेंणं। वारुणत्थु मेल्लिउ तुरन्तेंणं ॥३॥
जिह घणेण गलगज्जमाणेंणं। पसमिओ वि गिम्भो व्व णाएँणं ॥४॥
वायवो महिन्देण मेल्लिओ। पवण-पुत्तु तेण वि ण मेल्लिओ ॥५॥
भाव-लद्धि धत्तें वि तुरन्तेणं। थड-महद्दुमो विप्फुरन्तेंणं ॥६॥
मेल्लिओ महा-बहल-पत्तलो। कढिण-मूलु थिर-थोर-गत्तलो ॥७॥
खण्डु खण्डु किउ पवण-पुत्तेंणं। कुकइ-कव्व-बन्धो व्व धुत्तेंणं ॥८॥
अवरु मुक्कु महिहरु विरुद्धेंणं। सो वि खिण्णु णरउ व्व सिद्धेंणं ॥९॥

घत्ता

जं जं लेइ रिउ तं तं हणुवन्तु विणासइ।
जिह णिल्लक्खणहों करें एक्कु वि अत्थु ण दीसइ ॥१०॥

[८]

अञ्जणाएँ जणणेण विलक्खीहूय-चित्तेंणं।
गय विमुक्क भामेप्पिणु कोवाणल-पलित्तेंणं ॥१॥
तेण लउडि-दण्डाहियाएँणं। तरुवरो व्व पाडिउ दुवाएँणं ॥२॥
गिरि व वज्जेंणं दुण्णिवारेंणं। अणिल-पुत्तु तिह गय-पहारेंणं ॥३॥

सचमुच वह आशंका उत्पन्न कर रहा था। पहली ही भिड़तमें राजा महेन्द्रने तीरोंकी बौछार की। किन्तु कपिध्वज हनुमानने उसे वैसे ही छेद दिया जिस प्रकार जिनेन्द्र भव-संसारको छेद देते हैं ॥१–१०॥

[७] युद्ध-मुखमें जब हनुमानने इस प्रकार तीरोंको नष्ट कर दिया तब राजा महेन्द्रने धकधक करता हुआ आग्नेय बाण छोड़ा तब हनुमानने भी लपटें उड़ाते बज्रघोष करते हुए ज्वालमालासे भीषण उस तीरको देखकर, तुरन्त अपना वारुण बाण छोड़ा। उसने आग्नेय बाणको वैसे ही ठंडा कर दिया जैसे गरजता हुआ मेघ ग्रीष्म कालको ठंडा कर देता है। राजा महेन्द्रने वायु बाण जोड़ा, पवनपुत्र उससे भी नहीं डरा। तब उसने अपनी चापयष्टि डालकर और तमतमाकर, मजबूत जड़वाला स्थिर तथा स्थूल आकारका प्रचुर पत्तोंवाला विशाल वटवृक्ष फेंका। किंतु हनुमानने उसके भी वैसे ही सौ टुकड़े कर दिये जैसे धूर्त कुकविके काव्यबंधके टुकड़े-टुकड़े कर देता है। तब राजा महेन्द्रने पहाड़ उछाला परन्तु हनुमानने उसे भी वैसे ही काट दिया जैसे सिद्ध नरकको काट देते हैं। इस प्रकार राजा जो भी लेता हनुमान उसे ही नष्ट कर देता उसी प्रकार जिस प्रकार लक्षणहीन व्यक्तिके हाथमें प्रत्येक अर्थ नष्ट हो जाता है ॥१–१०॥

[८] यह देखकर अंजनाका पिता राजा महेन्द्र अपने मनमें व्याकुल हो उठा। उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने घुमाकर गदा मारी। उस लकुटिदंडके प्रहारसे हनुमान उसी प्रकार गिर पड़ा, जिस प्रकार दुर्वातसे वृक्ष गिर पड़ता है। उस गदाके प्रहारसे हनुमान उसी तरह गिर गया जिस प्रकार दुर्निवार वज्रके आघातसे पहाड़। हनुमानके इस प्रकार गिरनेपर आकाश-

णिवडिए सिरिसेलें विम्मलें । जाय वोल्ल सुरवरहँ णहयलें ॥४॥
णिप्फलं गयं हणुय-गज्जियं । घण-समूहमिव सलिल-वज्जियं ॥५॥
राम-कुम्भकण्णं ण साहियं । जाणईहँ वयणं ण साहियं ॥६॥
रावणस्स ण वणं विणासियं । विहलु आसि केवलिहिँ भासियं ॥७॥
एव वोल्ल सुर-सत्थें जावेंहिँ । हणुउ हूउ सज्जीउ तावेंहिँ ॥८॥
उट्ठिओ सरासण-विहत्थओ । सरवरेहिँ किउ रिउ णिरत्थओ ॥९॥

घत्ता

मग्ग कइद्धऍण सर-पञ्जरें दुहँवि रणहँ ।
धरिउ महिन्दु रणें णं गङ्गा-वाहु समुद्दें ॥१०॥

[६]

कुविएण समरङ्गणें अञ्जणा - पवणञ्जय - हेउणा ।
धरिय बे वि माहिन्दि-महिन्द कइद्धय-केउणा ॥१॥
माणु मलेवि करेंवि कडमद्दणु । चलणेंहिँ पडिउ समीरण-णन्दणु ॥२॥
'अहोँ माहिन्द माम मरुसेज्जहि । जं विमुहिउ तं सयलु खमेज्जहि ॥३॥
अहोँ अहोँ ताय ताय रिउ-मद्दण । णिय-सुय तं पीसरिय किमक्कण ॥४॥
हउँ सहँ तणउ सुकन्ति दोहित्तउ । णिम्मल-वंसु समुज्जल-गोत्तउ ॥५॥
भग्गु मरट्टु जेण रणें वरुणहोँ । हउँ हणुवन्तु पुत्तु तहोँ पवणहोँ ॥६॥
पेसिउ अब्भत्थेँवि सुग्गीवें । रामहोँ हिउ कलत्तु दहगीवें ॥७॥
दूअ-कज्जें संचल्लिउ जावेंहिँ । पइणु दिट्ठु तुहारउ तावेंहिँ ॥८॥
माया-वइरु असेसु विसुज्झिउ । तें तुम्हहिँ समाणु मइँ जुज्झिउ' ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि वयणु विज्जाहर-णयणाणन्दें ।
णेह-महाभरेंण मालइ अवगूढु महिन्दें ॥१०॥

तलमें देवतालोगोंमें बातें होने लगीं—"अरे निर्जल मेघकुलके समान हनुमान का गरजना व्यर्थ गया। रामका न तो वह दौत्य ही साध सका, और न उन्हें सीता देवीका मुख दिखा सका। रावणके वनका नाश भी नहीं किया अतः केवलज्ञानियोंका कहा हुआ विफल हो गया"। जब सुरसमूहमें इस प्रकार बातें हो रही थीं कि इतनेमें हनुमान फिरसे तैयार हो गया। हाथमें धनुष लेकर वह उठा और तीरोंसे उसने राजा प्रह्लादको निरस्त्र कर दिया। रौद्र कपिध्वजी हनुमानने सहसा युद्धमें क्षुब्ध होकर अपने तीरोंकी बौछारसे राजा प्रह्लादको उसी प्रकार अवरुद्ध कर दिया जिस प्रकार गंगाके प्रवाहको समुद्र अवरुद्ध कर देता है ॥१-१०॥

• [६] इस प्रकार माताकी शत्रुताके कारण क्रुद्ध होकर हनुमानने युद्धप्रांगणमें ही राजा प्रह्लाद और उसके पुत्र महेन्द्रको पकड़ लिया। इस प्रकार मानमर्दनकर और संहार मचाकर हनुमान् राजाके चरणोंमें गिर पड़ा। वह बोला, "राजन्, मनमें बुरा न मानिए। जो कुछ भी मैंने बुरा किया है उसे क्षमा कर दीजिए। अरे शत्रुसंहारक तात, क्या तुम अपनी पुत्री अंजनाको भूल गये। मैं उसीका पुत्र, तुम्हारा नाती हूँ। मेरा वंश निर्मल और गोत्र समुज्ज्वल है। फिर मैं उसी पवनञ्जयका पुत्र हूँ जिसने युद्धमें वरुणका अहंकार नष्ट किया था। सुग्रीवने रावणसे अभ्यर्थना करनेके लिए मुझे भेजा है। उसने रामकी पत्नीका हरण कर लिया है। मैं दूतकर्मके लिए जा रहा था कि मार्गमें आपका नगर दीख पड़ा। बस, मुझे माताजीके वैरका स्मरण हो आया। इसीसे आपके साथ युद्ध कर बैठा हूँ। यह सुनते ही विद्याधरोंके नयनप्रिय राजा महेन्द्रने स्नेह-विह्वल होकर हनुमानका जीभर आलिङ्गन किया ॥१-१०॥

[१०]

'साहु साहु भो सुन्दर सुउ सच्चउ जँ पवणहो ।
पइँ मुएवि सुहलक्खणु अण्णहोँ होइ कवणहो ॥१॥
जो सत्तु-सङ्गाम-लक्खेहिँ अस-णिवहु ।
जो उभय-कुल-दीवओ उभय-कुल-तिलउ ॥२॥
जो उभय-संसुज्झओ ससि व अकलङ्कु ।
जो सीहणर-विक्कमो समरेँ णीसङ्कु ॥३॥
जो दस-दिसा-वलय-परिघत्त-जय-णामु
जो मत्त-मायङ्ग-कुम्भत्थलायामु ॥४॥
जो पवर-जयलच्छि-आलिङ्गणावासु
जो सयल-पडिवक्ख-दुप्पेक्ख-णिण्णासु ॥५॥
जो कित्ति-रयणायरो जस-जलावत्तु
जो वीर-णारायणो अवयरिउ-[illegible] ॥६॥
जो सयण-कप्पद्दुमो सव्व-अयलेन्दु
जो पवर-पहरण-फडा-डोय-भुअइन्दु ॥७॥
जो माण-विक्कमहरि अहिमाण-सय-सिहरु
धणुवेय-पञ्चाणणो पाण-णइ-णियरु ॥८॥
जो अरि-कुरङ्गोह-णिद्दलण-दुग्घोट्टु
पडिवक्ख-जलवाहिणी-सिमिर-जल-घोट्टु ॥९॥

घत्ता

जो केण वि ण जिउ आसङ्क-कलह-विवज्जिउ ।
सो हउँ आहयणेँ पइँ एक्कें णवरि पराजिउ' ॥१०॥

[११]

एउ वयणु णिसुणेप्पिणु दुम्मन्दणु-विमद्दणो ।
'कवणु एत्थु किर परिहवु' भणइ घणारिणन्दणो ॥१॥
'तुहुँ देव दिवायरु तेय-पिण्डु । हउँ किं पि तुहारउ किरण-सण्डु ॥२॥
तुहुँ वर-मयलञ्छणु भुवण-तिलउ । हउँ किं पि तुहारउ जोण्ह-णिलउ ॥३॥
तुहुँ पवर-समुद्दु समुद्द-सारु । हउँ किं पि तुहारउ जल-तुसारु ॥४॥
तुहुँ मेरु-महीहरु महिहरेसु । हउँ किं पि तुहारउ सिल-णिवेसु ॥५॥

[१०] वह बोला, "साधु-साधु, तुम पवनञ्जयके सच्चे पुत्र हो, तुम्हें छोड़कर, और किसमें इतनी वीरता हो सकती है, जो सैकड़ों शत्रु-युद्धोंमें यशका निकेतन है, जो दोनों कुलोंका दीपक और तिलक है, जो दोनों कुलोंमें उज्ज्वल और चन्द्रकी तरह अकलंक है, जो सिंहकी तरह पराक्रमी और युद्धमें निडर है, दसों दिशाओंके मण्डलमें जिसका नाम विख्यात है, जो मदमाते हाथियोंके कुम्भस्थलोंका झुकानेवाला और जो प्रवर विजयलक्ष्मीके आलिङ्गनका आवास ही है। जो सकल शत्रुसमूहका दुर्दर्शनीय संहारक है, जो कीर्तिका रत्नाकर, यशका जलावर्त, विजयलक्ष्मीका प्रिय वीरनारायण, सज्जनोंका कल्पवृक्ष, सत्यका मेरु, प्रवर प्रहार फनोंके धरणेन्द्र, मानमें विंध्याचल, जो अभिमानमें शिखर, धनुष धारियोंमें बाण-रूपी नखोंके समूहसे सहित सिंह, शत्रुरूपी मृगोंके लिए महागज, और जो शत्रुसेनाके जलका शोषक है, आशंका और कलंकसे रहित जो तब तक किसीसे भी नहीं जीता जा सका, वह मैं भी आज तुमसे पराजित हो गया ॥१–१०॥

[११] यह वचन सुनकर, दुर्दम दानव-संहारक हनुमानने कहा, "तो इसमें पराभवकी कौन-सी बात, आप यदि तेजपिण्ड दिवाकर हैं और मैं आपका ही थोड़ा-सा किरण-समूह हूँ, आप भुवनतिलक चन्द्र हैं, मैं भी आपका ही छोटा-सा ज्योत्स्ना-निकेतन हूँ, आप श्रेष्ठ महासमुद्र हैं और मैं भी आपका ही एक जलकण हूँ, आप समस्त पर्वतोंमें मन्दराचल हैं और मैं भी एक

तुहुँ केसरि घोर-रउद्द - णाउ । हउँ किं पि तुहारउ णह - णिहाउ ॥६॥
तुहुँ मत्त - महग्गउ दुण्णिवारु । हउँ किं पि तुहारउ मय-वियारु ॥७॥
तुहुँ माणस - सरवरु सारविन्दु । हउँ किं पि तुहारउ सलिल-बिन्दु ॥८॥
तुहुँ वर तित्थयरु महाणुभाउ । हउँ किं पि तुहारउ वय-सहाउ ॥९॥

घत्ता

को पडिमल्लु तउ तुहुँ केणऽवरेणोहल्लउ ।
णिय पहु परिहरइ किं मणि चामियर-णिबद्धउ' ॥१०॥

[१२]

कह वि कह वि मणु धीरिउ विज्जाहर-णरिन्दहो ।
'ताय ताय मिलि साहणें गम्पिणु रामचन्दहो ॥१॥
वड्डारउ किउ उवयारु तेण । मारिउ मायासुग्गीउ जेण ॥२॥
को सक्कइ तहों पेसणु करेवि । मिलु रामहों मच्छरु परिहरेवि ॥३॥
उवयारु करेवउ मइँ मि तासु । आएवउ लङ्काहिवहों पासु' ॥४॥
हणुवहों एयइँ वयणइँ सुणेवि । माहिन्दि- महिन्द पयट्ट वे वि ॥५॥
सुग्गीव-णयरु णिविसेण पत्त । बलु पुच्छइ 'एहु को जम्बवन्त ॥६॥
किं वलेंवि पढीवउ पवण-जाउ । असमत्त- कज्जु हणुवन्तु आउ' ॥७॥
मन्तिएण पवुत्तु णरवर-मइन्दु । अञ्जणहें बप्पु एहु सो महिन्दु' ॥८॥
बल-जम्बव वे वि चवन्ति जाम । समरङ्गुट्ठु आउ महिन्दु ताम ॥९॥

घत्ता

हलहर - सेवएँहिं सव्वहिं एक्केक्क - पक्खएँहिं ।
अग्गुक्खाइयउ थिउ-कढिण स हं भु व-दप्पहिं ॥१०॥

●

चट्टानका टुकड़ा हूँ, आप घोर गर्जन करनेवाले सिंह हैं और मैं छोटा-सा नखनिघात हूँ। आप महागज हैं और मैं भी आपका ही थोड़ा-सा मद्य विकार हूँ। आप कमलोंसे शोभित मान सरोवर हैं और मैं भी आपका ही छोटा जलकण हूँ। आप महानुभाव श्रेष्ठ तीर्थंकर हैं और मैं भी आपका कुछ-कुछ व्रत स्वभाव हूँ। आपका प्रतिमल्ल कौन हो सकता है, आप किससे पराजित हो सकते हैं। सोनेसे जड़ा हुआ मणि क्या अपनी आभा छोड़ देता है!" ॥१–१०॥

[१२] तब हनुमानने किसी तरह राजा महेन्द्रको धीरज बँधाकर कहा, "तात तात, चलकर रामचन्द्रकी सेनामें मिल जाइए। उन्होंने हमारा बहुत भारी उपकार किया है। क्योंकि उन्होंने दुष्ट मायासुग्रीवको मार डाला है। भला उनकी सेवा कौन कर सकता था। अतः आप ईर्ष्या छोड़कर रामसे मिल जायँ। मैं भी उनका उपकार करूँगा। मैं लंकानरेशके पास जा रहा हूँ।" हनुमानके इन वचनोंको सुनकर राजा महेन्द्र और माहेन्द्र दोनों तुरन्त चल पड़े। वे एक पलमें ही सुग्रीव राजाके नगरमें पहुँच गये। रामने (उन्हें आते देखकर) जाम्बवन्तसे पूछा कि ये कौन हैं। कहीं काम समाप्त किये बिना ही हनुमान लौटकर तो नहीं आ गया है! इसपर मन्त्रीने उत्तर दिया कि यह अंजना देवीके पिता महेन्द्र राजा हैं। जब तक राम और जाम्बवन्तमें इस प्रकार बातें हो रही थीं तब तक राजा महेन्द्र उनके सम्मुख ही आ पहुँचे। रामके एकसे एक प्रचण्ड सेवकोंने अपने कठोर और दृढ़ भुजदण्डोंसे राजाको (शुभागमन पर) अर्घ्यदान किया।

●

[४७. सत्तचालीसमो संधि]

मारुइ पवर-विमाणारूढउ अहिणव-जयसिरि-बहु-अवगूढउ
सामि-कज्जेँ संचल्लु महाइउ लीलएँ दहिमुह-दीउ पराइउ ॥

[१]

मण-गमणेण तेण णहेँ जन्तेँ । दहिमुह-णयरु दिट्ठु हणुवन्तेँ ॥१॥
दिट्ठाराम सीम चउ-पासेँहिँ । धरिउ णाइँ पुरु रिणिय-सहासेँहिँ ॥२॥
जहिँ पप्फुल्लियाइँ उज्जाणइँ । बहुइँ णं तित्थयर-पुराणइँ ॥३॥
जहिँ ण कयावि सलायइँ सुक्कइँ । णं सीयलइँ सुट्ठु पर-दुक्कइँ ॥४॥
जहिँ वाविउ विब्भम-सोवाणउ । णं कुणइव देहासुह-गमणउ ॥५॥
जहिँ पायार ण केण वि लङ्घिय । जिण-उवएस णाइँ गुरु-संघिय ॥६॥
जहिँ देउलइँ धवल-पुक्खरियइँ । पोत्था-वायणाइँ व बहु-चरियइँ ॥७॥
जहिँ मन्दिरइँ स-तोरण-वारइँ । णं समसरणइँ सुप्पविहारइँ ॥८॥
जहिँ भुव-पेम-सुरा-दरिसावण । हरि-हर-बम्भहिँ जेहा आवण ॥९॥
जहिँ वर-वेसउ तिणयण-रूवउ । पवर-भुअङ्ग-सएँहिँ अणुहूअउ ॥१०॥
जहिँ गयणङ्ग-वसह-हलहर-आइ । राम-सिलोयण-जेहा गहवइ ॥११॥

सैंतालीसवीं सन्धि

इस प्रकार अभिनव विजयलक्ष्मीका आलिंगन करनेवाले हनुमानने विशाल विमानमें बैठकर अपने स्वामीके कामके लिए प्रस्थान किया। शीघ्र ही महनीय वह दधिमुख विद्याधरके द्वीपमें लीलापूर्वक ही पहुँच गया।

[१] आकाश मार्गसे जाते हुए हनुमानको दधिमुख नगर दिखाई दिया। उस नगरके चारों ओर उद्यान और सीमाएँ इस प्रकार थीं मानो उसने हजारों ऋषियोंको (बंधक) रख लिया हो! विकसित और खिले हुए विमान उसमें ऐसे लगते थे मानो बड़े-बड़े तीर्थंकर-पुराण हों। वहाँ एक भी सरोवर सूखा नहीं था मानो वे परदुखकातरतासे ही शीतल थे। उनकी विस्तृत सीढ़ियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो अधोगामी कुगति ही हो। उसका परकोटा कोई उसी प्रकार नहीं लाँघ सकता था जिस प्रकार गुरु-उपदिष्ट जिनोपदेशको कोई नहीं लाँघ पाता। उसमें देवकुल धवलकमलोंकी तरह थे। वहाँके लोग पुस्तक वाचनाकी तरह (स्वाध्यायकी तरह) बहुत चरितवाले थे। जहाँ तोरण-द्वारोंसे अलंकृत मंदिर ऐसे लगते थे मानो प्रातिहार्योंसे सहित समवशरण हो। वहाँके बाजार हरि, हर और ब्रह्माकी तरह क्रमशः भुव [द्रव्य और हाथ] नेत्र [वस्त्र और आँखें] और सुत्त (सूत्र) दिखा रहे थे। जहाँ वेश्याएँ शिवकी तरह बड़े-बड़े भुजंगों (लंपटों और साँपोंसे) आलिंगित थीं। जहाँ गृहपति, राम और शिवकी तरह हलधर [राम हलधर कहलाते हैं, शिव बैलपर चलते हैं, और गृहस्थ बैल और हलकी इच्छा रखते हैं] थे। इस प्रकार अनेक

६

घत्ता

तहिँ पट्टणेँ बहु-उच्छवहँ भरियएँ णं जगेँ सुकइ-कव्वेँ वित्थरियएँ।
सहइ स-परियणु दहिमुह-राणउ णं सुरवइ सरपुरहोँ पहाणउ ॥१२॥

[२]

तहोँ अग्गिम महिसि तरङ्गमइ। णं कामहोँ रइ सुरवइहेँ सइ ॥१॥
आवन्तएँ जन्तएँ दिण-णिवहेँ। उप्पण्णउ कण्णउ तिण्णि तहेँ ॥२॥
विज्जुप्पह चन्दलेह बाल। अण्णेक्क तहा तरङ्गमाल ॥३॥
तिण्णि वि कण्णउ परिवड्ढियउ। णं सुकइ-कइउ रस-वड्ढियउ ॥४॥
बहु-दिवसेंहिँ सुरय-पियारएँण। पट्ठविउ दूउ अङ्गारएँण ॥५॥
'जइ मज्झउ दहिमुह माम महु। तो तिण्णि वि कण्णउ देहि बहु' ॥६॥
तेण वि विवाहु सङ्कप्पियउ। कल्लाणमुत्ति मुणि पुच्छियउ ॥७॥
कहोँ धीयउ देमि ण देमि कहोँ। मुणिवरेँण वि तक्खणेँ कहिउ तहोँ ॥८॥

घत्ता

'वेयड्ढुत्तर-सेढिहेँ राणउ साहसगइ-णामेण पहाणउ।
जीविउ तासु समरेँ जो लेसइ तिण्णि वि कण्णउ सो परिणेसइ ॥१॥

[३]

गुरु-वयणेण तेण अइ भाविउ। मणेँ गन्धव्व-राउ चिन्ताविउ ॥१॥
'साहसगइ बहु-विज्जावन्तउ। तेण समाणु कवणु परहन्तउ ॥२॥
अहवइ एउ वि णउ बुज्झिज्जइ। गुरु-भासिएँ सन्देहु ण किज्जइ ॥३॥
जम्म-सएँ वि पमाणहोँ ढुक्कइ। मुणिवर-वयणु ण पलएँ वि चुक्कइ ॥४॥
अवसेँ कन्दिवसु वि सो होसइ। साहसगइहेँ जुज्झु जो देसइ' ॥५॥
तं णिसुणेवि लद्ध-छायएँहिँ। णिय-जणेँण आउच्छिउ कण्णेँहिँ ॥६॥

उपमाओंसे भरपूर सुकविके काव्यकी तरह विस्तृत उस नगरमें राजा दधिमुख अपने परिवारके साथ इस तरह रहता था मानो स्वर्ग का प्रधान इन्द्र हो ॥१-१२॥

[२] उसकी सबसे बड़ी रानी तरंगमती, कामदेवकी रति, या इन्द्रकी शचीकी भाँति थी। दिन आये और चले गये। इसी अन्तरमें उसकी तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनके नाम थे चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा और तरंगमाला। सुकविकी रसवर्धित कथाकी भाँति वे तीनों कन्याएँ दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगीं। तब बहुत दिनोंके अनन्तर, सुरनिग्रंथ राजा अंगारकने दधिमुखके पास अपना दूत भेजकर यह कहलाया, "हे माम (ससुर), यदि तुम भला चाहते हो तो शीघ्र ही तीनों कन्याएँ मुझे दे दो" ॥१-६॥

(यह सुनकर) और अपनी पुत्रियोंके विवाहकी बात मनमें रखकर राजा दधिमुखने कल्याणभुक्ति नामके मुनिसे पूछा कि "मैं अपनी लड़कियाँ किसे दूँ और किसे न दूँ।" मुनिवरने तुरन्त राजासे कहा कि "विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीका मुख्य राजा सहस्रगति है। युद्धमें जो उसका अन्त कर दे, तुम अपनी तीनों पुत्रियोंका विवाह उसीसे करना।

[३] गुरुके वचनोंसे अत्यंत भावुक वह राजा दधिमुख इस चिन्तामें पड़ गया कि अनेक विद्याओंके जानकर राजा सहस्रगतिसे कौन युद्ध कर सकता है। अथवा मुझे इन सब बातोंमें न पड़ना चाहिए। क्योंकि गुरुका कहा हुआ प्रलयकालमें भी नहीं चूक सकता (गलत नहीं हो सकता), वह सैकड़ों जन्मोंमें भी प्रमाणित होकर रहता है। अवश्य ही एक दिन वह मनुष्य उत्पन्न होगा जो सहस्रगतिके साथ युद्ध करेगा। यह पता लगनेपर अनिन्द्य सुन्दरी उन कन्याओंने अपने पितासे पूछा

'भो भो ताय ताय दणु-दारा । कहिँ वण-वासहोँ जाहुँ भडारा ॥७॥
करहुँ किं पि वरि मम्भाराहणु । ओमहभासेँ विज्जासाहणु' ॥८॥

घत्ता

एव भणेप्पिणु चल-भउहालउ मणि-कुण्डल-मण्डिय-गण्डयलउ ।
गम्पि पइट्ठु विलउ-वणन्तरेँ णाइँ ति-गुत्तिउ देहब्भन्तरेँ ॥९॥

[४]

तं वणु तिहि मि ताहिँ अवयज्जिउ । णं भव-गहणु असोय-विवज्जिउ ॥१॥
णं णिप्पिलउ थेरि-मुह-मण्डलु । णं णिच्चूयउ कण्ण-उरत्थलु ॥२॥
णं णिप्फलु कुसामि-ओलग्गिउ । णं णिसालु अ-णयण-वग्गिउ ॥३॥
णं हरि-घरु पुण्णाय-विवज्जिउ । णं णीसुण्णु वउद्धहुँ गज्जिउ ॥४॥
जहिँ वोराहिउ कामिणि-लीलउ । मण्डु मण्डु उव्वीरण-सीलउ ॥५॥
जहिँ पाहण वलन्ति रवि-किरणेँ हिँ । णं सज्जण दुज्जण-दुव्वयणेँ हिँ ॥६॥
तहिँ अच्छन्ति जाव वणेँ वित्थएँ । ताव पढुक्किय दिवसेँ चउत्थएँ ॥७॥

घत्ता

चारण पवर-महारिसि आइय भद्द-सुभद्द वे वि वेराइय ।
कोसहोँ तणेण चउत्थं भाएँ अट्ठ दिवस थिय काओसाएँ ॥८॥

[५]

किढिकिढिवन्त-मिलिमिलि-लोयण । लम्बिय-भुअ परिवज्जिय-भोयण ॥१॥
जल्ल-मलोह-पसाहिय-विग्गह । णाण-पिण्ड परिचत्त-परिग्गह ॥२॥
थिय रिसि पडिमा-जोएं जावँ हिँ । अट्ठमु दिवसु पढुक्किउ तावँ हिँ ॥३॥
तहिँ अवसरेँ तिय-लोलुअ-चित्तहोँ । केण वि गम्पि कहिउ वरदत्तहोँ ॥४॥
'देव देव तउ जाउ मणिट्ठउ । तिण्णि वि कण्णउ रण्णे पइट्ठउ ॥५॥
अण्णु ताहिँ वरहत्तु गविट्ठउ । तुहुँ पुणु मुहियएँ जेँ परितुट्ठउ' ॥६॥

कि "हे दनुसंहारक तात! क्या हमलोग वनवासके लिए जाँय। वहाँ हम किसी मंत्रकी आराधना करेंगी या योगके अभ्यास द्वारा कोई विद्या साधेंगी।" यह कहकर चंचल भौंहों और मणि-मय कुंडलोंसे शोभित कपोलोंवाली वे तीनों कन्याएँ विशाल वनमें इस प्रकार प्रविष्ट हुईं मानो शरीरमें तीन गुप्तियाँ ही प्रविष्ट हुई हों ॥१-६॥

[४] उन्होंने उस वनको देखा, जो भवसंसारकी तरह अशोकवर्जित (वृक्षविशेष, सुखसे रहित है), वृषके मुखमंडल की तरह, तिलक (वृक्षविशेष और टीका) से रहित, कन्याके स्तनमण्डलकी तरह निच्चूय [आम्र वृक्ष और चूचकसे रहित], कुस्वामीकी सेवाकी तरह निष्फल, अनतंक समूहके समान निताल [ताड़ वृक्ष और तालसे रहित], स्वर्गकी तरह पुन्नागवर्जित [राक्षस और सुपारीका वृक्ष], बौद्धोंके गर्जनकी तरह निशून्य था। उस वनमें सूकरी कामिनीकी लीला धारण कर रही थी। जैसे कामिनी बलात् चूर्ण विकीर्ण करती चलती है वैसे ही वह चल रही थी। उस वनमें सूर्यकी किरणोंसे पत्थर जल उठते थे मानो दुर्जनोंके वचनोंसे सज्जन ही जल उठे हों। इस प्रकारके उस विस्तृत वनमें बैठे-बैठे उन कन्याओंको चौथा दिन व्यतीत हो गया। इसी समय दो विरक्त चारण महामुनि वहाँ आये और एक कोसके चौथे भागकी दूरीपर आठ दिनके लिए कायोत्सर्गमें स्थित हो गये ॥१-८॥

[५] किड़किड़ाती हुई भी उनकी आँखें चमक रही थीं। उनके हाथ लम्बे और उठे हुए थे। उन्होंने भोजन छोड़ रखा था। उनका शरीर ज्वाला और मल-निकरसे प्रसाधित था। इस प्रकार ध्यानपिण्ड और परिग्रहसे हीन उन्हें प्रतिमायोगमें लीन हुए आठ

तं णिसुणेवि कुविउ अङ्गारउ । णं हुवि घिएँण सित्तु सय-वारउ ॥७॥
'भञ्जमि अज्जु मडप्फरु कण्णहुँ । जेण ण होन्ति मज्झु ण वि अण्णहुँ' ॥८॥

घत्ता

अमरिस-कुद्धउ कुरुडु पधाइउ गम्पिणु वणें वइसाणरु लाइउ ।
धगधगमाणु समुट्ठिउ वण-गउ झत्ति पलित्तु णाइँ खल-जण-वउ ॥९॥

[६]

पवण-दवग्गि दुक्कु णिप्पीसहों । णाइँ किलेहु णिदुग्ग-सरीरहों ॥१॥
सयलु वि काणणु जालालीविउ । रामहों हियउ णाइँ संदीविउ ॥२॥
कत्थइ दारु-वणाइँ पलित्तइँ । णं वइदेहि-दसाणण-चित्तइँ ॥३॥
सुक्केहि मि असुक्क पजलाविय । णं सुपुरिस पिसुणेंहिं संताविय ॥४॥
कहि मि पणट्ठइँ वणयर-मिहुणइँ । कन्दन्तइँ णिय-डिम्भ-विहूणइँ ॥५॥
गम्पि मुणिन्दहुँ सरणु पइट्ठइँ । सावय इव संसारहों तट्ठइँ ॥६॥
तहिँ अवसरें गयणङ्गणें जन्तें । खलिउ णिय-विमाणु हणुवन्तें ॥७॥
मरु मरु लाइउ केण हुवासणु । अच्छउ गमणु करमि गुरु-पेसणु ॥८॥

घत्ता

अह सरणाइएँ अह वन्दिग्गहेँ सामि-कज्जेँ अह मित्त-परिग्गहेँ ।
आएँहिं विहुरेँहिं जो णउ जुज्झइ सो णरु मरण-सए वि ण सुज्झइ ॥९॥

दिन व्यतीत हो गये। इसी बीचमें किसीने जाकर स्त्री-लोलुप वर अंगारकसे यह कह दिया कि "हे देवदेव! तुम्हारी अभिलषित तीनों कन्याएँ वनमें चली गई हैं। तुम उनको लोक लो और फिर बार-बार उनसे संतुष्ट होओ।" यह सुनकर अंगारक एकदम आग-बबूला हो उठा, मानो किसीने आगमें सौ बार घी डाल दिया हो। उसने यह निश्चय कर लिया कि आज मैं अवश्य उन लड़कियों का घमण्ड चूर-चूर कर दूँगा जिससे न तो वे मेरी हो सकें और न किसी दूसरेकी। अत्यन्त निष्ठुर वह, क्रोधसे भरा हुआ दौड़ा, और उस वनमें आग लगा आया। धक धक करके आग चलने लगी और शीघ्र दुष्टजनके वचनोंकी भाँति भड़क उठी॥१-९॥

[६] सूखे तिनकोंकी वह पहली आग उसी प्रकार फैलने लगी जिस प्रकार निर्धनके शरीरमें क्लेश फैलने लगता है। ज्वालमाला से वह समूचा वन उसी प्रकार प्रदीप्त हो उठा जिस प्रकार रामका हृदय (सीता के वियोगमें) संतप्त हो रहा था। कहीं पर सूखे तिनकोंका ढेर जल रहा था, कहीं पर वनचरोंके जोड़े नष्ट हो रहे थे। कहींपर वे अपने बच्चोंसे हीन होनेके कारण चिल्ला रहे थे। संसारसे भीत श्रावकोंकी भाँति वे उन मुनिवरोंकी शरणमें चले गये। इस अवसरपर आकाशमार्गसे जाते हुए हनुमानने (उस आगको देखकर) अपना विमान रोक लिया। वह अपने मनमें सोच रहा था कि 'मर मर' यह आग किसने लगा दी। मुझे अपना जाना स्थगित करके गुरुकी सेवा करनी चाहिए। क्योंकि (नीति-विद्वांका कथन है कि) शरणागतका आना, बंदीको पकड़ना, स्वामीका कार्य और मित्रका परिग्रह, इन कठिन प्रसंगोंमें जो जूझता नहीं वह शत-शत जन्मोंमें भी शुद्ध नहीं हो सकता॥१-९॥

[७]

मणेँ चिन्तेप्पिणु णिम्मल-भावेँ । मारुइ-णिम्मिय-विज्ज-पहावेँ ॥१॥
सायर-सलिलु सव्वु आकरिसिउ । मुसल-पमाणेँहिँ धारेँहिँ वरिसिउ ॥२॥
दुव्वहु उल्हाविउ पजलन्तउ । खल-आवेण कलि व वड्ढन्तउ ॥३॥
तं उवसग्गु हरेँवि सिव-महणु । गउ मुणिवरहुँ पासु मरु-णन्दणु ॥४॥
कर-कमलेहिँ पाय पुज्जेप्पिणु । वन्दिय गुरु गुरु-भत्ति करेप्पिणु ॥५॥
मुणि-पुङ्गवेँहिँ समुब्भएँ वि कर । हणुवहोँ दिण्णासीस सुहङ्कर ॥६॥
तहिँ अवसरेँ विज्जउ साहेप्पिणु । मेरुहेँ पासेँहिँ भामरि देप्पिणु ॥७॥
तिण्णि वि कण्णउ सालङ्कारउ । अहिणव-रम्भ-गब्भ-सुकुमारउ ॥८॥

घत्ता

भड-सुभडहुँ चलण णमंसिउ हणुवहोँ साहुक्कारु करन्तिउ ।
अग्गएँ थियउ सहन्ति सु-सीलउ णं तिहुँ कालहुँ तिण्णि वि लीलउ ॥९॥

[८]

पुणु वि पसंसिउ सो पवणञ्जइ । 'सुहड-सीह अण्णहोँ कहोँ छज्जइ ॥१॥
चङ्गउ पइँ वच्छल्लु पगासिउ । उवसग्गहोँ णाउ मि णिण्णासिउ ॥२॥
एत्तिउ जइ ण पत्तु तुहुँ सुन्दर । तो णवि अज्जु अम्हेँ णवि मुणिवर ॥३॥
तं णिसुणेवि मारुइ गज्जोल्लिउ । दन्त-पन्ति दरिसन्तु पवोल्लिउ ॥४॥
'तिण्णि वि दीसहोँ सुट्ठु णिज्झायउ । कवणु थाणु कहोँ तिण्णि वि धीयउ ॥५॥
किं कज्जेँ वण-वासेँ पइट्ठउ । केण वि कउ उवसग्गु अणिट्ठउ ॥६॥
हणुवहोँ केरउ वयणु सुणेप्पिणु । पभणइ चन्दलेह विहसेप्पिणु ॥७॥
'तिण्णि वि दहिमुह-रायहोँ धीयउ । खुड्ड खुड्ड अङ्गारेण वि वरियउ ॥८॥

[७] अपने मनमें विशुद्ध रूपसे यह विचारकर हनुमानने अपनी विद्याके प्रभावसे समुद्रका सारा पानी खींचकर मूसलाधार धाराओंमें उसे बरसा दिया जिससे जलती हुई आग शांत हो गई, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार क्षमाभावसे बढ़ता हुआ कलि-युग शांत हो जाता है। इस तरह उस उपसर्गको दूरकर शत्रु-संहारक हनुमान उन मुनियोंके निकट पहुँचा। उसने अपने हाथोंसे पूजा और भक्तिकर उनकी खूब वंदना की। उन मुनियोंने भी हाथ उठाकर हनुमानको कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। इसी अवसरपर विद्या सिद्धकर और मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाकर, केलेके गाभकी तरह सुकुमार, अलंकारोंसे सहित उन कन्याओंने आकर भद्र-समुद्र मुनियोंके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्होंने हनुमानको खूब-खूब साधुवाद दिया। उनके सम्मुख स्थित वे तीनों सुशील कन्याएँ ऐसी मालूम हो रही थीं मानो त्रिकालकी तीन सुंदर लीलाएँ ही हों ॥१-९॥

[८] उन्होंने बार-बार हनुमानकी प्रशंसा करते हुए कहा कि "इतनी सुभटलीला भला किसी दूसरेको क्या सोह सकती है। आपने बहुत अच्छा धर्मवात्सल्य प्रकट किया कि उपसर्गका नामतक मिटा दिया। हे सुंदर, यदि आप आज यहाँ न आते तो न तो हम तीनों बचतीं और न ये दोनों मुनिवर।" यह सुनकर हनुमानको रोमांच हो आया। वह अपनी दंतपंक्ति दिखाते हुए बोले कि "आप तीनों बहुत ही विनयशील जान पड़ती हैं। आपकी निवास भूमि कहाँ है। और आप किसकी पुत्रियाँ हैं, वनमें आपलोग किसलिए आईं, और यह अनिष्ट उपसर्ग किसने किया ?" हनुमानके ये वचन सुनकर, चंद्रलेखाने हँसकर कहा—"हम तीनों दधिमुख राजाकी पुत्रियाँ हैं, शायद अंगारकने हमारा वरण कर

घत्ता

तहिं अवसरें केवलिहिं पगासिउ "दससयगइहें मरणु जसु पासिउ।
कोडि-सिल वि जो संचालेसइ सो भरहद्धहों णाहउ होसइ" ॥९॥

[९]

एम वत्त गय अम्हहुँ कण्णों। तें कज्जेण पइट्ठउ रण्णों ॥१॥
बारह दिवस एत्थु अच्छन्तिहुँ। तीहि मि पुण्णारम्भु करन्तिहुँ ॥२॥
ताम वरेण तेण आरुट्ठें। उववणें दिण्णु हुआसणु दुट्ठें ॥३॥
तो वि ण चित्तु जाउ विवरेरउ। एउ कहाणउ अम्हहुँ केरउ ॥४॥
तो एत्थन्तरें रोमञ्चिय-भुउ। भणइ हसेप्पिणु पवणञ्जय-सुउ ॥५॥
'तुम्हहँ हिँ जं चिन्तिउ तं हुअउ। साहसगइहें मरणु संभूअउ ॥६॥
जसु पासिउ सो अम्हहुँ सामिउ। तिहुअणें केण वि णउ आयामिउ ॥७॥
जाहुँ पासु पुज्जन्तु मणोरह'। वड्ढइ जाम परोप्परु इय कह ॥८॥

घत्ता

दहिमुह-राउ ताव स-कलत्तउ पुप्फ-णिवेय-हत्थु संपत्तउ।
गुरु पणवेवि करेवि पसंसणु हणुवें समउ कियउ संभासणु ॥९॥

[१०]

संभासणु करेवि तणु-तणुवें। दहिमुह-राउ वुत्तु पुणु हणुवें ॥१॥
'भो भो णरवइ महिहर-चिन्धहों। कण्णाउ लेवि जाहि किक्किन्धहों ॥२॥
तहिं अच्छइ णारायण-जेट्ठउ। जो वरु चिरु केवलिहिं गविट्ठउ ॥३॥
घाइउ तेण समरें साहसगइ। वेयड्ढुत्तर-सेढिहिँ णरवइ ॥४॥
ताउ कुमारिउ अहिणव-भोग्गाउ। तिण्णि वि राहवचन्दहों जोग्गाउ ॥५॥
मइँ पुणु लङ्काउरि जाएव्वउ। पेसणु सामिहें तणउ करेव्वउ' ॥६॥
तं णिसुणेवि संचल्लिउ दहिमुहु। जो संमाणें दाणें रणें अहिमुहु ॥७॥
तं किक्किन्ध-णयरु संपाइउ। जम्बव-णल-णीलेंहिं पोमाइउ ॥८॥

लिया था। उसी समय एक केवलज्ञानीने यह बात प्रकट की कि जिससे सहस्रगतिका मरण होगा, और जो कोटिशिला उठायेगा, वही इनका भावी वर होगा" ॥१-८॥

[९] जब यह बात हमारे कानों तक आई, तो इसी कामसे हम लोग वनमें प्रविष्ट हुईं। हम लोग यहाँ आराधना प्रारम्भ करके बारह दिनों तक बैठी रहीं। तब उसपर अंगारकने क्रुद्ध होकर वनमें आग लगा दी, तब भी हमारा मन बदला नहीं, बस यही हमारी कहानी है"। तब इसके अनन्तर, पुलकितबाहु हनुमानने हँसकर कहा, "आप लोगोंने जो सोचा था वह हो गया। सहस्रगतिका मरण हो चुका है, जिससे हुआ है, वह हमारे स्वामी हैं। दुनियामें कोई भी उन्हें पराजित नहीं कर सका। उन्हींके पास आपका मनोरथ पूरा होगा"। जब उनमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें अपनी पत्नी सहित, दधिमुख राजा, पुष्प और नैवेद्य हाथमें लेकर आ पहुँचा। गुरुको प्रणाम और स्तवनकर उसने हनुमानके साथ संभाषण किया॥ १-९ ॥

[१०] बातचीतके अनन्तर, लघुशरीर हनुमानने राजा दधिमुखसे कहा, "हे राजन्, तुम महीधरचिह्नवाले किष्किंध नगर अपनी लड़कियाँ लेकर जाओ। नारायणके बड़े भाई वहीं हैं जो केवलियों द्वारा घोषित इनके वर हैं। युद्धमें उन्होंने विजयार्ध-श्रेणिके राजा सहस्रगतिको मार डाला है। हे तात, अभिनव भोगवाली ये कुमारियाँ, राघवचन्द्रके ही योग्य हैं, मैं फिर लंका जाऊँगा जहाँ अपने स्वामीकी ही सेवा करूँगा"। यह सुनकर दधिमुख वहाँसे चल पड़ा। वह उस किष्किंध नगरमें जा पहुँचा जो सम्मान दान और युद्धमें प्रमुख था। तब सुग्रीवने जाकर,

घत्ता

गम्पिणु भुवण-विणिग्गय-णामहों सुग्गीवें दरिसाविउ रामहों ।
तेण वि कामिणि-थण-परिवड्ढणु दिण्णु स यं भु एहिँ अवरुण्डणु ॥९॥

●

[४८ अट्ठचालीसमो संधि]

सविमाणहों णहयलें जन्ताहों खुडु लङ्काउरि पइसन्ताहों ।
णिसि सूरहों णाइँ समावडिय आसाली हणुवहों अब्भिडिय ॥

[१]

तो एत्थन्तरे । देह-सिसालिया ।
जुज्झु समोड्डेंवि । थिय आसालिया ॥तेन तेन तेन-चित्तें॥१
'मरु मरु मक्कुए । अप्पउ दरिसइ ।
मइँ अवगण्णेंवि । एँहु को पइसइ ॥तेन तेन तेन-चित्तें ॥२

[जम्भेट्टिया]

को सक्कइ हुअवहें झम्प देवि । आसीविसु भुअहिँ सुयन्तु लेवि ॥३॥
को सक्कइ महि कक्खएँ छुहेवि । गिरि-मन्दर-अरुअ-अरुग्वहेवि ॥४॥
को सक्कइ जम-मुहें पइसरेवि । भुअ-बलेण समुद्दु समुत्तरेवि ॥५॥
को सक्कइ असि-पञ्जरें चडेवि । धरणिन्द-फणालिहेँ मणि खुडेवि ॥६॥
को सक्कइ सुर-करि-कुम्भु दलेंवि । गयणङ्गणें दिणयर-गमणु खलेंवि ॥७॥
को सक्कइ सुरवइ समरें हणेवि । को पइसइ महँ तिण-समु गणेवि' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि जस-लुद्धएँण हणुवन्तें अमरिस-कुद्धएँण ।
अवलोइय विज्ज स-मच्छरेंण णं मेइणि पलय-सणिच्छरेंण ॥९॥

भुवन-विख्यातनाम, रामसे उनकी भेंट कराई, उन्होंने भी उन्हें अपने हाथोंसे कामिनीस्तनोंको चढ़ानेवाला आलिंगन दिया ॥ १–६ ॥

•

अड़तालीसवीं सन्धि

विद्यासहित, आकाशमें जाते हुए हनुमानने जैसे ही लंका-नगरीमें प्रवेश किया वैसे ही आसाली विद्या आकर उनसे ऐसे भिड़ गई, मानो रात ही सूर्यसे भिड़ गई हो।

[१] इतनेमें विशाल देह धारणकर आसाली विद्या, हनुमानसे युद्ध करनेके लिए आकर जम गई, उसने ललकारा—"मरो-मरो, जरा बलपूर्वक अपनेको दिखाओ, मेरी उपेक्षा करके कौन नगरमें प्रवेश करना चाहता है, किसका है इतना हृदय (साहस)? आगको कौन बुझा सकता है, आशीविष साँपको अपने हाथ में कौन ले सकता है, धरतीको अपनी काँखमें कौन चाप सकता है, मंदराचलके भारको कौन उठा सकता है, यमके मुखमें कौन प्रवेश कर सकता है? अपने बहुबलसे समुद्र कौन तर सकता है, तलवारकी धारपर कौन चल सकता है, धरणेंद्रके फनसे मणि कौन तोड़ सकता है! ऐरावत गजके कुंभस्थलको कौन विदीर्ण कर सकता है, आकाशके प्रांगणमें सूर्यके गमनको कौन रोक सकता है, इन्द्रको युद्धमें कौन मार सकता है; (ऐसे ही) मुझे तृणवत् समझकर कौन, इस नगरीमें प्रवेशकर सकता है।" यह वचन सुनकर पथके लोभी हनुमानने क्रुद्ध होकर आसाली विद्याको ईर्ष्यासे वैसे ही देखा जैसे प्रलय शनैश्चर धरतीको देखता है ॥१–९॥

[२]

पिहुमइ-णामेँण । मन्ति पपुच्छिउ ।
'समर-महाभरु । केण पडिच्छिउ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१
कालेँ चोइउ । को हक्कारइ ।
जो मइ सम्मुहु । गमणु णिवारइ ॥ तेन तेन तेन चित्तं ॥४॥२
तं वयणु सुणेविणु भणइ मन्ति । किं तुज्झु वि मणेँ एवड्डु भन्ति ॥३॥
जइयहुँ सुरवर-संतावणेण । हिय रामहोँ गेहिणि रावणेण ॥४॥
तइयहुँ पर-बल-दुद्दंसणेण । कक्खहेँ चउ-दिसिहिँ विहीसणेण ॥५॥
परिरक्ख दिण्ण जग-पुज्जणिज्ज । णामेण एह आसाल-विज्ज' ॥६॥
तं वयणु सुणेप्पिणु पवण-पुत्तु । रोमञ्च - उच्च - कञ्चुइय - गत्तु ॥७॥
पचविउ 'मरु मलमि मरट्टु तुज्झु । वलु वलु आसालिएँ देहि जुज्झु ॥८॥

घत्ता

जं सयल-काल-गलगज्जियउ मं जाउ मरप्फर-वज्जियउ ।
सा तुहुँ सो हउँ तं एउ रणु लइ खणेँ जुज्झहुँ एक्कु खणु' ॥९॥

[३]

लउडि-विहत्थउ । समरेँ समत्थउ ।
कवय-सणाहउ । कइद्धय-णाहउ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
रह-गय-वाहणु । खत्तिय-साहणु ।
संगहु व रोक्केंवि धाइय कोक्केंवि ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥
परिहरेँवि सेण्णु सव्वेंवि विमाणु । एक्कल्लउ पर लउडिएँ समाणु ॥३॥
'वलु वलु' भणन्तु अहिमुहु पयट्टु । णं वर-करिणिहेँ केसरि विसट्टु ॥४॥
णं महिहर-कोडिहेँ कुलिस-घाउ । णं दव-जालोलिहेँ जल-णिहाउ ॥५॥
एत्थन्तरेँ वयण - विसालियाएँ । हणुवन्तु गिलिउ आसालियाएँ ॥६॥
रेहइ मुह - कन्दरेँ पइसरन्तु । णं णिसि - संभवेँ रवि अत्थवन्तु ॥७॥
वड्ढेवएँ लग्गु पचण्डु वीरु । संचूरिउ गय - घाएँहिं सरीरु ॥८॥

[२] तब उसने पृथुमति नामके मंत्रीसे पूछा, "समरके महाभारकी इच्छा किसने की है, (किसका इतना साहस है), कालसे प्रेरित होकर यह कौन ललकार रहा है, जो मेरे सम्मुख आकर मुझे जानेसे रोक रहा है।" यह वचन सुनकर मंत्रीने कहा "क्या तुम्हारे मनमें भी इतनी बड़ी भ्रांति है, जबसे रावण ने रामकी गृहिणी सीता देवीका अपहरण किया है, तभीसे परबलके लिए दुदर्शनीय विभीषणने लंकाके चारों ओर, आसाली नामकी इस जन-पूज्य आसाली विद्याको रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया है"। यह बात सुनकर पवनपुत्र, पुलकसे कण्टकित शरीर हो उठा, और बोला "मर, तेरा भी मान चूर-चूर करूँगा, मुड़-मुड़, आसाली विद्या, मुझसे युद्धकर"। जो तुमने हमेशा गलगर्जन किया है उसे अभिमानशून्य मत करो। वही तुम हो, और मैं भी वही हूँ। यह रण है, जरा क्षात्रभावसे हम लोग एक क्षण युद्ध कर लें" ॥१-९॥

(३) साहसी युद्धमें समर्थ हनुमानके हाथमें गदा थी, वह कवच पहने था। रथगजका वाहन था उसके पास। वह वानर राज सेनासहित, सिंहकी तरह रुककर, गरजकर, फिर साहस पूर्वक दौड़ा, तदनंतर, सेना और विमानको छोड़कर, केवल गदा लेकर अकेला ही वह, "मुड़ो-मुड़ो" कहता हुआ विद्याके सामने आकर ऐसे खड़ा हो गया, मानो सिंह ही उत्तम हथिनीके सम्मुख आया हो। या, पहाड़की चोटीपर वज्रका आघात हुआ हो, या दावानलकी ज्वाल-मालापर पानीकी बौछार हुई हो। उस विशालकाय आसाली विद्याने हनुमानको निगल लिया, उसके भीतर प्रविष्ट होता हुआ हनुमान ऐसा शोभित हो रहा था मानो रात होनेपर सूर्य ही अस्त हो रहा हो। तब उस वीरने

घत्ता

पेक्खहोँ अब्भन्तरेँ पइसरेँवि वज्जु पवरिसु जीविउ अवहरेँवि ।
णीसरिउ पडीवउ पवणि किह महि तावेँवि फाडेँवि विज्जु जिह ॥१०॥

[४]

पत्थिवासालिया जं समरङ्गणे ।
वड्ढिउ कलयलु हणुवहोँ साहणे ॥ तेन तेन तेन चित्तँ ॥ ४ ॥ १ ॥
दिण्णइँ तूरइँ विजउ पघुट्ठउ ।
मारुइ लीलएँ लङ्क पइट्ठउ ॥ तेन तेन तेन चित्तँ ॥ ४ ॥ २ ॥
जं दिट्ठु पवणि पइसरन्तु । वज्जाउहु धाइउ 'हणु' भणन्तु ॥३॥
'आसाली वहेँवि महाणुभाव । मरु पहरु पहरु कहिँ जाहि पाव ॥४॥
वयणेण तेण हणुवन्तु वलिउ । णं सीहहोँ अहिमुहु सीहु चलिउ ॥५॥
अब्भिट्ट वे वि गय-गहिय-हत्थ । रिउ-रण-भर-परियट्टण-समत्थ ॥६॥
बलु बलहोँ भिडिउ गउ गयहोँ ढुक्कु । तुरयहोँ तुरङ्गु रहु रहहोँ मुक्कु ॥७॥
धउ धयहोँ विमाणहोँ वर-विमाणु । रणु जाउ सुरासुर-रण-समाणु ॥८॥

घत्ता

रह-तुरय-जोह-गय-वाहणइँ मारुइ-विज्जाहर-साहणइँ ।
अब्भिट्टइँ वे वि स-कलयलइँ णं लक्खण-खर-दूसण-बलइँ ॥९॥

[५]

बे वि परोप्परु अमरिस-कुद्धइँ ।
बे वि रणङ्गणे जय-सिरि-लुद्धइँ ॥ तेन तेन तेन चित्तँ ॥ ४ ॥ १ ॥
बे वि हणन्तइँ सर-परिहत्थइँ ।
दुज्जस-मुहइँ व अइ दुप्पेच्छइँ ॥ तेन तेन तेन चित्तँ ॥ ४ ॥ २ ॥
तहिँ तेहएँ रणेँ वट्टन्तेँ घोरेँ । बहु-पहरण-छोहेँ पडन्ते घोरेँ ॥३॥
णिसियर-धाएण कोन्ताउहेण । हक्कारिउ पिङ्गमइ हयमुहेण ॥४॥

भी बढ़ना शुरू कर, और गदाके आघातसे उस विद्याको चूर-चूर कर दिया। पेटके भीतर घुसकर, और बलपूर्वक फैलकर तथा फाड़कर वह वैसे ही बाहर निकल आया जैसे विंध्याचल धरतीको ताड़ित और विदीर्ण कर निकल आता है ॥१-६॥

[४] इस प्रकार आसाली (आशालिका) विद्याके समरांगणमें धराशायी होनेपर, हनुमानकी सेनामें कल-कल ध्वनि होने लगी। तूर्य बजाकर विजय घोषित कर दी गई। अब हनुमानने लीला पूर्वक लंकामें प्रवेश किया। उसे इस तरह प्रवेश करते हुए देखकर वज्रायुध दौड़ा, और 'मारो मारो' कहता हुआ बोला कि "हे महानुभाव, आसाली विद्याका नाशकर कहाँ जा रहे हो, मर, प्रहार कर, प्रहार कर।" इन वचनोंको सुनकर हनुमान मुड़कर इस तरह दौड़ा मानो सिंहके सम्मुख सिंह ही दौड़ा हो। हाथोंमें गदा लेकर वे दोनों योधा आपसमें भिड़ गये। वे दोनों ही शत्रुयुद्ध का भार वहन करनेमें समर्थ थे। सेनासे सेना टकरा गई। गज गजोंके निकट पहुँचने लगे। अश्वोंपर अश्व और रथोंपर रथ छोड़ दिये गये। ध्वजपर ध्वज और रथश्रेष्ठपर रथश्रेष्ठ। इस प्रकार देवासुर-संग्रामकी तरह उनमें भयंकर संग्राम होने लगा। रथ, तुरग, योधा, गज और वाहनोंसे सहित हनुमान और विद्याधरों की सेनाएँ कल-कल ध्वनि करती हुई इस प्रकार भिड़ गईं मानो लक्ष्मण और खरदूषणकी सेनाएँ ही लड़ पड़ी हों ॥१-६॥

[५] अमर्षसे भरी हुईं दोनों ही एक दूसरे पर कुपित हो रही थीं। युद्धप्रांगणमें दोनोंके लिए यशका लोभ हो रहा था। दोनों हाथोंमें हथियार लेकर आक्रमण कर रही थीं। दुर्जनके मुख की तरह दोनों ही दुर्दर्शनीय थीं। बहु शस्त्रास्त्रोंसे क्षुब्ध उस वैसे घोर युद्धके होनेपर निशाचरकी ध्वजावाले वज्रायुधके अनुचर

'मरु थक्कु थक्कु भिडु मइँ समाणु । अवरोप्परु वुज्झहुँ बल-पमाणु ॥५॥
तं णिसुणेंवि णिड्डुमइ वलिउ केम । मयगलहों मत्त-मायङ्गु जेम ॥६॥
ते भिडिय परोप्परु घाय देन्त । रणें रामण-रामहुँ णामु लेन्त ॥७॥
विज्जाहर-करणेंहिँ दावरन्त । जिह विज्जु-पुञ्ज णहयलें भमन्त ॥८॥

घत्ता

आयामेंवि भिउडि-भयङ्करेण हउ हत्थमुहु हणुवहों किङ्करेण ।
गय-घाएँहिँ पाडिउ धरणियलें किउ कलयलु देवेंहिँ गयणयलें ॥९॥

[६]

जं गय-घाएँहिँ पाडिउ हत्थमुहु ।
कुइउ खणद्धेंण मणें वज्जाउहु ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
णिट्ठुर-पहरेंहिँ हणुवहों केरउ ।
भग्गु असेसु वि बलु विवरेरउ ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥
भज्जन्तएँ साहणें णिरवसेसें । हणुवन्तु थक्कु पर तहिँ पएसें ॥३॥
पञ्चमुह-लील रणें दक्खवन्तु । 'मं भज्जहों' णिय-बलु सिक्खवन्तु ॥४॥
उत्थरहुँ लग्गु णिरु णिट्ठुरेहिँ । असि-कणय-कोन्त-गय-मोग्गरेहिँ ॥५॥
वज्जाउहो वि दणु-दारणेहिँ । वरिसिउ णाणा-विह-पहरणेहिँ ॥६॥
तहिँ अवसरें गञ्जोल्लिय-भुएण । आयामेंवि पवणञ्जय-सुएण ॥७॥
पम्मुक्कु चक्कु रणें दुण्णिवारु । दुद्दरिसणु भीसणु णिसिय-धारु ॥८॥

घत्ता

तें चक्कें रणउहें मउल-दलु उच्छिण्णों वि पाडिउ सिर-कमलु ।
धाइउ कबन्धु अमरिसें चडिउ दस-पयइँ गम्पि महियलें पडिउ ॥९॥

अश्वमुखने अपने हाथमें भाला ले लिया, और हनुमानके मन्त्री पृथुमतिसे कहा, "मर मर, ठहर ठहर, मेरे साथ युद्ध कर, आओ जरा एक दूसरेकी सेनाका प्रमाण समझ-बूझ लें।" यह सुनकर पृथुमति इस प्रकार मुड़ा मानो मदगजको देखकर मदगज ही मुड़ा हो। आघात करते हुए, तथा राम और रावण नाम लेकर वे दोनों युद्धमें रत हो गये। विद्याधरोंके आयुधोंसे वे इस प्रकार प्रहार कर रहे थे मानो आकाशतलमें विद्युत्समूह ही घूम रहा हो। इतनेमें हनुमानके अनुचर पृथुमतिने समर्थ होकर, भौंहें टेढ़ी करके अश्वमुखको आहत कर दिया। गदाके प्रहारसे वह धरतीपर लोटपोट हो गया। [यह देखकर] देवता आकाशमें कल-कल शब्द करने लगे ॥१–६॥

[६] इस प्रकार गदाके आघातसे अश्वमुखका पतन होनेपर वज्रायुद्ध आधे ही पलमें क्रुद्ध हो उठा। अपने निष्ठुर प्रहारोंसे वह हनुमानकी सेनाको भग्नप्राय करने लगा। सभी सेनाके प्रणष्ट होनेपर भी हनुमान अकेला ही वहाँ डटा रहा। सिंह-लीलाका प्रदर्शन करता हुआ वह मानो अपनी सेनाको यह पाठ पढ़ा रहा था कि भागो मत। वह कठोर असिकर्णिक, भाला, गदा और मुद्गरोंको लेकर, वेगपूर्वक उछलने लगा। असुरसंहारक कितने आयुधोंको लेकर वज्रायुध भी बरस पड़ा। तब पुलकित-बाहु हनुमानने समर्थ होकर अपना दुर्निवार, तीक्ष्ण, दुर्दर्शनीय और भीषण चक्र मारा। उस चक्रसे विच्छिन्न होकर वज्रायुधका सिर-कमल युद्ध स्थलमें गिर पड़ा। फिर भी उसका धड़, अमर्षसे भरकर दौड़ा किंतु वह दस पग चलकर ही धरतीपर गिर पड़ा ॥ १–६ ॥

[७]

जं हणुवन्तेंण हउ वज्जाउहो ।
सयलु वि साहणु भग्गु परम्मुहो ॥ तेण तेण तेण चित्तें ॥४॥१॥
गउ विहडप्फडु जहिं परमेसरि ।
अच्छइ लीलऍ लङ्कासुन्दरि ॥ तेण तेण तेण चित्तें ॥४॥२॥
'किं अज्ज वि ण सुणहि एव वत्त । आसाल-विज्ज आहवेँ समत्त ॥३॥
अक्खिमट्टु तुहारउ जणणु जो वि । रणेँ चक्क-पहारेँ णिहउ सो वि' ॥४॥
तं णिसुणेंवि अमर-मणोहरीऍ । धाहाविउ लङ्कासुन्दरीऍ ॥५॥
'हा माइँ सुएवि कहिं गयउ ताय । हा कलुणु रुअन्तिहें देहि वाय ॥६॥
हा ताय सयल-भुवणेक्क-वीर । पर-बल - पबल - गलत्थण-सरीर ॥७॥
हा ताय समरेँ भड-थड-णिसुम्भ । सप्पुरिस-रयण अहिमाण-खम्भ' ॥८॥

घत्ता

अहराऍ स-हत्थें लुहिउ मुहु 'हलेँ काइँ गहिल्लिऍ रुअहि तुहुँ ।
लइ धणुहरु रहवरेँ चडहि तुहुँ बलु झुज्झहुँ झुज्झहुँ तेण सहुँ' ॥९॥

[८]

तं णिसुणेप्पिणु कुइय किसोयरि ।
चडिय महारहे लङ्कासुन्दरि ॥ तेण तेण तेण चित्तें ॥४॥१॥
धणुहर-हत्थिय माणुग्गाविरि ।
सहुँ सुर-चावेंण णं पाउस-सिरि ॥ तेण तेण तेण चित्तें ॥४॥२॥
धुरेँ अहर परिट्ठिय रहु पयट्टु । पर-बल-विणासु अखलिय-मरट्टु ॥३॥
तहिं चडेंवि पधाइय रणेँ पचण्ड । मायङ्गहों करिणि व उद्ध-सोण्ड ॥४॥
सूरहों सण्णद्ध व काल-रत्ति । सरहहों थक्क व पडमा विहत्ति ॥५॥
हक्कारिउ रणेँ हणुवन्तु तीऍ । पञ्चाणणु जिह पञ्चाणणीऍ ॥६॥
सुह-कुहर-विणिग्गय-कडुअ-वाय । 'वलु वलु दहवयणहों कुद्ध-पाय ॥७॥

[७] जब हनुमानने वज्रायुधका काम-तमाम कर दिया तो उसकी समूची सेना नष्ट होकर विमुख हो गई। अभिमानहीन वह वहाँ पहुँची जहाँ परमेश्वरी लंकासुंदरी लीलापूर्वक विद्यमान थी। उसने कहा, "तुम यह बात आज भी न समझ पा रही हो कि युद्धमें आसाली विद्या समाप्त हो चुकी है। तुम्हारे पिता वज्रायुध भी चक्रके प्रहारसे मारे गये।" यह सुनते ही लंकासुंदरी विलाप करती हुई दौड़ी। "हे तात, तुम कहाँ चले गये? रोती हुई मुझसे बात करो। सकल भुवनोंमें अद्वितीय वीर हे तात! शत्रु-सेनाके संहारक शरीरवाले हे तात, युद्धमें भटसमूहके संहारक हे तात, सत्पुरुषरत्न, अभिमानस्तम्भ हे तात, तुम कहाँ हो?" तब उसकी (लंकासुंदरीकी) सहेली अचिराने अपने हाथसे उसका मुँह पोंछकर कहा कि हला, इस प्रकार पागल की तरह होकर क्यों रो रही हो। तुम भी धनुष ले रथश्रेष्ठपर आरूढ़ हो सेनाको समझा-बुझाकर युद्ध करो॥१-९॥

[८] यह सुनकर लंकासुन्दरी क्रोधसे भर उठी। वह महारथमें जा बैठी। धनुष हाथमें लेकर तीर बरसाती हुई वह ऐसी जान पड़ती थी मानो पावस-लक्ष्मी इन्द्रधनुषको लिये हुए हो। अचिरा सहेली रथकी धुरापर बैठी थी। अस्खलितमान और शत्रुसेनानाशक, उसका रथ चल पड़ा। उसपर बैठकर वह भी प्रचंड होकर, युद्धमें ऐसे दौड़ी, मानो सूँड उठाकर हथिनी ही गजपर दौड़ी हो, या कालरात्रि ही सूर्यपर संनद्ध हुई हो, या मानो शब्दपर प्रथमा विभक्ति ही आरूढ़ हुई हो। उसने युद्धमें हनुमानको ललकारा वैसे ही जैसे सिंहनी सिंहको ललकारती है। उसके मुखरूपी कुहरसे कड़वी बातें निकलने लगीं, "रावणके क्षुद्र दास! मुड़ मुड़, जो तुमने आसाली विद्या और मेरे पिताका

जं हय आसालिय णिहउ ताउ । तं जुज्झु अज्जु खय-कालु आउ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँवि भड-कडमद्दणेँण णिब्भच्छिय पवणहोँ णन्दणेँण ।
'ओसरु म अग्गएँ थाहि महु कहेँ काहिं मि जुज्झु कण्णाएँ सहुँ' ॥९॥

[९]

हणुवहोँ वयणेँहिं पवर-धणुद्धरि ।
हसिय स-विब्भमु लङ्कासुन्दरि ॥ तेन तेन तेन चित्तेँ ॥[१]॥१॥
हउँ परियाणमि तुहुँ बहु-जाणउ ।
एणालावेँण णवरि अयाणउ ॥ तेन तेन तेन चित्तेँ ॥[१]॥२॥
'एउ काइँ चविउ पइँ दुव्वियड्ढ । किं जलण-सिहक्कएँ तरु ण दड्ढ ॥३॥
किं ण मरइ णरु विस-दुम-छयाएँ । किं विज्झु ण खुप्पिउ णम्मयाएँ ॥४॥
किं गिरि ण फुट्टइ वज्जासणीएँ । किं ण णिहउ करि पञ्चाणणीएँ ॥५॥
रयणीएँ पच्छाएँ वि गयण-मग्गु । किं सूरहोँ सूरत्तणु ण भग्गु ॥६॥
जइ एत्तिउ मणेँ अहिमाणु तुज्झु । तो किं आसालिहेँ दिण्णु जुज्झु' ॥७॥
गलगज्जेँवि लङ्कासुन्दरीएँ । सर-पञ्जरु मुक्कु णिसायरीएँ ॥८॥

घत्ता

वज्जाउह-तणयएँ पेसिएँण विज्जुज्जल-पुञ्ज-विहूसिएँण ।
सर-जालेँ छाइउ गयणु किह जणवउ मिच्छत्त-वलेण जिह ॥९॥

[१०]

तो वि ण भिज्जइ मारुइ बाणेँहिं ।
परम जिणागमु जिह अण्णाणेँहिं ॥ तेन तेन तेन चित्तेँ ॥[१]॥१॥
पवण-सिलीमुह तेण वि मेल्लिय ।
रइहेँ अणङ्गेँ दूअ व घल्लिय ॥ तेन तेन तेन चित्तेँ ॥[१]॥२॥
णाराएँहिं हणुवहोँ केरएँहिं । संचल्लेँहिं दुव्विवरेरएँहिं ॥३॥
सर-जालु विहञ्जेँवि लइउ तेहिं । कावेरि-सलिलु जिह णरवरेहिं ॥४॥

वध किया है, उससे निश्चय ही आज तुम्हारा यमकाल आ गया है"। यह सुनकर भट-संहारक हनुमानने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा, "भाग, मेरे सामने मत ठहर। बता, कहीं क्या कन्याके साथ भी लड़ा जाता है ?" ॥ १-८ ॥

[९] हनुमानके वचन सुनकर, प्रखर धनुष धारण करनेवाली वह लंकासुन्दरी, विभ्रम पूर्वक हँसने लगी, और बोली, "मैं जानती हूँ कि तुम बहुत जानकार हो। परंतु इस प्रकारके प्रलापसे तुम मूर्ख ही प्रतीत होते हो, दुर्विदग्ध, तुम यह क्या कहते हो। क्या (आगकी) चिनगारी पेड़को नहीं जला देती। क्या विषद्रुम लतासे आदमी नहीं मरता। क्या नर्मदा नदीके द्वारा विंध्याचल खंडित नहीं होता। क्या वज्राशनिसे पहाड़ नहीं टूटता, क्या सिंहनी गजको नहीं मार देती। क्या रात गगन-मार्गको नहीं ढक देती, क्या वह सूर्यका सूर्यत्वको भग्न नहीं कर देती। यदि तुम्हारे मनमें इतना अभिमान है तो तुमने आसालीके साथ युद्ध क्यों किया।" इस प्रकार गरजकर निशाचरी लंकासुन्दरीने तीरसमूह छोड़ दिया। वज्रायुधकी लड़की लंका सुन्दरीके द्वारा प्रेषित, पंखकी तरह उजले पुंखोंसे विभूषित तीरोंके जालसे आकाश इस तरह छा गया जिस तरह मिथ्यात्वके बलसे लोगोंका मन आछन्न हो उठता है ॥१-९॥

[१०] लेकिन हनुमान तब भी बाणोंसे छिन्न-भिन्न नहीं हुआ, वैसे ही जैसे परमागम अज्ञानियोंसे छिन्न नहीं होता। तदनन्तर उसने भी पहला तीर मारा मानो कामदेवने ही रातके लिए अपना दूत भेजा हो। हनुमानके दुर्निवार और चलते हुए बाणोंने लंकासुन्दरीके तीर समूहको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न करके ले लिया जिस प्रकार लोग कावेरीके जलको भग्न करके ले लेते

अण्णेक्कें बाणें छिण्णु छत्तु । णं खुडिउ मरालें सहसवत्तु ॥५॥
णं सूरहों जेमणहों विसालु । विप्फलिउ कराउ कच्चोल-थालु ॥६॥
तं णिएँवि हृत्त महियलें पडन्तु । सेविलउ सुरूपु घरघरहरन्तु ॥७॥
संघरेंवि ण सक्किउ सुन्दरेण । सवासियणु णाइँ कुसुम्भिरेण ॥८॥

घत्ता

तें तिक्ख-खुरुप्पें दुज्जएँण पडिवक्ख-मडप्फर-भञ्जणेंण ।
गुणु चिण्णु विणासिउ चाउ किह मिच्छत्तु जिणिन्दागमेंण जिह ॥९॥

[११]

धणुहरें छिण्णएँ कुविउ पहञ्जणि ।
एन्ति पडीविय मुक्क सरासणि ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
लङ्कासुन्दरि मग्गण-जालेंण ।
छाइय मेइणि जिह दुक्कालेंण ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥
तं हणुवहों केरउ बाण-जालु । छायन्तु असेसु दियन्तरालु ॥३॥
वीसहिँ सरेंहिँ परिछिण्णु सयलु । णं परम-जिणिन्दें मोह-पडलु ॥४॥
अण्णेक्कें बाणें कवउ छिण्णु । उरु रक्खिउ कह वि ण हणुउ भिण्णु ।५
छिण्णन्तें कवएँ हरिसिय-मणेण । किउ कलयलु णहें सुरवर-जणेण ॥६॥
दिणयरेंण पहञ्जणु वुत्तु एम । 'महिलाएँ जि जिउ हणुवन्तु केम' ॥७॥
तं वयणु सुणेंवि पुलइय-भुएण । सच्चउरि पलोइउ मरु-सुएण ॥८॥

घत्ता

'हउ काइँ वुत्तु पइँ दिवसयर जिण-धवलु मुएप्पिणु एक्कु पर ।
जगें जो जो गरुयउ गज्जियउ मणु महिलएँ को ण परज्जियउ' ॥९॥

[१२]

जाम पहुच्चइ देइ पहञ्जणु ।
ताम विसज्जिउ उक्का-पहरणु ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१

है। एक और तीरसे उसका छत्र छिन्न-भिन्न हो गया मानो हंसने कमलको ही छिन्न-भिन्न कर दिया हो। या मानो वह भोजन करते हुए सूरवीरका खंडित कराल सुवर्णथाल ही हो। उस छत्रको धरतीपर गिरता हुआ देखकर लंकासुन्दरीने थर्राता हुआ अपना खुरपा फेंका। किंतु हनुमान उसे उसी प्रकार नहीं झेल सका जैसे कुमुनि तपस्या नहीं झेल पाते। शत्रुपक्षके मानका भंजन करनेवाले दुर्धर उस पैने खुरपेसे हनुमानके धनुषकी डोरी कट गई। उसकी कमान भी वैसे ही टूट गई जैसे जिनेन्द्रके आगमसे मिथ्यात्व हट जाता है ॥१–९॥

[११] धनुष टूटनेपर हनुमान सहसा खिन्न हो उठा। उलट-कर उसने [दूसरा] धनुष ले लिया और तीरोंके जालसे उसने लंकासुंदरीको उसी प्रकार ढक दिया जिस प्रकार दुष्काल धरती को आच्छन्न कर लेता है। किन्तु लंकासुन्दरीने अपने तीरोंसे दिशाओंके अन्तराल ढँक लेनेवाले हनुमानके तीर-समूहको ऐसे काट दिया मानो परमजिनेन्द्रने मोहपटलको ही नष्ट कर दिया हो। एक और तीरसे उसने हनुमानका कवचभेदन कर दिया। किसी प्रकार वक्षःस्थल बच गया, और हनुमान आहत नहीं हुआ। कवचके छिन्नभिन्न हो जानेपर देवसमूहमें कलकल ध्वनि होने लगी। दिनकरने हनुमानसे कहा कि अरे तुम महिलाके द्वारा किस प्रकार जीत लिये गये। यह वचन सुनकर पुलकितबाहु हनुमानने सूर्यकी भर्त्सना करते हुए कहा—"अरे दिनकर, तुम यह क्या कह रहे हो। एक जिनवरको छोड़कर दूसरा कौन है जो गरजा हो और साथ ही महिलासे पराजित न हुआ हो" ॥१–९॥

[१२] जबतक हनुमान कुछ और उत्तर दे, तबतक लंका-सुन्दरीने उल्का अस्त्र छोड़ा। किन्तु हनुमानने एक ही तीरमें उसके

तिह हणुवन्तेंण एक्कें बाणेंण ।
किउ सय-सक्करु तुरिउ व णाणेंण ॥ तेन तेम तेन चित्तें ॥४॥२
पुणु मुक्क गयासणि णिसियरीएँ । णं उवहिहें गङ्ग वसुन्धरीएँ ॥३॥
स खण्ड-खण्डु किय तिहिं सरेहिं । णं दुम्मइ संवर-णिज्जरेहिं ॥४॥
एत्थन्तरेँ विप्फुरियाहरीएँ । पम्मुक्कु चक्कु विज्जाहरीएँ ॥५॥
थिउ सिउ तं पि सिलीमुहेहिं । णं कुकइ-कइत्तणु वर-बुहेहिं ॥६॥
सिल मुक्क पओवी ताएँ तासु । णं कु-महिल गय पर-णरहों पासु ॥७॥
वञ्चिय पवणञ्जय-णन्दणेण । णं मसइ सु-पुरिसें दिढ-मणेण ॥८॥

घत्ता

सर मुक्क गयासणि चक्कु सिल अण्णु वि जं किं पि मुअइ महिल ।
तं सयलु वि जाइ णिरत्थु किह घरेँ किविणहोँ सक्कुव-विन्दु जिह ॥९॥

[१२]

जिह जिह मारुइ समरेँ ण भज्जइ ।
तिह तिह कण्ण णिरारिउ रज्जइ ॥ तेन तेन तेम चित्तें ॥४॥१॥
वम्मह - बाणेंहिं विद्ध उरत्थले ।
कह वि तुलग्गहिं पडिय ण महियले ॥ तेम तेन तेम चित्तें ॥४॥२॥
'भो साहु साहु भुवणेक्कवीर । अयलच्छि - वच्छ - लक्खिय-सरीर ॥३॥
भो साहु साहु अक्खलिय-मरट्ट । भड-भञ्जण पर - बल - महावट्ट ॥४॥
भो साहु साहु पच्चक्ख-मयण । सोहग्ग - रासि सप्पुरिस- रयण ॥५॥
भो साहु साहु कइकेय-तिलय । कन्दप्प - दप्प-माहप्प - णिलय ॥६॥
भो साहु साहु तणु-तेय-पिण्ड । दिढ-वियड-वच्छ भुव-दण्ड-चण्ड ॥७॥
भो साहु साहु रिउ-गन्धहत्थि । उवमिज्जइ जइ उवमाणु अत्थि ॥८॥

सा टुकड़े कर दिये। इसपर उस निशाचरीने गदा मारा मानो धरतीने समुद्रमें गंगा ही प्रक्षिप्त की हो। हनुमानने अपने बाणोंसे उसी प्रकार उसे खण्ड-खण्ड कर दिया जिस प्रकार संवर और निर्जरा दुर्मतिको नष्ट कर देती हैं। तब वह निशाचरी तमतमा उठी और उसने चक्र फेंका, परंतु हनुमानने से भी अपने तीरों से उसी प्रकार नष्ट कर दिया जिस प्रकार मनीषी आलोचक कुकविस्वको खण्डित कर देते हैं। इसपर निशाचरीने हनुमानके ऊपर शिला फेंकी, किन्तु वह भी पवनपुत्रके हाथमें उसी प्रकार आ गई जिस प्रकार खोटी स्त्री पर-पुरुषके आलिंगनमें आ जाती है। इस प्रकार लंका-सुन्दरी पवनपुत्रसे उसी प्रकार वंचित हुई जिस प्रकार किसी असती स्त्रीको दुर्मन पुरुषसे वंचित होना पड़ता है। इस प्रकार तीर, गदा, अशनि, शिला जो कुछ भी उस महिलाने छोड़ा, वह सब हनुमानके ऊपर उसी प्रकार असफल हो गये जिस प्रकार कृपणके घरसे याचक असफल लौट जाते हैं ॥१-९॥

[१३] जैसे-जैसे हनुमान युद्धमें अजेय होता जा रहा था वैसे-वैसे वह कन्या व्याकुल होने लगी। कामके बाणोंसे वह अपने उरमें पीड़ित हो उठी। किसी तरह वह संयोगसे धरतीपर नहीं गिरी। वह अपने मनमें सोचने लगी कि हे भुवनैक-वीर हनुमान! साधु-साधु! तुम्हारा शरीर और वक्ष विजयलक्ष्मी से अंकित है। शत्रुसंहारक और शत्रुसेनाका ध्वंस करनेवाले, अस्खलित मान, साधु-साधु! सौभाग्यकी राशि, सत्पुरुषरत्न, साक्षात् कामदेव, साधु-साधु! कामके दर्प और बड़प्पनके निकेतन कपिकेतुतिलक साधु साधु! दृढ़ विशाल वक्षःस्थल, प्रचंडबाहुदंड तनुतेजपिंड, साधु साधु! यदि कोई उपमा न हो तब तुम्हारी

घत्ता

पइँ णाइ परज्जिय इउँ समरेँ वरेँ एवहिँ पाणिग्गहणु करेँ ।
णियं-णामु लिहेप्पिणु सुक्कु सरु णं दूउ विसज्जिउ पियहोँ घरु ॥९॥

[१४]

जाव पढइ णवि वायइ अक्खरु ।
ताम णिसरिउ हियएँ सुहङ्करु ॥ तेम तेम तेन चित्तें ॥४॥१॥
तेण वि गरुअउ णेहु करेप्पिणु ।
वाणु विसज्जिउ णामु लिहेप्पिणु ॥ तेम तेन तेम चित्तें ॥४॥२॥
सरु जोएँवि पवर-धणुद्धरीएँ । परिओसेँ लङ्कासुन्दरीएँ ॥३॥
अवगूढु पवणि थिर-थोर-बाहु । परिहुअउ विज्जाहर - विवाहु ॥४॥
रेहइ सुन्दरि सहुँ सुन्दरेण । वर-करिणि णाइँ सहुँ कुञ्जरेण ॥५॥
णं रत्त सञ्झ सहुँ दिणयरेण । णं सुरसरि सहुँ रयणायरेण ॥६॥
णं सीहिणि सहुँ पञ्चाणणेण । जिणपउमे णाइँ सहुँ लक्खणेण ॥७॥
अह खणेँ खणेँ वण्णिज्जन्ति काइँ । णं पुणु वि पुणु वि ताइँ जेँ ताइँ ॥८॥

घत्ता

एत्थन्तरे हणुवें सुरेहिँ बलु णिम्मोहेँवि थम्भेँवि किउ अचलु ।
सुरवहु-जण -मण-संतावणहोँ मं को वि कहेसइ रावणहोँ ॥९॥

[१५]

थम्भेँवि पर-बलु धीरेँवि णिय-बलु ।
उच्चारेप्पिणु जिणवर - मङ्गलु ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥१॥
पइट्ठु समीरणि सुद्दु रमाउले ।
लङ्कासुन्दरि- केरएँ राउले ॥ तेन तेन तेन चित्तें ॥४॥२॥
रयणिहिँ माणेप्पिणु सुरय-सोक्खु । संचल्लु विहाणएँ दुक्खु दुक्खु ॥३॥
आउच्छिय सुन्दरि सुन्दरेण । वणमाल णाइँ लक्खीहरेण ॥४॥

उपमा दी जाय। हे नाथ, युद्धमें मैं तुमसे पराजित हुई। अच्छा हो यदि आप मुझसे पाणिग्रहण कर लें। अपने मनमें यह विचार कर तीरपर अपना नाम अंकित कर इस प्रकार छोड़ा मानो प्रिय के पास अपना दूत भेजा हो ॥१–६॥

[१४] जब हनुमानने अक्षर पढ़े तो शुभंकर वह हृदयमें निराकुल हो उठा। उसने भी भारी स्नेह जतानेके लिए अपना नाम लिखकर बाण भेजा। बाण देखते ही प्रवर धनुष ग्रहण करनेवाली लंकासुन्दरीने परितोषके साथ प्रवर स्थूलबाहु हनुमानका आलिङ्गन कर लिया। उन दोनोंका वहीं पर विवाह हो गया। सुन्दरके साथ सुन्दरी ऐसे सोह रही थी मानो सुन्दर गज के साथ हथिनी ही हो। मानो दिनकरके साथ संध्या हो, या मानो रत्नाकरके साथ गंगा हो, या मानो सिंहके साथ सिंहनी हो, या मानो लक्ष्मणके साथ जितपद्मा हो। अब क्षण-क्षण कितना और वर्णन किया जाय, बार बार यही कहना पड़ता है कि उनके समान वे ही थे। इसी बीचमें हनुमानने समस्त सेनाको स्तम्भित और मोहित कर अचल बना दिया, इस आशंकासे कि कहीं कोई सुरवर जनोंके मनको सतानेवाले रावणसे जाकर कह न दे ॥१–६॥

[१५] इस तरह शत्रुसेनाको मोहित कर और अपनी सेनाको धीरज देकर और जिनवर मंगलका उच्चारणकर हनुमानने उस लंकासुन्दरीके भवनमें प्रवेश किया। और उसने उसके राजकुलमें रातभर रतिसुखका आनन्द उठाया। प्रातःकाल होते ही वह बड़ी कठिनाईसे वहाँसे चला, उस सुन्दरने सुन्दरीसे प्रस्थानके समय उसी तरह पूछा जिस तरह लक्ष्मणने वनमालासे

'लइ जामि कन्तें रावणहों पासु । सहुँ वलेंण करेवी सन्धि तासु ॥५॥
किं भणइ विहीसणु भाणकण्णु । घणवाहणु मउ मारीचि अण्णु ॥६॥
किं इन्दइ किं अक्खयकुमारु । किं पञ्चमुहु रणें दुण्णिवारु ॥७॥
एत्तियहँ मज्झें का बुद्धि कासु । को बलहों भिच्चु को रावणासु ॥८॥

घत्ता

पुणु पुणु वि भणेव्वउ बुहयणु लइ अप्पि परायउ तिय-रयणु ।
अप्पणउ करेप्पिणु दासरहि सइँ भुञ्जहि णीसावण्ण महि' ॥९॥

●

[४९. एक्कूणपण्णासमो सन्धि]

परिपेसेप्पिणु लङ्कासुन्दरि समरें महाभय-भीसणहों ।
सो मारुइ रामाएसेंण घरु पइसरइ विहीसणहों ॥

[१]

सुरवहु - णयणाणन्दयरु ।
(स-स - रा-ग - ग-म-नि-नि-नि-स-स-नि-धा)
समर-सएँहिं णिव्वूढ-भरु ।
(म-म-गा-म-गा-म-म-धा-स-नी स-धा-स-नी-स-धा) ॥
पवर - सरीरु पलम्ब-भुउ ।
(स-स-स-स-ग-ग-म-म-नि-नि-स-नि-धा)
लङ्क पईसइ पवण-सुउ ।
(म-म-गा-म-गा-म-धा-स-नी धा-स-नी-स-धा) ॥१॥
वज्जेंवि भवणइँ रावण-भिच्चहुँ । इन्दइ - भाणुकण्ण - मारिचहुँ ॥२॥
जण- मण - णयणाणन्द - जणेरउ । घरु पइसरइ विहीसण - केरउ ॥३॥
तेण वि अब्भुत्थाणु करेप्पिणु । सरहसु आलिङ्गणु देप्पिणु ॥४॥
माणइ पइसारिउ वरासणें । णं सु-परिट्ठिउ जिणु जिण-सासणें ॥५॥
कक्कसि - णन्दणेण परिपुच्छिउ । 'मित्त पवणउ कालु कहिं अच्छिउ ॥६॥

पूछा था। उसने कहा, "प्रिये, मैं रावणके पास जाता हूँ, रामसे उसकी सन्धि करवा दूँगा। विभीषण, भानुकर्ण, मेघवाहन, मय, मारीच और दूसरे लोग क्या कहते हैं; इन्द्रजीत, अक्षयकुमार और रणमें दुर्निवार पंचमुख क्या कहते हैं। इतनोंमें किसकी क्या बुद्धि है, कौन रामका अनुचर है, और कौन रावणका। बार-बार मैं रावणसे यही कहूँगा कि तुम शीघ्र दूसरेके स्त्रीरत्नको वापिस कर दो। रामके लिए सीतादेवी अर्पित कर अपनी धरतीका निर्द्वन्द्व रूपसे उपभोग करो ॥१-९॥

०

उनचासवीं संधि

इस लंकासुन्दरीसे विवाह कर, रामके आदेशानुसार हनुमान ने महाभयभीषण विभीषणके घर प्रवेश किया।

[१] सुरवधुओंके लिए आनन्ददायक शतशत युद्धभार उठानेमें समर्थ, प्रबल-शरीर प्रलम्बबाहु हनुमानने लंकानगरीमें प्रवेश किया। वह इन्द्रजीत, भानुकर्ण और मारीच आदि, रावणके अनुचरोंके भवनोंको छोड़कर, सीधा जन-मन और जन-नेत्रोंके लिए आनन्ददायक विभीषणके घर जा पहुँचा। उसने भी उठकर हनुमानका खूब आलिंगन किया। फिर उसने उसे ऊँचे आसन पर बैठा दिया मानो जिन ही जिनशासन पर प्रतिष्ठित हुए हों। (इसके बाद) कैकशी के पुत्र विभीषणने पूछा, "मित्र, इतने समय तक कहाँ थे आप ? क्या आपके कुल और द्वीप में क्षेम

खेमु कुसलु किं णिय-कुल-दीवहुँ । णल - णीलङ्गय - सुग्गीवहुँ ॥७॥
कुन्दिन्दहुँ माहिन्द - महिन्दहुँ । जम्बव - गवय- गवक्ख-णरिन्दहुँ ॥८॥
अञ्जण - पवणञ्जयहुँ स - खेउ' । पुणु वि पुणु वि जं पुच्छिउ एउ ॥९॥

घत्ता

विहसेवि वुत्तु हणुवन्तेंण 'खेमु कुसलु सव्वहुँ जणहुँ ।
पर कुइएहिँ लक्खण-रामेंहिँ अकुसलु एक्कु दसाणणहों ॥१०॥

[२]

पुणु वि पुणु वि कण्टइय-भुउ । भणइ पओवउ पवण - सुउ ।
'एउ सिंहासणु थाउ मणें । वुज्झय हरि- बल होन्ति रणें ॥
सुमण- दुमइ सुमरन्तिय ।
सहुँ मरणेंण सहरिस णच्चिया ॥१॥

अच्छइ रामचन्दु आरूढउ । णं पञ्चाणणु चिरों मुढुव ॥२॥
'अच्छइ अज्जु कल्लेँ संचल्लमि । पलय - समुद्दु जेम उत्थल्लमि ॥३॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ आसङ्कमि । गोपउ जिह रयणायरु लङ्घमि ॥४॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ वलु वुज्झमि । वइरिहिँ समउ रणङ्गणेँ जुज्झमि ॥५॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ अब्भिट्टमि । दहमुह-वल - समुद्दु ओहट्टमि ॥६॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ पुरेँ पइसमि । रावण-सिरि-सीहासणेँ वइसमि ॥७॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ रिउ - केरउ । वाणेंहिँ करमि सेण्णु विवरेरउ ॥८॥
अच्छइ अज्जु कल्लेँ णीसेसहुँ । लेमि छत्त-धय- चिन्ध- सहासहुँ ॥९॥

घत्ता

तं कज्जु आउ गवेसउ हउँ सुग्गीवहों पेसणेंण ।
मं लङ्काहिव-कप्पद्दुमो डज्झउ राम-हुवासणेंण ॥१०॥

[३]

अण्णु सिंहासणु एउ सुणेँ जम्बव - केरउ वयणु सुणेँ ।
"एहेँ होन्तेण सि वल-मणहो वुद्धि ण हुअ दसाणणहों ॥
सुमण-दुमइ सुमरन्तिया ॥१॥

और कुशल तो है ? नल, नील, माहेन्द्र, महेन्द्र, जाम्बवन्त, गवय, गवाक्षादि राजा, अंजना और पवनञ्जय ये सब क्षेमसे तो हैं ?" तब हनुमानने हँसकर विभीषणसे कहा कि "सब लोग कुशल-क्षेम से हैं। किन्तु राम-लक्ष्मणके क्रुद्ध होनेपर केवल रावणकी कुशलता नहीं है" ॥१-१०॥

[२] पुलकितबाहु हनुमानने बार-बार दुहराकर यही बात कही कि विभीषण ! तुम तो अपने मनमें इस बातको अच्छी तरह तौल लो कि रामके कुपित होने पर उसकी सेना अजेय है। और तब सुमन द्विपदी छन्दको याद करके सेना सहित हनुमान नाच उठा। फिर उसने कहा कि यदि रामचन्द्र थोड़ा भी रुष्ट हैं तो मानो सिंह ही कुपित हो उठा है। वह (अभी) रहें, मैं ही आजकलमें प्रस्थान कर रहा हूं। मैं प्रलय-समुद्रकी तरह उछल पड़ूँगा। आजकल ही में मैं समर्थ हो उठूंगा, और गोखुरकी भाँति समुद्र लाँघ जाऊंगा। वह रहें, मैं ही आजकलमें सारी सेनाको समझ लूंगा, और वैरीसे जूझ जाऊंगा। वह रहें, मैं ही आजकलमें भिड़ जाऊंगा और शत्रु-सेना रूपी समुद्रको मथ डालूंगा। आजकलमें मैं ही नगरमें प्रवेश करूंगा और रावणके लक्ष्मी-सिंहासन पर बैठूंगा। वह रहें, मैं ही आजकलमें तीरोंसे शत्रुकी सेनाको विमुख कर दूंगा। वह रहें, आजकलमें, मैं निमेष सैकड़ों छत्र-ध्वज और चिह्नोंको ले लूंगा। इसी कारण मैं सुग्रीवके आदेशसे खोज करनेके लिए आया हूँ, कि कहीं राम-रूपी आगसे रावणरूपी कल्पद्रुम दग्ध न हो जाय ॥१-१०॥

[३] और भी विभीषण ! जाम्बवन्तका भी यह वचन सुनो और विचार करो। उसने कहा है—"तुम्हारे होते हुए भी चंचल-

पइँ होन्तेण वि णारि पराइय । जाहें हरिणि व रुन्द वराइय ॥२॥
पइँ होन्तेण वि रावणु मूढउ । अच्छइ माण-गइन्दारूढउ ॥३॥
पइँ होन्तेण वि घोर-रउद्दहोँ । गमु सज्जिउ संसार-समुद्दहोँ ॥४॥
पइँ होन्तेण वि धम्मु ण जाणिउ । रयणायर-वंसहोँ खउ आणिउ ॥५॥
पइँ होन्तेण वि णिय-कुलु मइलिउ । चउ चारित्तु सीलु णउ पालिउ ॥६॥
पइँ होन्तेण वि लङ्क विणासिय । सम्पय रिद्धि विद्धि विद्धंसिय ॥७॥
पइँ होन्तेण वि लग्गुम्माएँहिँ । चउविहेहिँ वड्ढ-कसाएँहिँ ॥८॥
पइँ होन्तेण वि ण किउ णिवारिउ । एउ कम्मु लज्जणउ णिरारिउ ॥९॥

घत्ता

जस-हाणि खाणि दुह-अयसहुँ इह-पर-लोयहोँ जम्पणउ ।
अप्पिज्जउ गेहिणि रामहोँ किं लज्जावहोँ अप्पणउ ॥१०॥

[४]

अण्णु परज्जिय-पर-बलहोँ सुणि सन्देसउ तहोँ णलहोँ ।
"अइरावय-कर-करयलेँहिँ कवण केलि सहुँ हरि-बलेँहिँ ॥
सुमण-दुमइ सुमरन्तया ॥१॥

सम्बुकुमारु जेहिँ विणिवाइउ । तिसिरउ जेहिँ रणङ्गणेँ घाइउ ॥२॥
जेहिँ विरोलिउ पहरण-जलयरु । खर-दूसण-साहण-रयणायरु ॥३॥
रहवर-णक्क-गाह-भयङ्करु । पवर-तुरङ्ग-तरङ्ग-णिरन्तरु ॥४॥
वर-गय-भड-थड-वेला-भीसणु । धय-कल्लोल-लोल-संदरिसणु ॥५॥
तेहउ रिउ-समुद्दु रणेँ घोट्टिउ । साहसगइ कप्पयरु पलोट्टिउ ॥६॥
कोडि-सिल वि संचालिय जेहिँ । किह किज्जइ विग्गहु सहुँ तेहिँ ॥७॥

मन रावणको बुद्धि नहीं आई। तुम्हारे होते हुए परस्त्रीको उसने वैसे ही अवरुद्ध कर लिया जैसे व्याध बेचारी हरिणीको रुद्धकर लेता है। तुम्हारे रहते हुए भी रावण मूर्ख ही बना रहा, और मान रूपी गजपर बैठा हुआ है। तुम्हारे होते हुए भी उसने केवल रौद्र नरक और घोर संसार-समुद्रका साज सजा। तुम्हारे होते भी धर्म नहीं जाना और राक्षसवंशका नाश निकट ला दिया। तुम्हारे होते हुए भी उसने अपना कुल मैला किया। व्रत, चारित्र्य और शीलका पालन नहीं किया। तुम्हारे होते हुए भी उसने लंकाका विनाश किया और संपदा, ऋद्धि-वृद्धि भी ध्वस्त कर दी। तुम्हारे होते हुए भी वह उन्मादक चार प्रकारकी उद्धत कषायोंमें फँस गया। अपने होते हुए भी तुमने इसका निवारण नहीं किया। यह कर्म अत्यन्त लज्जाजनक है, इसमें यशकी हानि है, दुःख और अपयशकी खान है। इस लोक और परलोकमें निन्दाजनक है। इसलिए रामकी पत्नी सौंप दो। अपनेको क्यों लज्जित करते हो? ॥१-१०॥

[४] और भी, परबलको जीतनेवाले उस नलका भी सन्देश सुन लो। (उसने कहा है) ऐरावतकी सूंडकी तरह प्रचंड यशवाले राम-लक्ष्मण के साथ यह कैसी क्रीडा? जिसने शम्बुककुमारका अन्त कर दिया, जिसने रण-प्रांगणमें त्रिशिरका घात किया, जिसने शस्त्रोंके जल-जंतुओंसे भरे खरदूषणके उस सेनासमुद्रको विलोडित कर डाला, जो रथवरोंरूपी मगर व ग्राहोंसे भयंकर, बड़े-बड़े अश्वोंकी तरंगोंसे भरा, उत्तम हाथियों और ध्वजारूपी कल्लोल-समूहसे व्याप्त था, ऐसे समुद्रको जिसने घोंट डाला, जिसने सहस्रगतिकी खोपड़ी लोट-पोट कर दी, जिसने कोटि-शिलाको भी उठा लिया, उसके साथ विग्रह कैसा? तबतक तुम

घत्ता

अप्पिज्जउ सीय पयत्तेण आयड्ढिय-कोवण्ड-कर।
जाम ण पावन्ति रणङ्गणेँ दुज्जय दुद्धर राम-सर'' ॥८॥

[५]

अण्णु विहीसण गुण-वण्णउ सन्देसउ णीलहोँ तणउ।
णिप्पि दसाणणु एम भणु ''विरुआरउ पर-तिय-गमणु ॥१॥
जो पर-दार रमइ णरु मूढउ। अच्छइ णरय-महण्णवेँ छूढउ ॥२॥
पर-दारेण सि-अक्खु विणट्ठउ। उड्डएहुँ जिम दारु-वणेँ पइट्ठउ ॥३॥
परदारहोँ फलेण कमलासणु। तक्खणेण थिउ सो चउराणणु ॥४॥
परदारहोँ फलेण सुर-सुन्दरु। सहस-णयणु किउ णवर पुरन्दरु ॥५॥
परदारहोँ फलेण णिसलञ्छणु। किउ स-कलङ्कु णवर मयलञ्छणु ॥६॥
परदारहोँ फलेण बहुसाणरु। घर-बाहिरेँ उड्ढुदु णिरन्तरु ॥७॥
परदारहोँ फलेण कुल-दीवहोँ। जीविउ हिउ मायासुग्गीवहोँ ॥८॥
अण्णु वि करि जिह जो उम्मेट्ठउ। भणु परदारेँ को ण वि णट्ठउ ॥९॥

घत्ता

अप्पाहिउ लक्खण-रामेँ हिँ णिय-परिहव-पक्ख-धोवएँ हिँ।
पेक्खेसहि रावणु पडियउ अण्णेँ हि दिवसेँ हि थोवएँ हिँ'' ॥१०॥

[६]

तं णिसुणेँ वि डोल्लिय-मणेण मारुइ वुत्तु विहीसणेँण।
'ण गवेसइ जं चविउ पइँ सयवारउ सिक्खविउ मइँ ॥१॥
तो वि भडारउ ण किउ णिवारिउ। पज्जलियउ मयणग्गि णिरारिउ ॥२॥
ण गणइ जिण-भासिय-गुण-वयणइँ। ण गणइ इन्दणील-मणि-रयणइँ ॥३॥
ण गणइ धरु परियणु णासन्तउ। ण गणइ पहुणु पलयहोँ जन्तउ ॥४॥
ण गमइ रिद्धि विद्धि सिय सम्पय। ण गणइ गलगज्जन्त महागय ॥५॥

प्रयत्नसे सीता उन्हें अर्पित कर दो, कि जबतक उन्होंने धनुष नहीं चढ़ाया और जब तक तुमसे रामके दुर्धर अजेय वीर नहीं लड़े ॥१–८॥

[५] और भी विभीषण ! नीलका भी यह गुणघन संदेश है कि जाकर उस रावणसे यह कहो कि परस्त्री-गमन बहुत बुरा है, जो मूर्ख परस्त्रीका रमण करता है वह नरकरूपी महासमुद्रमें पड़ता है। परस्त्रीसे शिवजी नष्ट हो गये, उन्हें स्त्रीरूप धारण करना पड़ा ?? परस्त्रीके फलसे ब्रह्माके तत्काल चार मुख हो गये, सुर-सुन्दर इन्द्रके परस्त्रीसे हजार आँखें हो गईं। परस्त्रीके कारण ही लांछन रहित चन्द्रमाको सकलंक होना पड़ा। परस्त्रीके फलसे बेचारी आगको निरंतर जलना पड़ रहा है। परस्त्रीके फलसे ही कुलदीपक मायासुग्रीव (सहस्रगति) को अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ा। और भी जो महाव्रतसे हीन मदगजकी तरह है, बताओ ऐसा कौन परस्त्रीसे नष्ट नहीं हुआ। तुम थोड़े ही दिनोंमें देखोगे कि अपने पराभवरूपी पटको धोनेवाले राम-लक्ष्मणसे आहत होकर रावण पड़ा है।

[६] यह सुनकर विभीषणका मन डोल उठा। उसने हनुमानको बताया कि रावण कुछ समझता ही नहीं। जो कुछ आप कह रहे हैं, उसको मैंने उसे सौ बार शिक्षा दी। तो भी महासक्त वह इस बातका निवारण नहीं करना चाहता। कामाग्निसे वह अत्यन्त जल रहा है। वह जिनभाषित गुण-वचनोंको भी कुछ नहीं गिनता। इन्द्रनील मणि-रत्नोंको भी वह कुछ नहीं समझता। नष्ट होते हुए घर और परिजनको भी वह कुछ नहीं गिनता। वह नहीं देख पा रहा है कि उसकी (लंका) नगरी प्रलयमें जा रही है। वह ऋद्धि-वृद्धि श्रीसंपदाको भी कुछ नहीं समझता।

ण गणइ हिलिहिलन्त हय चञ्चल । ण गणइ रहवर कणय-समुज्जल ॥६॥
ण गणइ सालङ्कार स-गेण्डरु । मणहरु पिण्डवासु अन्तेउरु ॥७॥
ण गणइ जल-कीलउ उज्जाणइँ । जाणइँ जम्पाणइँ स-विमाणइँ ॥८॥
सीयहेँ वयणु एक्कु पर मण्णइ । भणमि पइज्जउ जइ आयण्णइ ॥९॥

घत्ता

जइ एम वि ण किउ णिवारिउ तो आयामिय-आहवहों ।
रणेँ हणुव तुज्झु पेक्खन्तहों होमि सहेज्जउ राहवहों' ॥१०॥

[७]

तं णिसुणेप्पिणु पवण-सुउ स-रहसु पुलय-विसट्ट-भुउ ।
पडिणियत्तु चिवरम्मुहउ गउ उज्जाणहों सम्मुहउ ॥१॥
पइसणु णिरवसेसु परिसेसेँवि । अवलोयणियहेँ वलेँग्ग गवेसेँवि ॥२॥
रवि-अत्थवणेँ सुहड-चूडामणि । पवरुज्जाणु पयट्टिउ पावणि ॥३॥
जं सुरवरतरुहिँ संछण्णउ । मल्लिय-कङ्केल्लिहिँ रवण्णउ ॥४॥
कक्कोलिय - लवङ्ग - णारङ्गेहिँ । चम्पय-वउल - तिलय-पुण्णागेंहिँ ॥५॥
तरल - तमाल - ताल-तालूरेँहिँ । मालइ - माहुलिङ्ग - मालूरेँहिँ ॥६॥
भुअ-पउमक्ख - दक्ख-खज्जूरेँहिँ । कुङ्कुम - देवदारु - कप्पूरेँहिँ ॥७॥
वर - करमर - करीर-करवन्देँहिँ । एला-कक्कोलेहिँ सुमन्देँहिँ ॥८॥
चन्दण-वन्दणहिँ साहारेँहिँ । एव तरुहिँ अणेय-पयारेँहिँ ॥९॥

घत्ता

तहों वणहों मज्झेँ हणुवन्तेँण सीय णिहालिय दुम्मणिय ।
णं गयण-मग्गेँ उम्मिल्लिय चन्द-लेह वीयहेँ तणिय ॥१०॥

[८]

सहिय-सहासेँहिँ परियरिय णं वण-देवय अवयरिय ।
सिल-सित्तु णउ लक्खणु जेँ णिव्वण्णिज्जइ काइँ तहेँ ॥१॥

वह गरजते हुए मदगजोंको कुछ नहीं समझता और न सुवर्ण समुज्ज्वल सुन्दर रथको। अलंकारों और नूपुरोंसे युक्त अपने संबंधियों और अन्तःपुर को भी कुछ नहीं गिनता। उद्यान-जल-क्रीड़ाको कुछ नहीं गिनता और न यान जम्पाण और विमानोंको ही कुछ समझता है। केवल एक सीतादेवीके मुखकमलको सब कुछ मानता है। यदि मैं कुछ भी कहता हूँ तो उसे वह विपरीत लेता है। यह सब होने पर भी वह अपने आपको इस कर्मसे विरत नहीं करता तो देखना हनुमान तुम्हारे सम्मुख ही मैं युद्ध प्रारम्भ होते ही रामका सहायक बन जाऊँगा ॥१-१०॥

[७] यह सुनकर पवनपुत्र हर्षसे भर उठा। उसकी बाहुओंमें पुलक हो रहा था। वहाँ से लौटकर विशालमुख हनुमान फिर उद्यानकी ओर गया। अवलोकिनी विद्यासे समस्त नगरकी खोज समाप्त कर, सूर्यास्त होते-होते उसने विशाल नन्दनवनमें प्रवेश किया। वह वन सुन्दर कल्पवृक्षोंसे आच्छन्न और मल्लिका तथा कंकेली वृक्षोंसे सुन्दर था। लवलीलता, लवंग, नारंग, चंपा, बकुल तिलक, पुन्नाग, नरल, तमाल, ताल, तालूर, मालती, मातुलिंग, मालूर, भूर्ज, पद्माक्ष, दाख, खजूर, कुन्द, देवदारु, कपूर, वट, करमर, करीर, करवंद, एला, कक्कोल, सुमन्द, चन्दन, वंदन और साहार ऐसे ही अनेक वृक्षोंसे वह सहित था। उस वनके मध्यमें हनुमानको उन्मन सीतादेवी ऐसी दीख पड़ीं मानो आकाश-पथमें दोजकी चन्द्रलेख ही उदित हुई हो ॥१-१०॥

[८] हजारों सखियोंसे घिरी हुई सीता ऐसी लगती थी मानो वनदेवी ही अवतरित हुई हो। (भला) जिसमें तिल बराबर भी खोट न हो फिर उसका वर्णन किस प्रकार किया जाय।

वर-पाय-तलेंहिं पउणारएहिं । सिणिद्ध-णहेंहिं सिहि-मारएँहिं ॥२॥
उवक्कुलिएँहिं वेढक्किएहिं । वट्टुलिएँहिं गुप्फेंहिं गोप्पिएहिं ॥३॥
वर-पोट्टरिएँहिं मायन्दिएहिं । सिरि-पव्वय-तणिएँहिं मणिएँहिं ॥४॥
ऊरुअ-जुअलं णिप्पालएण । कडिमण्डलेण करहाडएण ॥५॥
वर-सोणिएँ कञ्ची-केरियाएँ । तणु-णाहिएण गम्भीरियाएँ ॥६॥
सुललिय - पुट्ठिएँ सिंगारियाएँ । पिणद्धत्थणियएँ एलउरियाएँ ॥७॥
मच्छुयलें मज्झिमएसएण । भुअ-सिहरेंहिं पच्छिम-देसएण ॥८॥
वारमई - केरेंहिं बाहुलेहिं । सिन्धव - मणिबन्धेंहिं वट्टुलेंहिं ॥९॥
माणुग्गीवएँ कच्छायणेण । उद्धरेंहिं गोग्गाडियएँहिं तणेण ॥१०॥
वसणावलियएँ कण्णाडियएँ । जोइएँ कारोहण - वाडियएँ ॥११॥
णासउडेंहिं तुङ्ग-विसय-तणेहिं । गम्भीरएहिं वर - लोयणेहिं ॥१२॥
भउहा - जुएण उज्जेणएण । भालेण वि चित्ताऊडएण ॥१३॥
कासिएँहिं कवोलेंहिं पुज्जएहिं । कण्णेहिं मि कण्णाउज्जएहिं ॥१४॥
काओलिहिं केस-विसेसएण । निणएण वि दाहिणएसएण ॥१५॥

घत्ता

अह किं बहुणा वित्थरेंण अ-णिविण्णेंण सुन्दर-महएण ।
एक्केक्कउ वत्थु लएप्पिणु णावइ घडिय पयावइएण ॥१६॥

[६]

राम-विओएं दुम्मणिय अंसु-जलोल्लिय-लोयणिय ।
मोक्कल-केस कवोल-भुअ थिय विसण्ठुल जणय-सुअ ॥१॥

कमलनालों की तरह उत्तम पादतलों से, सौभाग्यशाली सिंहली नखोंसे, विकार उत्पन्न करनेवाली ऊँची अंगुलियों व सुडौल गोल एड़ियोंसे, अलंकृत श्रीपर्वत जैसी विस्तृत मायावी उदर-पेशियोंसे, ढलानयुक्त जाँघोंसे, करभ (ऊँट) के समान कटिप्रदेशसे, काँचीपुर की उत्तम करधनीसे, पेटकी गम्भीर नाभिसे, शृंगारयुक्त सुन्दर पीठसे, एलपुरी गोल स्तनोंसे, मझोले वक्षस्थलसे, पश्चिम देशके भुजशिखरोंसे, द्वारावतीके (कड़ों) बाहुलोंसे, सिंधुदेश के गोल मणिबंधोंसे, [illegible] देश की तरह म[illegible]से उन्नत ग्रीवा, [illegible] आनन, ओष्ठपुट (गोम्मडिका के समान ??)से, कर्णाटक देशकी सुन्दर दशनावलिसे, कारोहण की नारियों जैसी जीभसे, उज्जैन वासिनियों की तरह दोनों भौंहोंसे, चित्तको आकर्षित करनेवाले भालसे, काशी के पूज्य कपोलोंसे, कन्यकुब्ज की स्त्रियों के समान कानोंसे, पंक्तिबद्ध विनत दाहिनी ओर झुके हुए केश विशेषसे, उसकी रचना की गई थी।

घत्ता—अथवा बहुत विस्तार से क्या, सुंदर बुद्धिवाले, खेद रहित विधाता ने एक-एक वस्तु लेकर उसकी रचना की है, उसे गढ़ा है ॥१-१६॥

[६] (हनुमानने देखा कि) रामके वियोगसे दुर्मन सीता देवीकी आँखें भरी हुई हैं। उनके बाल खुले हुए और अस्त-व्यस्त व्यस्त हैं। उनके हाथ गालों पर हैं।

जाणइ-वयण-कमलु अलहन्तिउ । मुहु ण देन्ति कुसुम्भुय-पन्तिउ ॥२॥
हणइ तो वि ण करन्ति णिवारिउ । कर-कमलहिँ लग्गन्ति णिरारिउ ॥३॥
एव सिलीमुह - सासिज्जन्ती । अण्णु विओअ - सोय - संतत्ती ॥४॥
जं अच्छन्ति दिट्ठ परमेसरि । सेस-सरीहिँ मज्झेँ णं सुर-सरि ॥५॥
हरिसिउ अञ्जणेउ गुत्थन्तरेँ । धण्णउ एक्कु रामु भुवणन्तरेँ ॥६॥
जो तिय एह आसि माणन्तउ । रावणु सहुँ जेँ मरइ अलहन्तउ ॥७॥
णिरलङ्कार वि होन्ती सोहइ । जइ मण्डिय तो तिहुअणु मोहइ ॥८॥
सोयहेँ तणउ रूउ वण्णेप्पिणु । अप्पउ णहेँ पच्छण्णु करेप्पिणु ॥९॥

घत्ता

जो पेसिउ राहवचन्देँण सो घत्तिउ अङ्गुत्थलउ ।
उच्छङ्गेँ पडिउ वइदेहिहेँ णावइ हरिसहोँ पोट्टलउ ॥१०॥

[१०]

पेक्खेँवि रामङ्गुत्थलउ सरहसु हसिउ सुकोमलउ ।
दिहि परिवड्ढिय सहि-जणहोँ तियडएँ कहिउ दसाणणहोँ ॥१॥
'जीविउ सहलु तुहारउ अज्जु । अज्जु णवर णिक्कण्टउ रज्जु ॥२॥
सोहइ अज्जु देव दह वयणइँ । लहइँ अज्जु चउदह रयणइँ ॥३॥
उब्भहि अज्जु छत्त-धय-दण्डइँ । भुञ्जहि अज्जु पिहिमि छक्खण्डइँ ॥४॥
अज्जु मत्त-गय-घडउ पसाहहि । अज्जु तुङ्ग तुरङ्गम वाहहि ॥५॥
पुण्णउ अज्जु पइज्ज तुहारी । एत्तिय-कालहोँ हसिय भडारी ॥६॥
लद्धु देवाविहि णिम्मुह-भारउ । वज्जउ मङ्गलु तूरु तुहारउ ॥७॥

सीतादेवी का मुखकमल नहीं पानेवाली भ्रमरपंक्ति सुख नहीं दे रही है। वह उन पर आक्रमण करती है परन्तु वे उसको नहीं हटातीं। वह करकमलोंसे एकदम लग जाती है। इस प्रकार एक तो भ्रमरोंके द्वारा खाई जाती हुई, और दूसरे वियोग-दुःख से संतप्त परमेश्वरी देवीको वन में बैठे हुए देखा, मानो समस्त नदियोंके बीच गंगानदी हो। इस बीच हनुमान एकदम प्रसन्न हो उठा कि इस विश्वमें एकमात्र वह धन्य हैं कि जो इस स्त्रीको मानते हैं (सीता जिनकी स्त्री है) और जिसे न पाकर रावण मर रहा है। अलंकारों से रहित होकर भी यह सुन्दर है, यदि इसे अलंकृत कर दिया जाए तो तीनों लोकोंको मोह ले। इस प्रकार सीताकी प्रशंसाकर और अपनेको आकाशमें छिपाकर, जो अंगूठी राम ने भेजी थी, उसे उसने नीचे गिरा दिया। हर्षकी पोटलीकी भाँति वह जानकी की गोदमें आ गिरी ॥१-१०॥

[१०] रामकी अंगूठी देखकर सीतादेवी हर्षाभिभूत होकर कोमल-कोमल हँसने लगीं। (यह देखकर) उनकी सहेलियोंका भाग्य बढ़ने लगा। (बस) त्रिजटाने तुरन्त जाकर रावणसे कहा, "आज तुम्हारा जीवन सफल है, आज तुम्हारा राज्य निष्कंटक हो गया। आज तुम्हारे दस मुख सार्थक हैं। आज तुमने, हे देव, चौदह रत्न प्राप्त कर लिये। आज आप अपने छत्र और ध्वज-दंड ऊँचा कर दें। आज छहों खण्ड भूमि का भोग कीजिये। आज मत्त गजघटाका प्रसाधन किया जाय। आज ऊँचे अश्वोंपर सवारी कीजिये। देव, आज आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई, क्योंकि भट्टारिका सीतादेवी आज हँस रही हैं। शीघ्र ही अपना सुखद मांगलिक

एमिउ भुज्जमि णीसंदेहें। जइ आलिङ्गणु देइ सणेहें ॥८॥
तं णिसुणेवि दसाणणु हरिसिउ। सव्वङ्गिउ रोमञ्चु पदरिसिउ ॥९॥

घत्ता

जो सप्पेंवि सप्पेंवि भरियउ सयल-भुवण-संतावणहों।
सो हरिसु धरन्त-धरन्तहों अङ्गें ण माइउ रावणहों ॥१०॥

[११]

जोइउ मन्दोयरिहें मुहु 'कन्तें पइँ वी जाहि तुहुँ।
अब्भत्थहि धयरट्ठ-गइ महु आलिङ्गणु देइ जइ ॥१॥
तं णिसुणेवि अणाराय-जाणी। संचल्लिय मन्दोयरि राणी ॥२॥
ताएँ समाणु स-दोरु स-णेउरु। संचल्लिउ सयलु वि अन्तेउरु ॥३॥
जं पप्फुल्लिय-पङ्कय-वयणउ। जं कुवलय-दल-दीहर-णयणउ ॥४॥
जं सुरकरि-कर-मन्थर-गमणउ। जं पर-णरवर-मण-जूरवणउ ॥५॥
जं सुन्दरु सोहग्गुग्घवियउ। जं पीणत्थण-भारोणमियउ ॥६॥
जं मणहरु तणु-मज्झ-सरीरउ। जं उरयड-णियम्ब-गम्भीरउ ॥७॥
जं पय-णेउर-घण-झङ्कारउ। जं रङ्खोलिर-मोत्तिय-हारउ ॥८॥
जं कञ्ची-कलाव-पब्भारउ। जं विब्भम-भूभङ्ग-वियारउ ॥९॥

घत्ता

तं तेहउ रावण-केरउ अन्तेउरु संचल्लियउ।
णं स-भमरु माणस-सरवरें कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ ॥१०॥

[१२]

उण्णय-पीण-पओहरिहिं रावण-णयण-सुहङ्करिहिं।
लक्खिय सीयाएवि किह सरियहिं सायर-सोह जिह ॥१॥
णिम्मियलक्खण ससि-जोण्हा इव। तिमि-विरहिय अमिय-तण्हा इव ॥२॥
णिव्वियार जिणवर-पडिमा इव। रइ-विहि विण्णाणिय-घडिया इव ॥३॥
अभयङ्कर सुजीव-दया इव। अहिणव-कोमल-वयण लया इव ॥४॥

तूर्य बजवाइए। मैं तो निश्चय ही यह समझती हूँ कि वह आज आपको स्नेहपूर्वक आलिंगन देगी।" यह सुनकर रावण हर्षित हो उठा। उसको अंग-अंगमें पुलक हो आया। हर्ष अंग-प्रत्यंगमें फूट-फूटकर इतना भर गया कि त्रिभुवनसन्तापकारी रावणके धारण करने पर भी वह समा नहीं पा रहा था ॥१-१०॥

[११] तब उसने देवी मन्दोदरीका मुख देखकर उससे कहा, "तुम जाओ। शीलनिष्ठ उसकी अभ्यर्थना करना जिससे वह मुझे आलिंगन दे।" यह सुनकर भविष्य को जाननेवाली मन्दोदरी चली। उसके साथ सडोर और सनूपुर समस्त अन्तःपुर भी था। अन्तःपुरकी उन स्त्रियोंके मुखकमल खिले हुए थे। उनके नेत्र कुवलयदलकी भाँति आयत थे। उनकी चाल ऐरावतकी तरह मदमाती और मन्थर थी, और [illegible] थीं। सौभाग्यसे भरी हुई वे पीन स्तनोंके भारसे झुकी जा रही थीं। उनका सुन्दर शरीर मध्यमें कृश हो रहा था। उरस्थल और नितम्ब गम्भीर थे। पैर नूपुरोंसे झंकृत थे। वे झिलमिलाते हुए मोतियोंके हार पहने थीं। करधनीके भारसे लदी हुई विभ्रम भ्रूभंग और विकारोंसे युक्त थीं। इस प्रकार रावणका अन्तःपुर चला। (वह ऐसा लगता था) मानो मानसरोवरमें भ्रमरसहित कमलिनी-वन ही खिला हो ॥१-१०॥

[१२] रावणके नेत्रोंको शुभ लगनेवाली, उन्नत और पीन-पयोधरोंवाली उन स्त्रियोंके बीचमें सीतादेवी इस प्रकार दिखाई दीं मानो नदियोंके बीचमें समुद्रकी शोभा दृष्टिगत हुई हो। सीता देवी चन्द्रज्योत्स्नाकी तरह अकलंक, अमृतकी तृष्णाकी तरह तृप्ति रहित, जिनप्रतिमाकी तरह निर्विकार, रतिविधिकी तरह विज्ञान-कौशलसे निर्मित, छहों जीवनिकायोंको जीव-दयाकी भाँति

स-पओहर पाउस-सोहा इव । अविचल सव्वंसह वसुहा इव ॥५॥
कन्ति-समुज्जल तडि-माला इव । सव्व-सलोण उवहि-वेला इव ॥६॥
णिम्मल कित्ति व रामहों केरी । सिहुअणु भमेंवि परिट्ठिय सेरी ॥७॥

घत्ता

अट्ठारह जुवइ-सहासइँ सीयहेँ पासु समल्लियइँ ।
णं सरवरेँ सियहेँ णिसण्णइँ सयवत्तइँ पप्फुल्लियइँ ॥८॥

[१३]

राणिपणु पासेँ वईसरेँवि कवडेँ चाडु-सयइँ करेँवि ।
राहव-घरिणि किसोयरिएँ संबोहिय मन्दोयरिएँ ॥१॥
'हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ किं मूढी । अच्छहि दुक्ख-महण्णवेँ छूढी ॥२॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ करि वुत्तउ । लइ चूडउ कण्ठउ कडिसुत्तउ ॥३॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ जइ जाणहि । लइ मत्थइँ तम्बोलु समाणहि ॥४॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ सुणु वयणइँ । अङ्गु पसाहहि अञ्जहि णयणइँ ॥५॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ लइ दप्पणु । पुणि णिवद्धहि जोअहि अप्पणु ॥६॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ अविओलेँहिँ । चडु गयवरेँहिँ गिल्ल-गिल्लोलेँहिँ ॥७॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ उत्तुङ्गेँहिँ । चडु पवहुलेँहिँ हिंसन्त-तुरङ्गेँहिँ ॥८॥
हलेँ हलेँ सीएँ सीएँ महि भुञ्जहि । माणुस-जम्महों फलु अणुहुञ्जहि ॥९॥

घत्ता

पिउ इच्छहि पट्टु पडिच्छहि जइ सब्भावेँ हसिउ पइँ ।
तो लइ महएवि-पसाहणु अब्भत्थिय एत्तडउ मइँ ॥१०॥

[१४]

तं णिसुणेवि विदेह-सुअ पभणइ पुलय-विसट्ट-भुअ ।
'सच्चउ इच्छमि दहवयणु जइ जिण-सासणेँ करइ मणु ॥१॥
इच्छमि जइ महु सुहु ण णिहालइ । इच्छमि अणुवयाइँ जइ पालइ ॥२॥
इच्छमि जइ महु मासु ण भक्खइ । इच्छमि णियय-सीलु जइ रक्खइ ॥३॥
इच्छमि जइ भोयउ सम्भासइ । इच्छमि जइ पर-दव्वु ण हिंसइ ॥४॥

अभय प्रदान करनेवाली, लताकी तरह अभिनव कोमल रंग-वाली, पावस शोभा की तरह पयोधरों (मेघों/स्तनों) को धारण करनेवाली, धरती की तरह सब कुछ सहनेवाली और अडिग, विद्युत्‌की तरह कान्तिसे समुज्ज्वल, समुद्रवेलाकी भाँति सब ओर लावण्यसे भरपूर, रामकी कीर्तिकी तरह निर्मल और त्रिलोकमें स्थित शोभाकी तरह सुन्दर थीं। अठारह हजार युवतियाँ आकर सीतादेवीसे इस तरह मिलीं मानो सौन्दर्यके सरोवरमें कमल हो खिल गये हों ॥ १-८ ॥

[१३] कृशोदरी मंदोदरी, जाकर पास में बैठकर सैकड़ों चापलूसियाँ कर, सीतासे बोली—"हला हला सीतादेवी, तुम मूढ़ क्यों हो ? तुम दुःख रूपी सागरसे छूट गई। हला हला सीते, तुम मेरा कहा करो, यह चूड़ा कंठी और कटिसूत्र लो। हला सीते, तुम समझती हो तो ये चीजें लो और इस पानका सम्मान करो, हला सीते, मेरी बात सुनो, अपना शरीर प्रसाधित करो। आँखों में अंजन लगाओ। हला सीते, यह दर्पण लो, चोटी बाँध लो और अपने लिए संजोओ। हला सीते, अविलोकित गीले गंडस्थलवाले हाथियों पर चढ़ो। हला सीते, ऊँचे चंचल हिनहिनाते हुए घोड़ों पर चढ़ो। हला सीते, धरती का भोग करो, मनुष्य-जन्म के फल का भोग करो। प्रिय को चाहो, महादेवी-पट्ट स्वीकार करो। जो तुम सद्भाव से हँसी हो तो महादेवी-पद के इन प्रसाधनों को स्वीकार करो, मैं इतनी अभ्यर्थना करती हूँ।"

[१४] यह सुनकर सीता कहती है—(पुलकित बाहुओंवाली) "मैं सचमुच चाहती हूँ यदि रावण जिनशासन में मन लगाये। मैं चाहती हूँ यदि वह मेरा मुख न देखे। मैं चाहती हूँ कि वह मधु और मांस नहीं खाये। मैं चाहती हूँ यदि वह अपने शील की रक्षा करे। चाहती हूँ यदि मैं वह डरे हुए को अभय वचन दे।

इच्छमि पर-कलत्तु जइ अच्छइ । इच्छमि जइ अणुदिणु जिणु अच्चइ ॥५॥
इच्छमि जइ कसाय परिसेसइ । इच्छमि जइ परमत्थु गवेसइ ॥६॥
इच्छमि जइ पडिमाउ समारइ । इच्छमि जइ पुजउ णीसारइ ॥७॥
इच्छमि अभय-दाणु जइ देसइ । इच्छमि जइ तव-चरणु लएसइ ॥८॥
इच्छमि जइ ति-कालु जिणु वन्दइ । इच्छमि जइ मणु गरहइ णिन्दइ ॥९॥

घत्ता

अण्णु मि इच्छमि मन्दोयरि आयामिय-पवराहवहों ।
सिरसा चलणेंहिं णिवडेप्पिणु जइ मईं अप्पइ राहवहों ॥१०॥

[१५]

जइ पुणु पवणाणन्दणहों ण समप्पिय रहु-णन्दणहों ।
तो हउँ इच्छमि एउ हलें पुरि खिप्पन्ती उवहि-जलें ॥१॥
इच्छमि णन्दणवणु भज्जन्तउ । इच्छमि पट्टणु पलयहों जन्तउ ॥२॥
इच्छमि णिसियर-बलु अत्थन्तउ । इच्छमि घरु पायालहों जन्तउ ॥३॥
इच्छमि दहमुह-सरु छिज्जन्तउ । तिलु तिलु राम-सरेंहिं भिज्जन्तउ ॥४॥
इच्छमि दस वि सिरइँ णिवडन्तइँ । सरें हंसाइयइँ व सयवत्तइँ ॥५॥
इच्छमि अन्तेउरु रोवन्तउ । केस-विसन्थुलु धाहावन्तउ ॥६॥
इच्छमि छिज्जन्तइँ धय-चिन्धइँ । इच्छमि णच्चन्ताइँ कबन्धइँ ॥७॥
इच्छमि धूमन्धारिज्जन्तइँ । चउ-दिसु सुहड-चियाइँ बलन्तइँ ॥८॥
जं जं इच्छमि तं तं सच्चउ । णं [तो] करमि अज्जु हलें पच्चउ ॥९॥

घत्ता

जो आइउ राहव-केरउ एहु अप्पणउ अङ्गुत्थलउ ।
महु सहल-मणोरह-गारउ तुम्हहँ दुक्खहँ पोट्टलउ ॥१०॥

मैं चाहती हूँ यदि वह परस्त्री-सेवनसे बचता है। मैं चाहती यदि वह प्रतिदिन जिनदेवकी अर्चा करता है। मैं चाहती हूँ यदि वह कषायों को नष्ट करता है। मैं चाहती हूँ यदि वह अपने परमार्थकी खोज करता है। मैं चाहती हूँ यदि वह प्रतिमाओंका आदर करता। मैं चाहती हूँ यदि वह जिनकी पूजा करवाता है। मैं चाहती यदि वह अभयदान देता है। चाहती हूँ यदि वह अनशन तप करता है। मैं चाहती हूँ यदि वह तीन बार (दिनमें) जिनदेवकी वंदना करे। मैं चाहती हूँ यदि वह अपने मनकी निन्दा करता। हे मन्दोदरी, मैं यह भी चाहती हूं कि विशाल युद्धोंमें समर्थ, रामके चरणोंमें गिरकर वह (रावण) मुझे (सीता को) उन्हें सौंप दे ॥१-१०॥

[१५] यदि वह मुझे रघुनन्दन रामको नहीं सौंपना चाहता, तो हला, मैं यही चाहती हूँ कि वह मुझे समुद्र में फेंक दे। मैं चाहती हूँ कि यह नन्दन वन नष्टभ्रष्ट हो जाय। मैं चाहती हूँ कि यह लंकानगरी आगमें भस्मसात् हो जाय। मैं चाहती हूं कि निशाचर सेनाका अन्त हो। मैं चाहती हूं कि यह भवन पातालमें धंस जाय। चाहती हूं कि दशानन रूपी यह वृक्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। चाहती हूं कि रामके तीर उसे तिल-तिल काट डालें। चाहती हूँ कि रावणके दसों सिर वैसे ही कट कर गिर जायं जैसे हंसोंसे कुतरे कमल सरोवरमें गिर पड़ते हैं। चाहती हूं कि उसका अंत:पुर क्रन्दन करे, उसकी केशराशि बिखरी हो और दहाड़ मार कर रोये। चाहती हूँ कि उसका ध्वज-चिह्न छिन्न-भिन्न हो जाय। चाहती हूँ कि धड़ नाच उठें और चाहती हूँ कि चारों ओर सुभटों की धुआँधार चिताएँ जल उठें। हला, जो जो मैं कहती हूँ वह सब सच है। मैं तो विश्वास करती हूं। देखो यह रामकी अंगूठी आई है। यह मेरे सब मनोरथोंको पूरा करनेवाली है, और तुम्हारे लिए दुखकी पोटली है ॥१-१०॥

[१६]

तं णिसुणेवि विरुद्ध - मण सुरवर-करि-कुम्भयल-थण ।
लक्खण-राम-पसंसणेण पज्जलिय - कोव - हुआसणेण ॥१॥
'मरु कहिँ तणउ रामु कहिँ लक्खणु । अज्जु पावँ तउ कुद्धु दसाणणु ॥२॥
सम्भरु सम्भरु इट्ठा - देवउ । मंसु णिहएँवि भूयहँ देमउ ॥३॥
लेहि लुहमि तुह तणयहोँ णामहोँ । जिह ण होहि रामणहोँ ण रामहोँ ॥४॥
एउ भणेप्पिणु रिउ - पडिकूलें । धाइय मण्डोयरि सहुँ सूलें ॥५॥
जालामालिणी घिसहुँ जालें । कङ्काली कराल - करवालें ॥६॥
विज्जुप्पह विज्जुज्जल - वयणी । दसणावलि रुप्पय - अवयणी ॥७॥
हयमुहि हिलिहिलन्ति उद्धाइय । गयमुहि गुलुगुलन्ति संपाइय ॥८॥
तं बलु णिएँवि तियहुँ भीसाणहुँ । कालु कियन्तु वि मुवइ पाणहुँ ॥९॥

घत्ता

तेहएँ वि कालेँ पडिवण्णएँ विणु रामें विणु लक्खणेण ।
चइदेहिहेँ चित्तु ण कम्पिउ दिढ-मणेण सीलहोँ तणेण ॥१०॥

[१७]

तं उवसग्गु भयावणउ अण्णु वि सीय-दिढत्तणउ ।
पेक्खेँवि पुलय-विसट्ट-भुउ अग्गु पसंसइ पवण-सुउ ॥१॥
'धीरु जँ धीरउ होइ णियाणेँ वि । दुक्कन्तएँ जीविय - अवसाणेँ वि ॥२॥
तियहेँ होइ जं सीयहेँ साहसु । तं तेहउ पुरिसहोँ वि ण दुक्कसु ॥३॥
एहएँ विहुर - कालेँ वट्टन्तएँ । सामिहेँ तणएँ कलत्तेँ मरन्तएँ ॥४॥
जइ मइँ अप्पउ णाहिँ पगासिउ । तो अहिमाणु मरट्टु विणासिउ ॥५॥
एम भणेप्पिणु लउडि - विहत्थउ । अहिणव- पिअर- वत्थ- णियत्थउ ॥६॥
णं कणियारि - णिवहु पप्फुल्लिउ । णं कलहोय - पुञ्जु संचल्लिउ ॥७॥

[१६] यह सुनकर ऐरावतके कुंभस्थलकी तरह पीन स्तनोंवाली मंदोदरीका मन विरुद्ध हो उठा। राम और लक्ष्मण की प्रशंसासे उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह बोली, "मर-मर, कहाँ राम और कहाँ लक्ष्मण, तू आज ही रावणको क्रुद्ध पायेगी। अपने इष्टदेव का स्मरण कर ले। तेरा मांस काटकर भूतों को दे दिया जायगा। तुम्हारे नाम तककी रेखा पोंछ दी जायगी, जिससे तू न तो रावणकी होगी और न रामकी।" यह कहकर मन्दोदरी शत्रुविरोधी शूल लेकर दौड़ी। ज्वालमालिनी विषकी ज्वाला और कंकाली कराल करवाल लेकर दौड़ी। बिजलीकी तरह उज्ज्वल रंगकी विद्युत्प्रभा, रक्तकमलकी तरह नेत्रवाली दशनावली और अश्वमुखी हिनहिना कर उठीं। गजमुखी गरजती हुई आईं। उन भीषण स्त्रियोंकी उस भयंकर सेनाको देखकर काल और कृतान्तने भी अपने प्राण छोड़ दिये। परन्तु उस घोर संकटकाल में, राम और लक्ष्मणके बिना भी, दृढ़ शीलके बलसे सीताका हृदय ज़रा भी नहीं काँपा ॥१-१०॥

[१७] तब उस भयंकर उपसर्ग और सीता देवीकी दृढ़ताको देखकर हनुमानकी भुजाएँ पुलकित हो उठीं। वह उनकी प्रशंसा करने लगा कि "संकटमें जीवनका अन्त आ पहुँचनेपर भी इस धीराने धीरज रक्खा। स्त्री होकर भी सीतादेवीमें जितना साहस है, उतना पुरुषोंमें भी नहीं होता। इस अत्यन्त विधुर समयमें भी जब कि स्वामी रामकी पत्नी मर रही है, यदि मैं अपने आपको प्रकट नहीं करूँ तो मेरा अहंकार और अभिमान नष्ट हो जायगा", यह सोचकर हनुमानने अपने हाथमें गदा ले लिया और नये पीत वस्त्र पहनकर वह चल पड़ा। वह ऐसा लग रहा था मानो खिले हुए कनेर-पुष्पोंका समूह हो या फिर स्वर्ण-पुंज

घत्ता

मन्दोयरि-सीयाएविहिँ कलहॆं पवड्ढिएँ भुवण-सिरि ।
णं उत्तर-दाहिण-भूमिहिँ मज्झें परिट्ठिउ थिउ कइरि ॥८॥

[१८]

'ओसरु ओसरु दिढ-मइएँ पासहों सीय - महासइहॆं ।
हउँ आयामिय-पर-बलेंहिं दूउ विसज्जिउ हरि-वलेंहिं ॥१॥
हउँ सो राम - दूउ संपाइउ । अक्खत्थलउ लएप्पिणु आइउ ॥२॥
पइसरहों मइं समाणु अइ सक्कहों । सीया - एविहॆं पासु म ढुक्कहों ॥३॥
तं णिसुणेवि वयणु णिसियरि । चविय विरुद्ध कुद्ध मन्दोअरि ॥४॥
'चङ्गउ पुरिस-विसेसु गवेसिउ । साणु लएवि सीहु परिसेसिउ ॥५॥
खरु संगहॆंवि तुरङ्गमु वज्जिउ । जिणु परिहरॆंवि कु-देवउ अज्जिउ ॥६॥
छालउ धरॆंवि गइन्दु विमुक्कउ । चङ्गन्तरॆंण मित्त तुहुँ चुक्कउ ॥७॥
एक्कु वि उवयारु ण सम्भरियउ । रावणु मुएँवि रामु जं वरियउ ॥८॥
जसु णामेण जि हासउ दिज्जइ । तासु केम दूअत्तणु किज्जइ ॥९॥

घत्ता

जो सयल-कालु पुज्जेव्वउ कणय-मउड - कडिसुत्तएँहिं ।
सो एवहिं तुहुँ वन्धेव्वउ चोरु व मिलॆवि वहुत्तएँहिं ॥१०॥

[१९]

तं णिसुणॆवि हणुवन्तु किह कसि पलित्तु दवग्गि जिह ।
'जं पइँ रामहों णिन्द कय किह सय-खण्डु ण जीह गय ॥१॥
जो धगधगधगन्तु वइसाणरु । रक्खस - वण - तिण-रुक्ख-भयङ्करु ॥२॥
अण्णु वि जसु सहाउ भड-भञ्जणु । झलझलन्त (?) सोमित्ति-पहञ्जणु ॥३॥

हो। (इस प्रकार) मन्दोदरी और सीतादेवी में कलह बढ़नेपर, भुवन-सौन्दर्य हनुमान उनके बीचमें जाकर उसी प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार उत्तर और दक्षिण भूमियोंके मध्यमें विन्ध्याचल खड़ा हो ॥१-८॥

[१८] हनुमानने (गरजकर) कहा, "मन्दोदरी, तू दृढ़बुद्धि महासती देवीके पाससे दूर हट। मैं शत्रुसेनाके लिए समर्थ राम और लक्ष्मणका भेजा दूत हूँ। मैं उन्हीं रामका दूत हूँ और हाथकी अंगूठी लेकर आया हूँ। बन सके तो मुझपर प्रहारकर, पर सीता देवीके पाससे दूर हट।" यह सुनते ही निशाचरी मन्दोदरी एकदम क्रुद्ध हो उठी। वह बोली, "खूब अच्छा विशेष पुरुष तुमने खोजा हनुमान ! कुत्ता लेकर (वास्तवमें) तुमने सिंह छोड़ दिया, गधेको ग्रहणकर उत्तम अश्वका त्याग कर दिया। जिनवरको छोड़कर कुदेवकी पूजा की। बकरा लेकर गजवर छोड़ दिया। मित्र, तुमने बहुत बड़ी भूल की है। तुम्हें हमारा एक भी उपकार याद नहीं रहा जो इस प्रकार रावणको छोड़कर रामसे मिल गये (मित्रता कर ली)। (उस रामके साथ) कि जिसका नाम सुनकर भी लोग मजाक उड़ाते हैं, उसका दूतपन कैसा ? जो तुम कटक मुकुट और कटिसूत्रोंसे सदैव सम्मानित होते रहे, वही तुम्हें इस समय राजपुत्र मिलकर चोरोंकी तरह बाँध लेंगे।" ॥१-१०॥

[१९] यह सुनकर हनुमान दावानलकी तरह (सहसा) प्रदीप्त हो उठा। उसने कहा, "तुमने जो रामकी निंदा की, सो तुम्हारी जीभके सौ-सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये ! निशाचररूपी वन-तृण और वृक्षोंके लिए अत्यन्त भयंकर जो धक-धक करता हुआ दावानल है, और झरझर करता हुआ लक्ष्मण रूपी पवन

तेहिँ विरुद्धएहिँ को मुहइ। बाहँ णिणाएं अम्बरु फुट्टइ ॥४॥
कण्हहों किण्ण परक्कमु बुज्झिउ। खर-दूसणेंहिँ समउ जें जुज्झिउ ॥५॥
वालिय कोडिसिल वि अविओलें। लच्छि व गहेंण गिल्ल-गिल्लोलें ॥६॥
साहसगइ वि वियारिउ रामें। को जगेँ अण्णु तेण आयामें ॥७॥
अइवइ रावणो वि जस-लुद्धउ। णवर धारु-सीलेण न लद्धउ ॥८॥
पोरहों परयारियहों अज्जोणुचि(?)। तासु सहाउ होइ किं कोइ वि ॥९॥

घत्ता

अण्णु वि णव-कोमल-बाहँहिँ जसु विज्जइ आलिङ्गणउ।
मन्दोवरि तहों पिय-कन्तहों किह किज्जइ दूअत्तणउ' ॥१०॥

[२०]

जं पोमाइउ दासरहि णिन्दिउ रावण-बल-उवहि।
तं मन्दोअरि कुइय मणेँ विज्जु पगज्जिय जिह गयणेँ ॥१॥
'अरेँ अरेँ हणुव हणुव बल-गावहुँ। दिट्ठु होज्जहि एयहुँ आलावहुँ ॥२॥
जइ ण विहाणएँ पइँ बन्धावमि। तो णिय-गोत्तेँ कलङ्कउ लावमि ॥३॥
अण्णु मि घरिणि ण होमि णिसिन्दहों। णउ पणिवाउ करेमि जिणिन्दहों ॥४॥
एम भणेवि तुरिउ संचल्लिय। वेल समुद्दहों जिह उत्थल्लिय ॥५॥
परिवारिय लङ्काहिव-पत्तिहिँ। पढम विहत्ति व सेस-विहत्तिहिँ ॥६॥
णेउर - हार - डोर - पालम्बेंहिँ। सुरधणु - तारायण-पडिबिम्बेंहिँ ॥७॥
पक्खलन्ति णिवडन्ति किसोयरि। गय णिय-णिलउ पत्त मन्दोयरि ॥८॥

जिसका सहायक है, जिसके निनाद से आकाश फट जाता है, भला उसके विरुद्ध होने पर कौन बच सकता है ? जिस समय खरदूषणसे लड़ाई हुई थी क्या उस समय उसका पराक्रम समझमें नहीं आया ? जिन्होंने अविचल कोटिशिलाको उसी प्रकार विचलित कर दिया जिस प्रकार मद-झरता गज लक्ष्मी को। रामने सहस्रगतिको हरा दिया है। दूसरा कौन उनके सम्मुख विश्वमें समर्थ है ? यद्यपि रावण भी यशका लोभी है परन्तु उसने सुन्दर शील प्राप्त नहीं किया। फिर दूसरे की स्त्रियोंको उड़ानेवाले रावणकी शरणमें जाकर कौन उसका सहायक बनना चाहेगा ? और भी, तुम जिस रावणको नव कोमल बाष्पसे पूरित आलिंगन देती हो उस अपने पतिका यह दूतीपन कैसा ?" ॥१-१०॥

[२०] इस प्रकार जब हनुमानने रामकी प्रशंसा और रावण रूपी समुद्रकी निन्दा की तो निशाचरी मन्दोदरी उसी प्रकार कुपित हो उठी मानो आकाशमें बिजली ही चमकी हो। वह चिल्लाकर बोली, "अरे-अरे, बलसे गर्विष्ठ इसे मारो मारो। अपने शब्दोंपर दृढ़ रह, यदि कल ही तुझे न बँधवा दिया तो अपने गोत्रको कलंक लगाऊँ और रावणकी पत्नी न कहलाऊँ, तथा जिनेन्द्र देवको नमन न करूँ।" यह कहकर मन्दोदरी फुदककर ऐसे चली मानो समुद्रकी बेला ही उछल पड़ी हो। जिस प्रकार प्रथमा बिभक्ति शेष विभक्तियोंसे घिरी रहती है, उसी तरह वह रावणकी दूसरी पत्नियोंसे घिरी हुई थी। इन्द्रधनुष और तारागणके अनुरूप नूपुर और हार डोरसे स्खलित होती गिरती पड़ती वह अपने भवनमें पहुँच गई ॥१-८॥

घत्ता

हणुवेंण वि रहसुच्छलिएँण दुक्खु लद्धु लद्धमुएँहिँ ।
णं जिणवर-पडिम सुरिन्देंण पणमिय सीय सयंभुएँहि ॥९॥

●

[५० पण्णासमो संधि]

गय मन्दोयरि णिय-घरहोँ हणुवन्तु वि सीयहे सम्मुहउ ।
अग्गएँ थिउ अहिसेय-करु णं सुरवर-करिहेँ मत्त-गउ ॥

[१]

मालूर-पवर-पीवर-थणाएँ कुवलय-दल-दीहर-लोयणाएँ ।
पप्फुल्लिय-वर-कमलाणणाएँ हणुवन्तु पपुच्छिउ दिढ-मणाएँ ॥१॥

(पद्धडिया-दुवई)

'कहे कहेँ वच्छ वच्छ वहु-णामहोँ । कुसल-वत्त किं अकुसल रामहोँ ॥२॥
कहे कहेँ वच्छ वच्छ कमलेक्खणु । किं विणिहउ किं जीवइ लक्खणु' ॥३॥
तं णिसुणेँवि सिरसा पणमन्तें । अक्खिय कुसल-वत्त हणुवन्तें ॥४॥
'माएँ माएँ करेँ धीरउ णिय-मणु । जीवइ रामचन्दु स-जणद्दणु ॥५॥
णवरि परिट्ठिउ सोह-विसेसउ । तवसि व सव्व-सङ्ग-परिसेसउ ॥६॥
चन्दु व बहुल-पक्ख-खय-खीणउ । णियइ व रज्ज-विहोय-विहीणउ ॥७॥
रुक्खु व पत्त-रिद्धि-परिचत्तउ । सुकइ व सुकर कहइ चिन्तन्तउ ॥८॥
तरणि व णिय-किरणेँहिँ परिवज्जिउ । जलणु व तोय-तुसार-परज्जिउ ॥९॥

घत्ता

इन्दु व पवण-कालेँ सहसिउ दससिरेँ आगमणेँ जेम अलकहि ।
ताम-तामु परिखीण-तणु तिह तुम्ह विओएँ दासरहि ॥१०॥

इधर हनुमानने भी, हर्षसे उछलते हुए दुर्दम दानवोंका दमन करने वाली भुजाओं से सीतादेवीको उसी प्रकार प्रणाम किया जिस प्रकार देवेन्द्र जिन-प्रतिमाको नमन करता है ॥६॥

पचासवीं संधि

मन्दोदरीके चले जानेपर हनुमान सीतादेवीके सम्मुख ऐसे बैठ गया मानो अभिषेक करनेवाला महागज ही देवलक्ष्मीके सम्मुख बैठ गया हो।

[१] तदनन्तर विकसित मुखकमलवाली एवं कुवलय-दलके समान नेत्र और बेलफलकी तरह पीन स्तनवाली दृढमना सीतादेवीने हनुमानसे पूछा, "हे वत्स, कहो-कहो, अनेक नामवाले रामकी कुशलवार्ता है या अकुशल। हे वत्स! बताओ बताओ, कमलनयन लक्ष्मण जीवित हैं या मारे गये।" यह सुनकर हनुमानने सिरसे प्रणाम करते हुए रामकी कुशल-वार्ता कहना आरम्भ किया। "हे माँ, अपने मनमें धीरज रखिए। लक्ष्मणसहित राम जीवित हैं परन्तु वे रेखाकी तरह ही अवशिष्ट हैं। तपस्वीकी भाँति उनके अंग-अंग सूख गये हैं। कृष्णपक्षके चन्द्रकी तरह वह अत्यन्त क्षीण हो चुके हैं। निवृत्ति (-मार्गियों) के समान राज्योपभोगसे रहित हैं। वृक्षकी तरह पत्तों (प्राप्ति और पत्र) की ऋद्धिसे परित्यक्त हैं। दुष्कर-कथाका विचार करते हुए कविकी तरह अत्यन्त चिन्ताशील हैं। सूर्यकी तरह अपनी ही किरणोंसे वर्जित हैं। आगकी भाँति तोय और तुषारसे (आँसू और प्रस्वेदसे) वर्जित हैं। तुम्हारे वियोगमें राम क्षयकालके इन्दुकी तरह ह्रासोन्मुख हो रहे हैं, या दसमीके इन्दुकी भाँति अत्यन्त दुर्बल और अशक्त शरीर हैं ॥१-१०॥

[२]

अण्णु वि मयरहरावत्त-धरु सिर-सिहर-चडाविय-उभय-करु ।
णिय जणणि वि पुत्र ण अणुसरइ सोमित्ति जेम पइँ संभरइ ॥१॥

(पद्धडिया-दुवई)

सुमरइ णिय-णन्दणु माया इव सुमरइ सिहि पाउस-छाया इव ॥२॥
सुमरइ जणु पहु-मआया इव ॥३॥
सुमरइ भिच्चु पु-सामि-दाण इव । सुमरइ करहु करीर-लया इव ॥४॥
सुमरइ मत्त-हत्थि वणराइ व । सुमरइ मुणिवरु गइ-पवरा इव ॥५॥
सुमरइ णिद्धणु धण-सम्पत्ति व । सुमरइ सुरवरु जम्मुप्पत्ति व ॥६॥
सुमरइ भविउ जिणेसर-भत्ति व । सुमरइ वइयाकरणु विहत्ति व ॥७॥
सुमरइ ससि संपुण्ण पहा इव । सुमरइ बुहयणु सुकइ-कहा इव ॥८॥
तिह पइँ सुमरइ देवि जणद्दणु । रामहों पासिउ सो वृमिय-मणु ॥९॥

घत्ता

एक्कु तुहारउ परम-दुहु अण्णेक्कु वि रहु-तणयहों तणउ ।
एक्कु रत्ति अण्णेक्कु दिणु सोमित्तिहँ सोक्खु कहिं तणउ' ॥१०॥

[३]

तो गुण-सलिल-महाणइहेँ रोमञ्चु पवड्ढिउ जाणइहेँ ।
कञ्चुउ फुट्टेँ वि सय-खण्डु गउ णं खलु अलहन्तु विसिट्ठ-मउ ॥१॥

(पद्धडिया-दुवई)

पवरु सरीरु ताहेँ रोमञ्चिउ । पच्छएँ णवर विसाएँ सञ्चिउ ॥२॥
'दुक्करु राम-दूउ एहु आइउ । मण्णुज्जु अण्णु को वि संपाइउ ॥३॥
अत्थि अणेय एत्थु विज्जाहर । जे णाणाविह - रूव-भयङ्कर ॥४॥
सव्वहँ महँ सब्भाव णिरिक्खिय । चन्दणहि वि चिहणाहिँ परिक्खिय ॥५॥
णं वण-देवय आणहों चुक्की । "मइँ परिणहों" पभणन्ति पढुक्की ॥६॥

[२] आपके वियोगमें लक्ष्मण भी अपने दोनों हाथ सिर से लगाकर जितनी याद आपकी करता है, उतनी अपनी मांकी भी नहीं करता। वह आपको उसी तरह याद करता है जिस प्रकार बच्चा अपनी मांकी याद करता है। मयूर जिस तरह पावस छायाकी याद करता है, जिस प्रकार सेवक अपनी प्रभुकी मर्यादा की याद करता है, जिस प्रकार अच्छा किंकर अपने स्वामीकी दयाकी याद करता है, जिस प्रकार करभ करीरलताकी याद करता है, जिस प्रकार मदगज वनराजिकी याद करता है, जिस प्रकार मुनि उत्तम गतिकी याद करता है, जिस प्रकार इन्द्र जिन-जन्मकी याद करता है, जिस प्रकार भव्य जीव जिन-भक्तिकी याद करता है, जिस प्रकार वैयाकरण विभक्तिकी याद करता है, जिस प्रकार चन्द्रमा सम्पूर्ण महाप्रभाकी याद करता है, वैसे हे देवी, लक्ष्मण आपकी याद करते रहते हैं। रामकी अपेक्षा कुमार लक्ष्मण को एक तुम्हारा ही परम दुःख है। दूसरा दुख है रामका। चाहे रात हो या दिन लक्ष्मणको सुख कहां ? ॥१-१०॥

[३] तब (यह सुनकर) गुणगणके जल की महानदी सीता-देवी का रोमांच बढ़ गया। उनकी चोली फटकर सौ टुकड़े हो गई, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार विशिष्ट मदको न पाकर खल सौ-सौ खंड हो जाता है। पहले तो उनका शरीर पुलकित हुआ। किन्तु बादमें वह विषादसे भर उठीं। वह सोचने लगीं कि यह दुष्कर रामका दूत आया है, या शायद कोई दूसरा ही आया हो। यहां तो बहुतसे विद्याधर हैं जो नाना रूपों में भयंकर हैं, मैं तो सभीमें सद्भाव देख लेती हूं। जैसे मैं बहुत समय तक चन्द्रनखाको नहीं पहचान सकी थी। वह (चन्द्रनखा) किसी स्थानभ्रष्ट देवी की तरह आई और उनसे कहने लगी कि मुझसे विवाह कर लो।

णवर णियाणें हूअ विज्जाहरि । किलिकिलन्ति थिय अम्बहँ उप्परि ॥७॥
लक्खण-खग्गु णिएवि पणट्ठी । हरिणि व वाह-सिलीमुह-तट्ठी ॥८॥
अण्णेक्कएँ किउ णाउ भयङ्करु । हउँ मि छलिय विच्छोइउ हलहरु ॥९॥

घत्ता

कहिँ लक्खणु कहिँ दासरहि भायहों दुम्मणु कहिँ तणउ ।
माया-रूवें पिउ करेंवि मणु ओमइ को वि महु तणउ ॥१०॥

[४]

आरुवमि खेयरु वरि पुण सइँ पेक्खहुँ कवणुत्तरु देइ महु ।
मायवेण होवि आसङ्कियउ किउ लवण-महोवहि लङ्घियउ' ॥१॥
पच्चारिउ णिय-मणें चिन्तन्तिएँ । 'अइ तुहुँ राम-दूउ विणु भन्तिएँ ॥२॥
तो किह कमिउ पवणु पइँ सायरु । जो सो णक्क-गाह - भयङ्करु ॥३॥
कच्छव - मच्छ - रच्छ - पुच्छाहउ । सुंसुमार-करि -मयर-सणाहउ ॥४॥
जोयण-सयइँ सत्त जसु वित्थरु । णिच्च णिरोउ जेम अइ दुत्तरु ॥५॥
एक्कु महोवहि दुप्पइसारो । अण्णु वि आसाली-पायारो ॥६॥
सो सव्वहुँ दुलङ्घु संसारु व । मणुयहुँ विसमउ पच्चाहारु व ॥७॥
तहोँ पविमलु परिरक्खिय-हरिसउ । वज्जाउहु वज्जाउह - सरिसउ ॥८॥
अण्णु महाहवेँ विप्फुरियाहरि । केम परज्जिय लङ्कासुन्दरि ॥९॥

घत्ता

आयइँ सव्वइँ परिहरेंवि तुहुँ लङ्का-णयरि पइट्ठु किह ।
अह वि कम्मइँ णिद्दलेंवि वर-सिद्धि-महापुरि सिद्धु जिह' ॥१०॥

[५]

तं णिसुणेंवि वयणु महग्घविउ विहसेप्पिणु अंजणेउ चविउ ।
'परमेसरि अज्ज वि सत्थि तउ आयेंहिँ वज्जाउहु समरें हउ ॥१॥

पर वास्तवमें वह विद्याधरी थी। बादमें वह किलकारी मारकर हमारे ऊपर ही दौड़ी। परन्तु (कुमार लक्ष्मणकी) तलवार सूर्यहास देखकर वह वैसे ही एकदम त्रस्त हो उठी मानो व्याध के तीरोंसे आहत कुरंगी हो। एक ओर विद्याधरने सिंहनाद किया, और इस प्रकार मेरा अपहरणकर मुझे रामसे अलग कर दिया। फिर लक्ष्मण कहाँ राम कहाँ, और कहाँ यह दूतकार्य ! जान पड़ता है, कोई छलसे मेरा प्रियकर मेरा मन थाहना चाहता है ॥ १-१०॥

[४] अच्छा, मैं तबतक इससे कुछ कौतुक करती हूँ। देखूँ, यह क्या उत्तर देता है। (अपने मनमें यह सोचकर) सीतादेवी ने पूछा—"अरे मनुष्य होकर भी तुम इतने समर्थ हो ? आखिर तुमने लवण-समुद्र कैसे पार किया ? यदि तुम निःसन्देह रामके दूत हो तो तुमने समुद्र कैसे पार किया। हे वत्स ! वह (समुद्र) मगर और ग्राहों से भयंकर है, कच्छप, मच्छ और दक्षसे युक्त है। शिशुमारों, हाथियों और और मगरोंसे भरा हुआ है, सात सौ योजनके विस्तारवाला नित्यनिगोदकी भाँति दुस्तर है। एक तो उसमें प्रवेश करना वैसे ही कठिन है, और फिर उसपर आसाली विद्या का परकोटा है। सचमुच ही, वह सारे संसारकी तरह, या अपंडितके लिए विषम प्रत्याहारकी तरह अलंघ्य है। इतनेपर भी उसका रक्षक, इन्द्रके समान, हर्षोत्फुल्ल वज्रायुध है। और तुमने युद्धमें कम्पिताधरा लंकासुन्दरीको किस प्रकार पराजित किया ? इन सबसे बचकर, तुम उसी प्रकार लंकानगरी में प्रविष्ट हो गये, जिस प्रकार सिद्ध सिद्धपुरीमें प्रवेश करते हैं ॥१-१०॥

[५] इन बहुमूल्य वचनोंको सुनकर हनुमानने हँसकर कहा, "हे परमेश्वरी! क्या अब भी आपको सन्देह है ? मैंने युद्ध में वज्रा-

आवेहिँ वसिकिय लङ्कासुन्दरि । लइय सा वि कुमारेँ ण कुमारि ॥२॥
णिहयासालि महोवहि लङ्घिउ । पुव्वहिँ रावणो वि आसङ्किउ ॥३॥
एव वि जइ ण देवि पत्तिज्जहि । तो राहव-सङ्केउ सुणेज्जहि ॥४॥
जइयहुँ वण-वासहों णीसरियइँ । दसउर-कुव्वर-पुर पइसरियइँ ॥५॥
णम्मय विञ्झु तावि अहिणाणइँ । अरुणगाम-रामउरि-पयाणइँ ॥६॥
जयउर-णन्दावत्त-णिवाणइँ । खेमञ्जलि-वंसत्थल-थाणइँ ॥७॥
गुत्त-सुगुत्त-जडाइ-णिवेसइँ । खग्गु सम्बु चन्दणहि पएसइँ ॥८॥
खर-दूसण-सङ्गाम-पवञ्चइँ । तिसिरय-रण-चरियाइँ वइचइँ ॥९॥

घत्ता

एयइँ चिन्धइँ पायडइँ अवराइ मि कियइँ जाइँ सुलइँ ।
काइँ ण पइँ अणुहूआइँ अवलोयणि सीहणाय-फलइँ ॥१०॥

[६]

सुणि जिह जडाइ संघारियउ रणेँ रयणकेसि विद्धारियउ ।
सहसगइ सरेहिँ णियारियउ सुग्गीउ रज्जेँ वइसारियउ' ॥१॥
तं णिसुणेवि सीय परिओसिय । 'साहु साहु भो' एम पघोसिय ॥२॥
'सुहड-सरीर-धीर-बल-भद्दहों । सच्चउ चिन्धु होहि वलद्दहों' ॥३॥
पुणु पुणु एम पसंस करन्तिएँ । परिहिउ अङ्गुत्थलउ तुरन्तिएँ ॥४॥
रेहइ करयल-कमलाइद्धउ । णं महुअरु मयरन्द-पइद्धउ ॥५॥
ताव चउत्थउ पहरु समाहउ । लङ्कहिँ दिण्णु णाइँ जम-पडहउ ॥६॥

युधको मार गिराया है। लंकासुन्दरी भी मेरे वशमें है, उसी प्रकार जिस प्रकार हथिनी हाथीके वशमें हो जाती है। आसाली (आसालिका) विद्याको भी मैंने नष्ट कर दिया है। और इस समय मैं रावणका सामना करनेमें समर्थ हूँ। इतने पर भी आपको विश्वास न हो रहा हो तो मैं राघवके दूसरे-दूसरे संकेतोंको बताता हूँ आप सुनिए। जब राम वनवासके लिए निकले तो वे दशपुर और नलकूबरके नगरमें प्रविष्ट हुए। नर्मदा विंध्याचल (होते हुए) और ताप्ती नदीमें स्नान करके उन्होंने सबेरे रामपुरी नगरीके लिए प्रस्थान किया। जयपुर और नंद्यावर्त नगरको उन्होंने नष्ट किया। क्षेमञ्जलि और वंशस्थल स्थानोंका अव-लोकन किया। फिर गुप्त-सुगुप्त और जटायुका संनिवेश, सूर्यहास खंग, शम्बूक कुमार और चंद्रनखाका क्रोध, खरदूषण संग्रामकी प्रवंचना, त्रिशिराका रण-चरित्र, तथा दूसरे-दूसरे दैत्योंके भी। ये तो उनकी पहचान की स्वाभाविक बातें हैं। निशाचरोंने और भी दूसरे-दूसरे छल किये हैं। क्या आपको अवलोकिनी विद्या, और सिंहनादके फलोंका पता नहीं है? ॥१-१०॥

[६] सुनिए, जिस प्रकार जटायुका संहार हुआ और विद्याधर रत्नकेशी पराजित हुआ। सहस्रगति तीरोंसे छिन्न-भिन्न हो गया। सुग्रीव राजगद्दीपर बैठाया गया।" यह सुनकर सीतादेवी को संतोष और विश्वास हो गया। उन्होंने कहा, "साधु-साधु, निश्चय ही तुम सुभट-शरीर वीर रामके अनुचर हो।" बार-बार इस प्रकार हनुमानकी प्रशंसा करके सीता देवीने वह अंगूठी अपनी उँगलीमें पहन ली। करकमलमें लिपटी हुई वह ऐसी जान पड़ रही थी मानो मधुकर ही परागमें प्रविष्ट हो गया हो। इतनेमें चौथे पहरका इस प्रकार अन्त हो गया कि मानो लंकामें यमका

णाइँ पघोसइ 'अहो अहो लोयहो । धम्मु करहो धण-रिद्धि म जोयहो ॥७॥
सच्चु चवहो पर-दव्वु म हिंसहो । जें चुक्कहो तहो बहुवस-महिसहो ॥८॥
पर-तिय मज्जु मंसु महु वज्जहो । जें चुक्कहो संसार-पवज्जहो ॥९॥

घत्ता

मं जाणेज्जहो पहरु गउ जमरायहो केरउ आण-करु ।
तिक्खेंहिँ णाडि-कुढारएँहिँ दिवेँ दिवेँ छिन्देवउ आउ-तरु' ॥१०॥

[७]

णं पुणु वि पघोसइ घडिय-संकु 'हउँ तुम्हहुँ गुरु उवएस-करु ।
जग्गहो जग्गहो केत्तिउ सुअहो मच्छरु अहिमाणु माणु मुअहो ॥१॥
किण णियच्छहो आउ गलन्तउ । णाडि-पमाणेंहिँ परिमिज्जन्तउ ॥२॥
अट्ठारह-सय-सड्ढ-पवासेंहिँ । सिद्धेंहिँ सड्ढसिएँहिँ ऊसासेंहिँ ॥३॥
णाडि-पमाणु पगासिउ एहउ । तिहिँ णाडिहिँ मुहुत्तु तं केहउ ॥४॥
सत्त-सयाहिएहिँ ति-सहासेंहिँ । अण्णु वि तेहत्तरि-ऊसासेंहिँ ॥५॥
एक्कु मुहुत्त-पमाणु णिबद्धउ । दु-मुहुत्तेंहिँ पहरद्धु पसिद्धउ ॥६॥
पहरद्धु वि सत्तद्ध-सहासेंहिँ । अण्णु वि छायालेंहिँ ऊसासेंहिँ ॥७॥
विहिँ अद्धेंहिँ दिणद्धहो अद्धउ । चाणवइ-ऊसासेंहिँ बद्धउ ॥८॥
अण्णु वि पण्णारहहिँ सहासेंहिँ । पहरु पगासिउ सोलह-णिचासेंहिँ ॥९॥

घत्ता

णासिहेँ णाडिहेँ कुम्भु गउ चउसट्ठिहिँ कुम्भेंहिँ रत्ति-दिणु' ।
एत्तिउ छिज्जइ आउ-बलु तें कज्जें थुव्वइ परम-जिणु' ॥१०॥

डंका पिट गया हो, मानो वह यह घोषणा कर रहा था कि अरे लोगो, धर्मका अनुष्ठान करो, दूसरोंकी ऋद्धिका विचार मत करो, सत्य बोलो, दूसरेके धनका अपहरण मत करो। यदि तुम यम-महिषसे बचना चाहते हो तो मद्य, मांस और मधुसे बचते रहो। यदि तुम संसारकी प्रवंचनासे छूटना चाहते हो तो यह मत समझो कि यमराजका आज्ञाकारी एक प्रहर चला गया, अपितु तीसी नाड़ी रूपी कुठारोंसे दिन-प्रतिदिन आयु रूपी वृक्ष छिन्न हो रहा है ॥१-१०॥

[७] मानो घटिका बार-बार अपने स्वरमें यही कहती है कि मैं तुम्हें उपदेश कर रही हूँ। जागो-जागो कितना सोते हो! मत्सर, अभिमान और मानको छोड़ो। अपनी गलती हुई आयुको नहीं देख रहे हो! आयु इन नाड़ियोंके प्रमाणमें परिमित कर दी गई है। एक हजार आठसौ छियासी उच्छ्‌वासोंके बराबर एक नाड़ी होती है। नाड़ीका यही प्रमाण है। फिर दो नाड़ियाँ एक मुहूर्त जितने प्रमाण होती हैं। तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्‌वासोंका प्रमाण होता है। एक मुहूर्तका परिमाण बता दिया। दो मुहूर्तोंका आधा प्रहर प्रसिद्ध है। वह भी सात हजार पाँचसौ छयालीस उच्छ्‌वासोंके बराबर होता है। दो आधे प्रहरों से दिनके आधेके आधा भाग होता है। सुखनिवास रूप वह पन्द्रह हजार बानबे उच्छ्‌वासोंके बराबर होता है। इस प्रकार हमने एक प्रहर प्रकट किया। और इसी तरह नाड़ी-नाड़ीसे घड़ी बनती है। और चौसठ घड़ियोंसे एक दिनरात बनता है। आयुकी शक्ति इसी तरह क्षीण होती रहती है इसीलिए जिन-भगवान् की स्तुति की जाती है।

[८]

णिसि-पहरें चउत्थएँ साहियएँ णं जग कवाडेँ उग्घाडियएँ ।
तहिँ तेहएँ कालेँ पगासियउ तियडएँ सिविणउ विण्णासियउ ॥१॥
'हलेँ हलेँ लवलिएँ लइएँ लवङ्गिएँ । सुमणेँ सुबुद्धिएँ तारेँ तरङ्गिएँ ॥२॥
हलेँ कङ्कोलिएँ कुवलय-लोयणेँ । हलेँ गन्धारि गोरि गोरोयणेँ ॥३॥
हलेँ [illegible] जाउ[illegible] । हलेँ हयमुहि मयमुहि [illegible]णि ॥४॥
सिविणउ अज्जु माएँ मइँ दिट्ठउ । एक्कु जोहु उज्जाणेँ पइट्ठउ ॥५॥
तरु तरु सव्वु तेण आकरिसिउ । चउँ जिह वण-भङ्गु पदरिसिउ ॥६॥
सो वि णिबद्धउ इन्दइ-राएँ । पाव-पिण्डु णं गरुअ-कसाएँ ॥७॥
पट्टणें पइसारिउ वेढेप्पिणु । गउ दससिर-सिरेँ पाउ थवेप्पिणु ॥८॥
पुणु सीवस्सरेँ हरिसिय-गत्तें । किउ घर-भङ्गु णाइँ दुक्कलत्तें ॥९॥

घत्ता

तावऽण्णेकेँ णरवरेण सुरवहुअ-सुहासिय-थोरणिय ।
उप्पाडेप्पिणु उवहि-जलेँ आवट्टिय लङ्क स-तोरणिय ॥१०॥

[९]

तं वयणु सुणेँवि तियडहेँ तणउ तहिँ एक्कहेँ मणेँ पच्छावणउ ।
'हलेँ चङ्गउ सिविणउ दिट्ठु पइँ रावणहोँ कहेवउ गम्पि मइँ ॥१॥
एउ जं दिट्ठु मणोहरु उववणु । तं वइदेहिहेँ केरउ जोव्वणु ॥२॥
णिद्दरमलिउ जेण सो रावणु । जो णिबद्धु सो लक्खु भयावणु ॥३॥
जो दहगीवहोँ उवरि पधाइउ । सो णिम्मलु जसु कहिमि ण माइउ ॥४॥
जं पुरइँ - जयघरु विद्धंसिउ । तं पर-बलु दहमुहेँण विणासिउ ॥५॥
जं परिमिय लङ्क रयणायरें । सा मिलिहिय पइसारिय सिरिहरें ॥६॥

[८] रातका चौथा प्रहर ताड़ित होनेपर (ऐसा लगा) मानो जगके किवाड़ खुल गये हों। तब, इसी प्रभातवेलामें त्रिजटाने रातमें देखा हुआ अपना सपना बताया। उसने कहा कि हला हला, सखि लवली, लता, लवंगी, सुमना, सुबुद्धि, तारा, तरंगी हला, कक्कोली, कुवलयलोचना, गन्धारी, गौरी, गोरोचना, विद्युत्प्रभा, ज्वालामालिनी, हला अश्वमुखी, राजमुखी, कंकालिनी, आज मैंने एक सपना देखा है कि एक योधा अपने उद्यानमें घुस आया है और उसने (उसके) एक-एक पेड़को नष्ट कर दिया है। वज्रकी भाँति उसने वन-विनाशका प्रदर्शन किया है। तब इन्द्रजीतने उसे उसी प्रकार पकड़कर बाँध लिया जिस प्रकार गुरुतर कषायें पापपिण्ड जीवको बाँध लेती हैं। उसे घेरकर नगरमें प्रविष्ट किया। परन्तु वह दशाननके मस्तकपर पैर रखकर चला गया। थोड़ी ही देरके बाद हर्षितशरीर उसने कुकलत्र की तरह घरका नाश कर डाला। इतनेमें एक और नरश्रेष्ठने सुरवधुओंकी शोभाका अपहरण करनेवाली लङ्कानगरीको तोरणसहित उखाड़कर समुद्रमें फेंक दिया॥१-१०॥

[९] त्रिजटाके वचन सुनकर एक (सखी) के मनमें बधाई की बात उठी और उसने कहा, "हला सखी! तुमने बहुत बढ़िया सपना देखा है, मैं जाकर रावणको बताऊँगी। यह जो तुमने सुन्दर उद्यान देखा है वह सीताका यौवन है और जिसने उसका दलन किया है वह रावण है, जो बाँधा गया वह भयानक शत्रु है, और जो रावणके ऊपर दौड़ा वह ऐसा निर्मल यश है कि जो कहीं भी नहीं समा सका। और जो पृथ्वीका जयघर ध्वस्त हुआ वह रावणने ही शत्रु-सेनाका संहार किया। और जो लङ्कानगरीको समुद्रमें प्रक्षिप्त किया गया, वह सीताको ही श्रीगृहमें प्रवेश कराया

तं णिसुणेंवि अण्णेक्क पवोल्लिय । गग्गर - वयणी अंसु- जलोल्लिय ॥७॥
'अवसें सिविणउ होइ असुन्दरु । जहिँ पडिवक्खहोँ पक्खिउ सुन्दरु ॥८॥
मुणिवर-भासिउ दुक्कु पमाणहोँ । जिह लङ्कहेँ विणासु उज्जाणहोँ ॥९॥

घत्ता

एहु सिविणउ सीयहेँ सहलु जसु रामहोँ वि जउ जणद्दणहोँ ।
सहुँ परिवारें सहुँ वलेंण खय - कालु पढुक्कु दसाणणहोँ' ॥१०॥

[१०]

तहिँ अवसरेँ पीण - पओहरिएँ अणुमाणें लङ्कासुन्दरिएँ ।
हर - अहरउ विण्णि मि पेसियउ हणुवन्तहोँ पासु गवेसियउ ॥१॥
जहिँ उज्जाणेँ परिट्ठिउ पावणि । सयलु- णरिन्द- सिरग्ग-चूडामणि ॥२॥
तहिँ संपत्तउ विण्णि वि जुवइउ । णं सिव-सासणेँ सासय-सुगइउ ॥३॥
णं समदयउ जिणागमेँ दिट्ठउ । जयकारेप्पिणु पासें णिविट्ठउ ॥४॥
तेण वि ताहिँ समउ पिउ अप्पेंवि । कण्ठउ कड्ढा-दामु समप्पेंवि ॥५॥
पुणु विण्णत्त हल्लीस-मणोहरि । 'भोअणु तुम्ह केम परमेसरि' ॥६॥
अक्खइ सीय समीरण-पुत्तहोँ । 'वासर एक्कवीस महुँ भुत्तहोँ ॥७॥
जाम ण पत्त पत्त भत्तारहोँ । ताम णिवित्ति मज्झु आहारहोँ ॥८॥
अज्जु णवर परिपुण्ण मणोरह । तं जें भोज्जु जं सुअ रामहोँ कह' ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि पवणहोँ सुएँण अवलोइउ मुहु अहरहँ तणउ ।
'अप्पिणु अक्खु विहीसणहोँ सुच्चइ सीयहेँ करि पारणउ ॥१०॥

गया है।" यह सब सुनकर एक और दूसरी सखी अपनी आंखोंमें आंसू भरकर गद्‌गद स्वरमें बोली, "अवश्य ही यह सपना असुन्दर होगा। इसमें प्रतिपक्षका पक्ष ही सुन्दर होगा। मुनिवरका कहा सच होना चाहता है। उद्यानके विनाशकी तरह लंकाका विनाश होगा। यह सपना सीतादेवीके लिए सफल है क्योंकि इसमें राम का यश और लक्ष्मणकी विजय निश्चित है। अब रावणका, अपने परिवार और सेनासहित क्षयकाल ही आ पहुंचा है ॥१-१०॥

[१०] ठीक इसी अवसरपर पीनपयोधरोंवाली लंका-सुन्दरीने हनुमानका पता लगानेके लिए इरा और अचिराको भेजा। समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ हनुमान जिस उद्यानमें घुसा हुआ था वे दोनों भी इस प्रकार वहां पहुंचीं मानो शिवस्थानमें सुगति और तपश्री पहुंच गई हों, या मानो जिनागममें क्षमा-दया देखी गई हों। हनुमानने उन दोनोंके साथ प्रिय आलापकर उन्हें कण्ठा और कांचीदाम दिया। और फिर उसने रामकी पत्नी सीतादेवी से पूछा, "हे परमेश्वरी! आपका भोजन किस प्रकार होगा।" यह सुनकर सीतादेवीने हनुमानको बताया कि मुझे भोजन किये हुए इक्कीस दिन व्यतीत हो गये। मेरी भोजनसे तब तकके लिए निवृत्ति है कि जब तक मुझे अपने पतिके समाचार नहीं मिलते। किन्तु केवल आज मेरा मनोरथ पूरा हुआ। और यही मेरा भोजन है कि मैंने रामकथा सुन ली।

घत्ता—यह सुनकर हनुमान ने अचिरा का मुख देखा और (कहा), "जाकर विभीषण से सीता के भोजन के लिए कहो।"

[११]

इयरें गुहु मि आहि परमेसरिहिँ तं मन्दिरु लक्खासुन्दरिहिँ ।
लइ भोयणु आणहि मणहरउ जं स-रसु स-णेहउ जिह सुरउ' ॥१॥
तं णिसुणेवि बे वि संचल्लिउ । णं सुरसरि-जउणउ उत्थल्लिउ ॥२॥
रहु मग्गु लहु लेविणु आयउ । णं सरसइ-लच्छिउ विक्खायउ ॥३॥
वड्डिउ भोयणु भोयण-सेज्जएँ । अच्छएँ पच्छएँ लग्गएँ पेज्जएँ ॥४॥
सक्कर-खण्डेंहिं पायस-पयसेंहिं । लड्डुव-लावण-गुल-इक्खुरसेंहिं ॥५॥
मण्डा - सोयवत्ति - घियऊरेंहिं । मुग्ग - सुअ - णाणाविह - कूरेंहिं ॥६॥
सालणएँहिं बहु-विविह-विचित्तेंहिं । माहणि-मायन्देंहिं चिंचित्तेंहिं ॥७॥
अल्लय - पिप्पलि - मिरियालएँहिं । लावण-मालूरेंहिं कोमलएँहिं ॥८॥
चिब्भिडिया - कच्चोर - वासुत्तेंहिं । पेउअ - पप्पडेंहिं सु-पहुत्तेंहिं ॥९॥
केलय - णालिकेर - जम्बीरेंहिं । करमर - करवन्देंहिं कणीरेंहिं ॥१०॥
तिम्मणेंहिं णाणाविह-वण्णेंहिं । सालिव-मज्जिय - सहावण्णेंहिं ॥११॥
अण्णु मि खण्डसोल्ल-गुडसोल्लेंहिं । वड्डाइल्लणेंहिं कारेल्लेंहिं ॥१२॥
विअम्लेंहिं स-महिय-दहि-खीरेंहिं । सिहरिणि-धूमवत्ति- सोवीरेंहिं ॥१३॥

घत्ता

अच्छउ एउ (?) मुहरसिउ अवियण्हउ उल्हावणउ किह ।
जहिँ जेँ लइज्जइ तहिँ जेँ तहिँ गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ॥१४॥

[१२]

तं तेहउ भुञ्जेँवि भोयणउ पुणु करेँवि वयण-पक्खालणउ ।
समलहेँवि अङ्गु वर-चन्दणेण विण्णत्त देवि मरु-णन्दणेण ॥१॥
'पहु अज्जु सणएँ खम्मेँ परमेसरि । णेमि तेत्थु जहिँ राहव-केसरि ॥२॥
मिलहोँ बे वि पूरन्तु मणोरह । फिट्टउ जणवएँ रामायण-कह' ॥३॥
तं णिसुणेवि देवि गज्जोल्लिय । साहुक्कारु करन्ति पजोल्लिय ॥४॥
'सुन्दर णिय-घरु गय-गुण-वड्डुयहेँ (?) एह ण णिति होइ कुल-वहुयहेँ ॥५॥

[११] इरा, तू भी शीघ्र परमेश्वरी लंकासुंदरी के घर जा और वहाँसे सुन्दर भोजन ले आ, ऐसा कि जो सुरतिके समान सरस और सस्नेह, और सुन्दर हो। यह सुनकर वे दोनों इस प्रकार चलीं मानो गंगा और यमुना ही उछल पड़ी हों। रँधा हुआ भात लेकर, वे आयीं। वे विख्यात सरस्वती और लक्ष्मीके समान जान पड़ती थीं। उन्होंने भोजनकी थालीमें सुन्दर चिकने पेयके साथ भोजन परोसा। शक्कर, खीर, दूध, लड्डू, नमक, गुड़, इक्षुरस, मिठाई, रस, सोयवत्ती (?), घेवर, मूँगकी दाल, तरह-तरहके कूर, विविध और विचित्र कढ़ी, विचित्र माइंद और माइंण फल, चिरमटा, कचोर, वासूल, पेउअ, पापड़, केला, नारियल, जम्बीर, करमर, करौंदा, करीर, तरह-तरहकी कढ़ी, खटामट्ठी साडिव भाजी तथा और भी खांड़ और खांड़का सोरबा, वड्डाइंगण, कारेल्ल, मही, दही और दूध सहित व्यञ्जन तथा बघारे हुए कांजीर और सौवीर उस भोजनमें थे। इस प्रकार, वह उल्लसित और मुँहमें मीठा लगने वाला भोजन था। जो भी जहाँ उसे खाता, वह जिनवरके वचनोंकी भांति मधुरतम मालूम होता था ॥१-१४॥

[१२] उस वैसे भोजनको कर सीता देवीने अपने मुखका प्रक्षालन किया। और उत्तम चन्दनके अवलेपके बाद हनुमानने सीतादेवीसे कहा, "माँ, [मेरे कन्धेपर चढ़ जाओ। मैं वहाँ ले जाऊँगा जहाँ श्री राघवसिंह हैं। वहाँ मिलनेसे दोनोंके मनोरथ पूरे हो जायँगे, और जनपदमें रामायणकी कथा भी फैल जायगी।" यह सुनकर सीतादेवी पुलकित हो उठीं। साधुवाद देकर उन्होंने हनुमानसे कहा, "गतगुण बहूके लिए इस तरह अपने घर जाना चाहे ठीक हो परन्तु कुलवधूके लिए यह नीति ठीक

गम्मइ वच्छ जइ वि णिव-कुलहरु । विणु भत्तारें गमणु असुन्दरु ॥६॥
जणवउ होइ दुगुञ्छण-सीलउ । खल-सहाउ णिय-चित्तें मइलउ ॥७॥
जहिँ जेँ अजुत्तु तहिँ जेँ आसङ्कइ । मणु रञ्जेँवि सक्को वि ण सक्कइ ॥८॥
णिहएँ दसाणणेँ जय-जय-सद्दें । मइँ आएवउ सहुँ बलहद्दें ॥९॥

घत्ता

जाहि वच्छ अक्खामि हउँ णिम्मल-दसरह-वंसुब्भवहोँ ।
लइ चूडामणि महु तणउ अहिणाणु समप्पहि राहवहोँ ॥१०॥

[१२]

अण्णु वि आलिङ्गेँवि गुण-घणउ सन्देसउ अक्खु महु तणउ ।
बल तुज्झु विओएँ जणय-सुय थिय सीह-विसेस ण कह वि मुअ ॥१॥
झीण मयङ्क-लेह गह-गाहिय व । झीण सुरिन्द-रिद्धि तव-रहिय व ॥२॥
झीण कुवेस-मज्झेँ वक्खाणि व । झीणाउसु-मुहेँ सुकइ-सुवाणि व ॥३॥
झीण दिवायर-दंसणेँ रत्ति व । झीण कु-जणवएँ जिणवर-भत्ति व ॥४॥
झीण दुभिक्खेँ अत्थ-संपत्ति व । झीण वुढत्तणेँ बल-सत्ति व ॥५॥
झीण चरित्त-विहूणहोँ कित्ति व । झीण कु-कुलहरेँ कुलवहु-चित्ति व ६॥
अण्णु वि दसरह-वंस-पगासहोँ । मच्छुत्थलेँ जय-लच्छि-णिवासहोँ ॥७॥
रणेँ दुव्वार-वइरि-विणिवारहोँ । तहोँ सन्देसउ देज्जि कुमारहोँ ॥८॥
सुणइ "पइँ होन्तेण पि लक्खण । अच्छइ सीय रुयन्ति अलक्खण ॥९॥

घत्ता

णउ देवेँहिँ णउ दाणवेँहिँ णउ रामें वइरि-वियारएँण ।
पर मारेव्वउ दहवयणु सइँ सुभ-जुअलेण तुहारएँण" ॥१०॥

नहीं। हे वत्स, अपने कुलघर भी जाना हो तो भी पतिके बिना जाना ठीक नहीं। फिर जनपदके लोग निन्दाशील होते हैं उनका स्वभाव दुष्ट और मन मलिन होता है। जहाँ जो बात अयुक्त होती है वे वहीं आशंका करने लगते हैं। उनके मनका रंजन इन्द्र भी नहीं कर सकता। इसलिए निशाचर दशाननका वध होनेपर 'जय जय शब्द' पूर्वक श्रीरामके साथ अपने जनपद जाऊँगी। हे वत्स ! तुम जाओ मैं यहीं हूँ। लो, यह मेरा चूड़ामणि। निर्मल दशरथकुल उत्पन्न श्रीरामको पहचान (प्रतीक) रूप में यह अर्पित कर देना ॥१-१०॥

[१३] और भी गुणधन, उनका आलिंगनकर मेरा यह संदेश कह देना, "हे राम, तुम्हारे वियोगमें सीता देवी रेख भर रह गई है। किसी प्रकार वह मरी भर नहीं, यही बहुत है। वह (मैं) राहुग्रस्त चन्द्रलेखाकी तरह क्षीण हो गई है। तपसे हीन इन्द्रकी ऋद्धिकी तरह क्षीण है। कुदेशमें निवास की तरह वह क्षीण है। मूर्खके मुंहमें कविकी सुवाणीकी तरह क्षीण है। सूर्यदर्शन होनेपर निशाकी तरह क्षीण है। कुजनपदमें जिनभक्तिकी तरह क्षीण है। दुर्भिक्षमें अर्थसम्पदाकी भाँति क्षीण है। वह चरित्रहीनकी कीर्तिकी तरह क्षीण है। खोटे घरमें कुलवधूकी तरह क्षीण है। युद्धमें दुर्वार वैरियोंको पराजित करनेवाले कुमार लक्ष्मण से भी मेरा यह सन्देश कह देना कि लक्ष्मण, तुम्हारे रहते हुए भी सीता देवी रो रही है। न तो देवोंसे, न दानवोंसे, और न वैरीविदारक रामसे रावणका का वध होगा। केवल तुम्हारे भुजयुगल से रावणका वध होगा ॥१-१०॥

[५१ एक्कवण्णासमो संधि]

तं चूडामणि लेवि गउ लच्छि-णिवासहों अक्खलिय-माणहों ।
णं सुर-करि कमलिणि-वणहों माइड़ वलिउ समुद्दु उज्जाणहों ॥

[१]

दुवई

विहुणेंवि वाहु-दण्ड परिचिन्तइ रिउ-जयलच्छि-मइप्फो ।
'ताम ण जामि अज्जु जाम ण रोसाविउ मइँ दसाणणो ॥१॥

वणु भञ्जमि रसमसकसमसन्तु । महिवीढ-गाढ चिरसोरसन्तु ॥२॥
णायउल - विउल - कुम्भल - वलन्तु । कक्खुक्खय-खर-सोणिएँ खलन्तु ॥३॥
णीसेस - दियन्तर - परिमलन्तु । कङ्केल्लि - वेल्लि-लवली- ललन्तु ॥४॥
गुञ्जन्त - भिङ्ग - गुमुगुमुगुमन्तु । तरु-लग्ग-भग्ग- दुमुदुमुदुमन्तु ॥५॥
एला - कक्कोलय - कडयडन्तु । वड-विडव-ताड-तडतडतडन्तु ॥६॥
करमर - करीर - कडकडयडन्तु । आसत्थ-वहित्थिय - थरहरन्तु ॥७॥
महुइ-महु सय-खण्ड जन्तु । ससयङ्कय-कुसुमामोय दिन्तु ॥८॥

घत्ता

उम्मूलन्तु असेस तरु एक्कु मुहुत्तु एत्थु परिसक्कमि ।
जोव्वणु जेम विलासिणिहेँ वणु दरमलमि अज्जु जिह सक्कमि' ॥९॥

[२]

दुवई

पुणरवि वारवार परिभमेंवि पियय-मणोज्ज सुन्दरो ।
पम्मुक्क-वण पइट्ठु णं माणस-सरवरें अमर-कुञ्जरो ॥१॥

णवरि उववणालए तेत्थु णिज्झाइयासोय-णारङ्ग-पुण्णाय-णाया लवङ्गा पियङ्गू-विडङ्गा समुत्तुङ्ग सत्तच्छया ॥२॥

करमर-करवन्द-रत्तन्दणा दाडिमी-देवदारू-हलिद्दी-भुआ दक्ख-रुद्दक्ख-पउ-मक्ख-अइमुत्तया ॥३॥

तरु तरल-तमाल-तालेल-कक्कोल-साला विसालञ्जणा वञ्जुला णिम्ब-सिन्दीउ सिन्दूर-मन्दार-कुन्देन्दु सज्जज्जुणा ॥४॥

इक्यावनवीं सन्धि

लक्ष्मी-निकेतन, अस्खलितमान हनुमान, सीतादेवीसे वह चूड़ामणि लेकर उस उद्यानसे वैसे ही चले जैसे कमल-वनसे ऐरावत हाथी जाता है।

[१] अपना बाहुदंड ठोकता हुआ, शत्रु की विजयलक्ष्मी का मर्दन करनेवाला वह सोचता है कि, मैं आज तब तक नहीं जाऊँगा कि अब तक रावण को क्रुद्ध नहीं करता। रसमसाता कसमसाता, विरस शब्द उत्पन्न करता हुआ, नागकुल विपुल शिरोमणियों को मोड़ता हुआ, पेड़ों के उखड़ने से हुए खड्डों में स्खलित होता हुआ, समस्त दिशांतरों को दलता हुआ, अशोक लता और लवलीलता से क्रीड़ा करता हुआ, ऊँचे आकारवाले, भौंरों से गुंजायमान, वृक्षों से लगे हुए भग्न द्रुमों को नष्ट करता हुआ, इलायची कक्केल लताओं को कड़कड़ाता हुआ, वटवृक्षों और ताड़वृक्षोंको तड़-तड़ तोड़ता हुआ, करमर करीर वृक्षों को कड़कड़ाता हुआ, अश्वत्थ और अगस्त वृक्षों को थरथराता हुआ, बलपूर्वक सौ-सौ टुकड़े करता हुआ, सप्तपर्णी पुष्पों का सौरभ लुटाता हुआ, कठोर महीरूपी पीठवाले वन को भग्न करूँगा। समस्त पेड़ों को उखाड़ता हुआ मैं एक मुहूर्त के लिए परिभ्रमण करता हूँ। विलासिनी के यौवन की तरह आज मैं इस वन का दलन करूँगा।"

[२] अपने मनमें बार-बार यह विचार करके सुन्दर हनुमान उस उपवनमें घुस गया। मानो ऐरावत महागज ही मान-सरोवर में घुसा हो। उपवनालयमें निष्यात, अशोक, नारंग, पुंनाग, नाग, लवंग, प्रियंगु, विडंग, समुत्तुंग सप्तच्छद, करमर, करवन्द, रक्त-चन्दन, दाड़िम, देवदारु, हल्दी, भूर्ज, दाख, रुद्राक्ष, पद्माक्ष, अति-मुक्त, तरल-तमाल, तालेल, कक्कोल, शाल, विशालांजन, मंजुल, निंब, सिंदीक, सिंदूर, मन्धार, कुन्देंद, ससर्ज, अर्जुन, सुरतरु, कदली

सुरतरु-कयली-कयम्बम्ब-जम्बीर-जम्बुम्बरा लिम्ब-कोसम्ब-कज्जूर-कप्पूर-ताऊर-
मालूर-भासत्थ-णग्गोहया ॥५॥
तिलय-वउल-चम्पया णायवेल्ली-वया पिप्पली पुप्फली पाडली केयई
माहवी मल्लिया माहुलिङ्गी-तरू ॥६॥
स-फणस-लवली-सिरीखण्ड-मन्दारक-सिल्हया पुत्तजीवा सिरीसेट्ठियारि-
ट्ठया कोज्जया जूहिया णालिकेरम्बई ॥७॥
हरिडइ-हरिया-लवङ्गचालल्लावअया पिक्कु-वन्धुक्क-कोरण्ट-चाणिक्क-वेणू-तिस-
ञ्झा-मिरी-अङ्कया कउभ-पिच्छा-महू ॥८॥
कण्णूर-कणियारि-सेल्लु-करीरा करञ्जामली-कक्कुणी-कञ्चणा एवमाइत्ति अण्णे
वि जे पायवा केण ते बुज्झिया ॥९॥

घत्ता

आयहुँ पवर-महद्दुमहुँ पट्ठिलउ पारियाउ आयामिउ ।
णं धरणिहेँ जेमणउ करु उप्पाडेप्पिणु णहयलेँ भामिउ ॥१०॥

[२]

दुवई

सुरतरु परिचिवेवि उम्मूलिउ पुणु णग्गोह-तरुवरो ।
आयामेँवि भुएहिँ दहवयणेँ जिह कइलास-गिरिवरो ॥१॥
कड्डिउ वर पायवु थरहरन्तु । णं वइरि रसायलेँ पइसरन्तु ॥२॥
णं णन्दण-वणहोँ रसन्तु ओड । णं धरणिहेँ बाहा-दण्डु बीउ ॥३॥
णं दहवयणहोँ अहिमाण-खम्भु । णं पुहइ-पसूयहो पवर-गब्भु ॥४॥
तुट्टन्त सयल-घण-मूल-जालु । पारोह-ललन्तु विसाल-डालु ॥५॥
आरत्त - पत्त - परिघोलमाणु । कप्पर - वर - परियम्मिज्जमाणु ॥६॥
कलयण्ठि - कलायाराव - मुहलु । णिम्मच्छरु वि सप्पुरिसो व्व सुहलु ॥७॥

घत्ता

सो सोहइ णग्गोह-तरु मारुय-सुय-भुयलट्ठिहिँ लइयउ ।
णावइ गरुडहुँ जउणहुँ वि मज्झेँ पयागु परिट्ठिउ तइयउ ॥८॥

कदम्ब, जम्बीर, जम्बुम्बर, लिम्ब, कोशम्भ, खजूर, कपूर, ताल्लूर, माल्लूर, अश्वत्थ, न्यग्रोध, तिलक, बकुल, चम्पक, नागवेल्ली, वया, पिप्पली, पुष्फली, पाटली, केतकी, माधवी, सफनस, लवली, श्रीखण्ड, मन्दागुरु, सिह्लिका, पुत्रजीव, सीरीष, हस्थिक, अरिष्ट, कोजय, जूही, नारिकेल, सई, हरड, हरिताल, कपाल, लावञ्जय, पिक्क, बन्धूक, कोरन्द, वाणिक्ष, वेणु, तिसञ्झा, मिर्री, अल्लका, ढौक, चिञ्चा, मधू, कनेर, कणियारी, सेल्लू, करीर, करञ्ज, अमली, कंगुनी, कंचना इत्यादि तथा और भी बहुतसे वृक्ष थे जिन्हें कौन समझ गिना सकता है। उन सब बड़े-बड़े वृक्षोंमें सबसे पहले पारिजात वृक्ष था। उसने उसको, धरतीके यौवनकी तरह, उखाड़कर आकाशमें घुमा दिया ॥१-१०॥

[३] पारिजातको फेंककर उसने उस वृक्षको उखाड़ा, और अपने बाहुओंसे उसे वैसे ही झुका दिया जैसे रावणने कैलाश पर्वतको झुका दिया था। थर्राते हुए उस वट वृक्ष को उसने इस प्रकार (धरतीसे) खींचा मानो पातालमें कोई शत्रु प्रवेश कर रहा हो या मानो वह, नंदनवनकी मुखर जिह्वा हो, या मानो धरतीका दूसरा बाहुदंड हो, मानो रावण का अभिमानस्तंभ हो या मानो प्रसूतवती धरती का विशाल गर्भ हो। (आघातसे) उस महावृक्षकी जड़ोंका समूचा घनीभूत जाल छिन्न-भिन्न हो गया। प्रारोह टूट-फूट गये। विशाल शाखाएँ भग्न हो उठीं। लाल-लाल पत्तियाँ बिखर गईं। ढँढर (राक्षस) और पक्षी कलरव करने लगे। कोयलोंके आलापसे वह गूँज उठा। झुका हुआ वह वट वृक्ष सज्जनकी भाँति सुखद प्रतीत हो रहा था। हनुमानकी भुजलताओंसे गृहीत वह वटवृक्ष ऐसा मालूम हो रहा था मानो गंगा और यमुनाके बीचमें यह तीसरा प्रयाग हो हो ॥१-८॥

[४]

दुवई

मड-पायवु भिन्देवि उम्मूलिउ पुणु कङ्केलि-तरुवरो ।
उभय-करेहिँ लेवि णं बाहुबलिन्दें भरह-णरवरो ॥१॥

आरत्त - पत्त - पल्लव-ललन्तु । कामिणि-करकमलहुँ अणुहरन्तु ॥२॥
उब्भिण्ण-कुसुम - गोच्छुच्छलन्तु । णं महिहेँ सासण-चाविउ देन्तु ॥३॥
पञ्चरिय - चारु - चुम्बिज्जमाणु । बहुविह - विहङ्ग - सेविज्जमाणु ॥४॥
कङ्केल्लि-तरुहु इय-गुण-विचित्तु । णं दहमुह-माणु मलेवि घित्तु ॥५॥
पुणु लइउ णाय-चम्पउ करेण । णं दिस-पायवु दिस-कुञ्जरेण ॥६॥
उम्मूलिउ गयणहोँ अणुहरन्तु । अलि-जोइस - चक्क - परिब्भमन्तु ॥७॥
णव-पल्लव-राहु-विक्खिण्ण-पयरु । उब्भिण्ण-कुसुम - णक्खत्त-णियरु ॥८॥
सो चम्पउ गयणङ्गण समग्गु । दहवयण-मडप्फरु णाइँ भग्गु ॥९॥

घत्ता

चम्पय-पायवु परिघिवेँवि कङ्किल्लय वउल-तिलय महि ताडेँवि ।
गयउ मत्त-गइन्दु जिह बे आलाण-खम्भ उप्पाडेँवि ॥१०॥

[५]

दुवई

चम्पय-तिलय-वउल-कप्पपायव-सुरतरु भग्ग जावेँहिँ ।
पउरुज्जाणपाल संपाइय गलगज्जन्त तावेँहिँ ॥१॥

हक्कारेंवि पर-बल-बल-गलत्थु । दाढालि धाइय लउडि-हत्थु ॥२॥
जो उत्तर-बारहोँ रक्खवालु । जो पसरिय-जस-भुवणन्तरालु ॥३॥
जो णिग्गम्ब - गय - मय-मरट्टु । पडिवक्ख-सलणु असखलिय मरट्टु ॥४॥

[४] वटवृक्षको फेंककर, तब हनुमानने कंकेली वृक्ष उखाड़ लिया, और उसे अपने दोनों हाथोंमें इस प्रकार ले लिया मानो बाहुबलिने भरतको ही उठा लिया हो। लाल-लाल पल्लव और पत्तोंसे शोभित वह वृक्ष कामिनीके करकमलोंकी भाँति दिखाई दे रहा था, खिले हुए फूलोंके गुच्छोंसे वह ऐसा लग रहा था मानो धरतीको केशरका अवलेप किया जा रहा हो, वह अशोक वृक्ष तरह-तरहके पक्षियोंसे सेवित हो रहा था। ऐसे गुणोंसे सहित उस अशोक वृक्षको हनुमानने मानो रावणका मान दलन करनेके लिए ही उखाड़कर फेंक दिया। फिर उसने नाग चम्पक वृक्ष अपने हाथमें लिया, वैसे ही जैसे दिग्गजने दिशावृक्षको ले लिया हो। वह वृक्ष आकाशके अनुरूप प्रतीत हो रहा था। (आकाशकी भाँति) वह भ्रमर रूपी ज्योतिषचक्रसे गतिशील था, और नये पल्लवोंके ग्रहसमूहसे व्याप्त था। खिले हुए सुमन ही उसका नक्षत्र मंडल था। गगनांगणमें व्याप्त उस वृक्षको रावणके अभिमानकी भाँति भग्न कर दिया। इसी प्रकार चंपक वृक्षको फेंककर, बकुल और तिलक वृक्षोंको खींचकर उसने धरतीको ताड़ित किया। (उस समय) वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मदोन्मत्त महागजने अपने दोनों आलानस्तंभोंको उखाड़ दिया हो ॥१-१०॥

[५] चम्पक, तिलक, बकुल, वटपादप और पारिजातको जब हनुमानने भग्न कर दिया तो चार उद्यानपाल गरजते हुए सहसा उसकी ओर दौड़े। सबसे पहले शत्रुसेनाके बलको चूर करनेवाला दंष्ट्रावलि हाथमें गदा लेकर दौड़ा। वह उत्तर द्वारका रक्षक था, और उसका यश भुवन भरमें प्रसिद्ध था। मदमाते गजोंको मसल देनेवाला और शत्रुपक्षमें हलचल उत्पन्न करनेवाला

सो हणुवहों भिडिउ पलम्ब-बाहु । णं गङ्गा-वाहहों जउण-वाहु ॥५॥
जो तेण पमेल्लिउ लउडि-दण्डु । सो भग्गु वि गउ सय-खण्ड-खण्डु ॥६॥
सिरिसइलु वि पहसिउ पुलइयङ्गु । वण-भञ्जहों दीसइ [illegible] ॥७॥
दरिसावमि एम चवन्तएण । उम्मूलिउ तालु तुरन्तएण ॥८॥
कु-जणु व सुर-भायणु थड्ढ-भाउ । दूर-हलउ अप्पणु वि दुप्पणाउ ॥९॥

घत्ता

तेण णिसायरु आहयणेँ आयामेवि समाहउ तालेँ ।
पडिउ घुलेप्पिणु धरणियलेँ वाहउ वेसु णाइँ मुक्कालेँ ॥१०॥

[६]

दुवई

जं हणुवेण णिहउ समरङ्गणेँ दाढावलि स-मच्छरो ।
धाइउ पुप्फदन्तु गलगज्जेँवि णं गयवरहों गयवरो ॥१॥
जो पुप्फ-वारेँ वण-रक्खवालु । संपाइउ णं खय-कालेँ कालु ॥२॥
दिढ-कढिण-देहु थिर-थोर-हत्थु । पर-बल-पओलि-भेल्लण-समत्थु ॥३॥
आयामेँवि सत्ति पमुक्क तेण । णं सरि सायरहों महाहरेण ॥४॥
सा सामीरणिहेँ परायणत्थ । असइ व सप्पुरिसहों अकियत्थ ॥५॥
हणुवेण वि रणउहेँ दुण्णिरिक्खु । उप्पाडिउ वर-साहारु रुक्खु ॥६॥
कामिणि-मुह-कुहरहों अणुहरन्तु । परिपक्क-फलाहरु कुसुम-दन्तु ॥७॥
णव-पल्लव-जीहा-लवलवन्तु । कलयण्ठि-कण्ठ-महुरुल्लवन्तु ॥८॥
वहुकम्म-वियारु व दल-णिवेसु । पच्चुण्ण-परिट्ठिय-रसविसेसु ॥९॥

वह स्वयं अस्खलितमान था। विशालबाहु वह आकर, हनुमानसे इस प्रकार भिड़ गया मानो गंगाके प्रवाहसे यमुनाका प्रवाह टकरा गया हो। परंतु उसने हनुमान पर जो गदा फेंकी, वह टूटकर सौ-सौ टुकड़े हो गयी। (यह देखकर) हनुमान पुलकपूर्वक हँस पड़ा और यह कहकर कि वनभंगके बाद अब सुभट-विनाश दिखाऊँगा, उसने तुरन्त तालवृक्षको उखाड़ लिया। वह वृक्ष कुजनकी तरह 'सुर-भाजन (मदिरा और देवत्वका पात्र) दृढ़भाव, दूरफल (दुष्टसे कोई फल नहीं मिलता और तालवृक्षका भी फल नहीं होता) और बड़े कष्टसे झुकाने योग्य था। ऐसे उस ताड़वृक्षसे हनुमानने उस राक्षसको भी युद्धमें आहत कर दिया। धरतीपर गिरकर वह वैसे ही बिखर गया जैसे दुष्कालसे ग्रस्त देश नष्ट-भ्रष्ट हो उठता है ॥१-१०॥

[६] जब हनुमानने मत्सरसे भरे दंष्ट्रावलिको इस प्रकार युद्धमें नष्ट कर दिया, तो एकदंत गरजकर उठा और उसपर ऐसे दौड़ा मानो गजवरके ऊपर गजवर ही दौड़ा हो। वह पूर्वद्वारका रक्षक था। (वह ऐसा आया) मानो क्षयकाल ही आया हो। उसकी देह दृढ़ और कठिन थी। वह शत्रुसेनाका प्राचीर तोड़नेमें समर्थ था। उसने अपनी शक्तिको नमितकर उसे हनुमानपर ऐसे छोड़ा मानो पर्वतने समुद्रमें नदी प्रक्षिप्त की हो। तब युद्ध-मुख और दुर्दर्शनीय हनुमानने उत्तम साहार वृक्ष उखाड़ लिया। वह वृक्ष कामिनीके मुखकुहरके समान था, खूब पके हुए फल ही उसके अधर थे, कुसुम दाँत थे, नवपल्लव ही लपलपाती जिह्वा थी, कोकिल कलरव ही उसकी मधुर तान थी। महाकविके काव्यकी तरह वह वृक्ष दलविशेष (शब्दरचना और पत्तियों) से युक्त तथा प्रच्छन्न रसविशेषसे पूर्ण था। हनुमानके करसे मुक्त उस

घत्ता

मारुइ-कर-पम्मुक्कएँ ण तेण · पवर-कप्पद्दुम-घाएँ ।
एक्कदन्तु घुम्मन्तु रणेँ पाडिउ रुक्खु जेम दुव्वाएँ ॥१०॥

[७]

दुवई

ताम कयन्तवक्कु आहवेँ असक्कु सक्क-सम-चलो ।
हत्थि व गिल्ल-गण्डु तियसहुँ पचण्डु कोदण्ड-करयलो ॥१॥
जो दाहिण - बारहोँ रक्खपालु । कोक्कन्तु पधाइउ मुह - करालु ॥२॥
'वणु भञ्जेँवि कहिँ हणुवन्त जाहि । लइ पहरणु अहिमुहु थाहि थाहि ॥३॥
जिह हउ दाढावलि उत्थरन्तु । अण्णु वि विणिवाइउ एक्कदन्तु ॥४॥
तिह पहरु पहरु भो पवणजाय । दहवयणहोँ केरा कुद्ध पाय' ॥५॥
पच्चारेँवि पावणि धणुधरेण । विहिँ सरेँहिँ भिन्दु रणेँ दुद्धरेण ॥६॥
परिअञ्चेंवि णिवडिय पुरउ तासु । णमि-विणमि व पढम-जिणेसरासु ॥७॥
एत्थन्तरेँ रणेँ णीसन्दणेण । आरुट्ठेँ पवणहोँ णन्दणेण ॥८॥
आयामेँवि उम्मूलिउ तमालु । णं दिणयरेण तम-तिमिर-जालु ॥९॥

घत्ता

उभय-करेँहिँ मामेवि तरु पहउ कयन्तवक्कु हणु-दारेँ ।
विहलङ्घलु घुम्मन्त-तणु गिरि व पलोट्टिउ कुलिस-पहारेँ ॥१०॥

[८]

दुवई

णिहएँ कयन्तवक्केँ अण्णेक्कु णिसायरु भय-विवज्जिओ ।
वर-करवाल-हत्थु कोक्कन्तु पधाइउ मेहगज्जिओ ॥१॥
सो पच्छिम-बारहोँ रक्खवालु । उब्भड-भिउडी - भङ्गुर - करालु ॥२॥
रत्तुप्पल - दल - संकास- णयणु । अट्टट्ट - हास - मेल्लन्त - वयणु ॥३॥

साहारवृक्षके प्रबल आघातसे एकदंत चक्कर खाने लगा। दुर्वात से आहत पेड़की नाईं वह धरतीपर गिर पड़ा ॥१-१०॥

[७] (इसके बाद) शक्र और सूर्य की तरह शक्ति सम्पन्न युद्धमें अशक्य कृतान्तवक्त्र आया। वह मद झरते हाथीकी तरह था। शिशिरकी तरह अपने हाथमें धनुष लिये हुए प्रचंड वह दक्षिण द्वारका रक्षक था। मुखसे कराल और गरजता हुआ वह आया और बोला—"हे हनुमान, वनको उजाड़कर तूं कहाँ जा रहा है, सामने आ। उछलते हुए दंष्ट्रावलीको जिस तरह तुमने मारा है और एकदंतको मार गिराया है उसी प्रकार हे पवन-कुमार, ओ रावणके दुष्पाप, मेरे ऊपर प्रहार कर।" तब दुर्धर हनुमानने उसको, उसे दो ही तीरोंसे छिन्न कर दिया। वह उसी के आगे चक्कर खाता हुआ वैसे ही गिर पड़ा जैसे नमि और विनमि दोनों, आदिजिन ऋषभके सम्मुख गिर पड़े थे। इतनेमें युद्धमें रथरहित हनुमानने आरुष्ट होकर तमाल वृक्षको इस प्रकार उखाड़ लिया मानो सूर्यने अंधकारके जालको उच्छिन्न कर दिया हो। निशाचरोंका संहार करनेवाले हनुमानने अपने दोनों हाथोंसे पेड़ घुमाया और कृतांतवक्त्रको आहत कर दिया। तब अपने घूमते हुए और विकलांग शरीरसे वह कृतान्तवक्र उसी प्रकार लोट-पोट होने लगा जिस प्रकार वज्रके प्रहारसे पर्वत चूर-चूर हो उठता है ॥१-१०॥

[८] कृतान्तवक्त्रके आहत होनेपर, दूसरा निशाचर मेघनाद, भयरहित होकर और हाथमें श्रेष्ठ कृपाण लेकर, गरजता हुआ दौड़ा। वह पश्चिम दिशा का द्वारपाल था। उभरी हुई टेढ़ी भौंहोंसे वह अत्यन्त कराल था। उसकी आँखें रक्तकमल की तरह थीं। मुख से वह अट्टहास कर रहा था। वह नये जल-

णव - जलहर - लील-समुव्वहन्तु । सरगुअल-धर - विज्जुल - रवन्तु ॥४॥
भउहावलि- किय धणुहर- पवड्ढु । हणुवहोँ अब्भिडिउ विसुद्ध- सङ्कु ॥५॥
एत्थन्तरेँ अणिलहोँ णन्दणेण । उप्पाडिउ चन्दणु दिढ - मणेण ॥६॥
सप्पुरिसु जेम बहु-खम-सरीरु । सप्पुरिसु जेम छेए वि धीरु ॥७॥
सप्पुरिसु जेम सीयल- सहाउ । सप्पुरिसु जेम सामण्ण - भाउ ॥८॥
सप्पुरिसु जेम जणवएँ महग्घु । सप्पुरिसु जेम सव्वहुँ सलग्घु ॥९॥

घत्ता

तेण पवर-चन्दण-दुमेँण आहउ मेहणाउ वच्छत्थलेँ ।
लउडि-पहारेँ वाइयउ पडिउ फणिन्दु णाइँ महि-मण्डलेँ ॥१०॥

[९]

दुवई

पवरुज्जाणवाल पच्चारि वि हय हणुवेण जावँहिँ ।
सेसारक्खिएहिँ दहवयणहोँ गम्पिणु कहिउ तावँहिँ ॥१॥

'भो भो भू-भूसण भुवण पाल । आरुट्ठ - दुट्ठ - णिट्ठवण - काल ॥२॥
पवरामर - डामर - रणे रउद्द । णरवर - चूडामणि जय - समुद्द ॥३॥
वणु-इन्द-चिन्द- मद्दण - सहाव । समागग - मग्ग - णिग्गय - पयाव ॥४॥
कामिणि-जण-थण- चक्कण-वियड्ढ । लङ्कालङ्कार महागुणड्ढ ॥५॥
णिच्चिन्तउ अच्छहि काइँ देव । वणु भग्गु कु-मुणिवर-हियउ जेव ॥६॥
एक्केण णरेण वियड्ढएण । पहरन्तेँ अमरिस-कुद्धएण ॥७॥
उप्पाडेँवि तरल-तमाल-साल । घेयारि वि हय उज्जाण-पाल' ॥८॥
तहिँ अवसरेँ आयउ अण्णेक्क वत्त । वज्जाउहु आसाली समत्त ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु दहवयणु कुविउ दवग्गि व सित्तु घिएण ।
'को जम-राएं सम्भरिउ उववणु भग्गु महारउ जेण' ॥१०॥

ध्रगों के समान था। करवाल रूपी उज्ज्वल विद्युत उसके पास थी। टेढ़ी भौंहें इन्द्रधनुष की भांति थीं। तब शंकामुक्त होकर वह हनुमान से आकर भिड़ गया। हनुमानने तब दृढ़मनसे चन्दनका वृक्ष उखाड़ा। वह वृक्ष, सत्पुरुष की भाँति क्षमाशील शरीरवाला था, छेदन होने पर भी वह (सत्पुरुषकी भाँति) धीरज रखता था। उसका स्वभाव सत्पुरुषकी तरह शीतल था। सत्पुरुषकी भाँति वह अपने जनपदमें आदरणीय हो रहा था। सत्पुरुषकी भाँति ही वह सब लोगोंसे प्रशंसनीय था। उस प्रवर वृक्षके आघात से मेघनाद वक्षस्थल में आहत हो उठा। लाठी से आहत सर्प की तरह वह धरती पर लोटपोट हो गया॥ १-१०॥

[९] इस प्रकार जब हनुमानने चारों ही बड़े-बड़े उद्यानपालोंको मार गिराया तो शेष रक्षकोंने दौड़कर सब वृत्तान्त रावणको सुनाया। (वे बोले) "अरे-अरे भूमिभूषण, भुवनपाल, आरुष्ट दुष्टोंके लिए काल, प्रबल भयंकर, देवयुद्धमें अत्यन्त रौद्र, नरश्रेष्ठ, जयसागर दानवों और इन्द्रका दमन करनेवाले, स्वर्गपथमें प्रथितप्रताप, कामिनी-स्तन-मण्डलोंके मर्दनमें विदग्ध, लंकाके अलंकार, महान् गुणोंसे परिपूर्ण, हे देव, ! आप निश्चिन्त क्यों बैठे हैं ? अमर्षसे कुपित और प्रहारशील एक मनुष्यने कुमुनि के हृदयकी भाँति समूचा उद्यान उजाड़ डाला। उसने ताल तमाल और ताड़वृक्षोंको उखाड़कर चारों ही उद्यानपालोंको मार डाला है।" ठीक इसी समय रावणके निकट यह खबर भी पहुँची कि उसने आसाली विद्याको समाप्त कर दिया है। यह सुनकर रावण बहुत ही क्रुद्ध हुआ। मानो किसीने आग में घी डाल दिया हो। उसने कहा, "किसने यमराजका स्मरण किया है, किसने मेरा उद्यान उजाड़ डाला है ?" ॥१-१०॥

[१०]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु मन्दोयरि पिसुणइ णिसियरिन्दहो ।
'किण्ण कयाइ देव पइँ सुणियउ धीया-सुउ महिन्दहों ॥१॥

जसु तणिय जणणि पवणञ्जएण । बारह वरिसइँ परिचत्तएण ॥२॥
पच्छण्ण-गब्भ-सङ्काएँ सुएँवि । केउमइएँ दुच्चरिउ मुणेवि ॥३॥
कुलहरहों विसज्जिय ण गय तहि मि । वणवासेँ पसूइय गम्पि कहि मि ॥४॥
विज्जाहरें हिँ चउदिसु गविट्ठ । गिरि-कुहरब्भन्तरें णवर दिट्ठ ॥५॥
किउ हणुरुह-दीवन्तरें णिवासु । हणुवन्तु पगासिउ णामु तासु ॥६॥
परिणाविउ पइँ वि अणङ्गकुसुम । कक्केल्लि-लय व उब्भिण्ण-कुसुम ॥७॥
इय उवयारहँ एक्कु वि ण णाउ । अण्णु वि वइरिहिँ पाइक्कु जाउ ॥८॥
जं आइउ अब्भुत्थलउ लेवि । भडु वड्ढिउ गलगज्जिउ करेवि' ॥९॥

घत्ता

एक्कु वि उववणेँ दरमलिएँ दहमुह-कुमरु झत्ति पलित्तउ ।
अण्णु वि पुणु मन्दोयरिएँ लेवि पलाल-भारु णं घित्तउ ॥१०॥

[११]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु दहवयणों पवराणत्त किङ्करा ।
अक्क-मियङ्क-सक्क-वर-विक्कम पहरण-कर-भयङ्करा ॥१॥

सो णवर पणवेवि । आएसु मग्गेवि ॥२॥
पाइक्क सण्णद्ध । दिढ - परियरावद्ध ॥३॥
सीह व्व संकुद्ध । रिउ-जय-सिरी - लुद्ध ॥४॥
पज्जलिय-मणि-मउड । विप्फुरिय - उद्दउड ॥५॥
णिट्ठुरिय-णयण-जुअ । कण्टइय - पवर -भुअ ॥६॥
भू-भङ्गुरा - भाल । उग्गिण्ण - करवाल ॥७॥

[१०] यह सुनकर, रानी मन्दोदरीने भी हनुमानकी चुगली करते हुए कहा, "हे देव, क्या आप किसी भी तरह यह नहीं समझ पाये। राजा महेन्द्रकी पुत्रीका पुत्र वही हनुमान है जिसकी मांको पवनञ्जयने बारह बरसके लिए छोड़ दिया था। सास केतुमतीने भी गुप्त गर्भकी बात सुनकर और दुश्चरित्र समझकर अपने कुलगृहसे उसे निकाल दिया था। वह अपने घर (मायके) भी नहीं गई और वनमें कहीं जाकर उसको जन्म दिया। तब विद्याधरोंने इसके लिए चारों ओर खोजा किन्तु यह पहाड़की गुफामें मिला, किसी दूसरी जगह नहीं। फिर हनुरुह द्वीपमें इसका लालन-पालन हुआ, इसीसे इसका नाम हनुमान पड़ गया। आपने भी अनंगकुसुमसे उसका उसी प्रकार विवाह किया है जिस प्रकार अशोकलतासे खिले हुए सुमनका सम्बन्ध होता है। परन्तु इसने (हनुमान ने) इन उपकारोंमेंसे एकको नहीं माना। प्रत्युत वह हमारे शत्रुओंका अनुचर बन बैठा है। जब यह सीता देवीके पास अंगूठी लेकर पहुँचा तो मेरे ऊपर भी गरज उठा।" एक तो उद्यानके विनाशसे दशाननकी क्रोधाग्नि प्रदीप्त हो रही थी, दूसरे मन्दोदरीने मानो यह सब कहकर उसमें सूखी घास और डाल दी ॥१–१०॥

[११] यह सुनकर (प्रचण्ड) रावण ने हाथियोंसे भयङ्कर और पराक्रमी अर्क, मृगाङ्क और शक्र आदि, बड़े-बड़े, अनुचरों को आज्ञा दी। प्रणामपूर्वक आज्ञा लेकर और दृढ़ परिकरसे आबद्ध होकर, वे (निशाचर) अपनी तैयारी करने लगे। सिंहकी तरह क्रुद्ध वे शत्रु-विजयके लालची थे। मणिमय मुकुट चमक रहे थे। और ऊँचे ऊँचे ओंठ फड़क रहे थे। उनके दोनों नेत्र भयानक थे और बाहुएँ पुलकित हो रही थीं। उनका भाल भ्रूभंगसे कुटिल

हत्थि व्व संखुहिय । सूर व्व बहु-उद्दय ॥८॥
जलहि व्व उच्चल्ल । सेल व्व संचल्ल ॥९॥
दणु-देह - दारणइँ । गहियाइँ पहरणइँ ॥१०॥
अण्णेण हुलि-हूलु । अण्णेण झस-सूलु ॥११॥
अन्नेण गय-दण्डु । अण्णेण कोवण्डु ॥१२॥
अण्णेण सर-जालु । अण्णेण करवालु ॥१३॥

घत्ता

एव दसाणण-किङ्करहुँ बलु सण्णहेंवि सयलु संचल्लिउ ।
पलय-कालें णं उवहि-जलु णिय-मज्जाय मुअन्तु उत्थल्लिउ ॥१४॥

[१२]

दुवई

खोहिउ सायरो व्व लङ्का-णयरी जाया समाउला ।
रहवर-गयवरोह-जम्पाण-विमाण- तुरङ्ग - सङ्कुला ॥१॥

बलु कहि मि ण माइउ णीसरन्तु । संचल्लु पओलिय दरमलन्तु ॥२॥
धय - चवल - महल्लय - थरहरन्तु । पडु-पडह - सङ्ख-महल - रसन्तु ॥३॥
खणु खेत्तें पहरण-वर-करेहिँ । वणु वेढिउ रावण-किङ्करेहिँ ॥४॥
णं तारा-मण्डलु णव-घणेहिँ । णं तिहुअणु तिहि मि पहञ्जणेहिँ ॥५॥
तिह वेढेंवि रहवर-गयवरेहिँ । पच्चारिउ मारुइ णरवरेहिँ ॥६॥
'पायारु पलोट्टिउ जिह विसालु । बज्जाउहु हउ रणेँ कोट्टवालु ॥७॥
वण-पाल वहिय वणु भग्गु जेम । खल खुद्द पिसुण महु पहरु तेम' ॥८॥
तं णिसुणेंवि धाइउ पवण-जाउ । कप्पियल-पवर - पायव - सहाउ ॥९॥

घत्ता

पढम-भिडन्तेँ मारुइण रिउ-साहणु बहु-भाय-समारिउ ।
णं सीहेण विरुद्धएँण मयगल-जूहु दिसहिँ ओसारिउ ॥१०॥

हो रहा था। उनकी कृपाणें उठी हुई थी। महागज की भाँति वे अत्यन्त क्षुब्ध थे। सूर्यकी तरह अनेक रूपमें वे प्रकट हो रहे थे। समुद्रकी तरह उछल रहे थे। और पर्वतोंकी भाँति चल-फिर रहे थे। दानवोंके शरीरको विदीर्ण करनेवाले, वे हथियार लिये हुए थे। किसीके पास हलि और हुलि अस्त्र थे। कोई झष और शूल लिये था। कोई गदा और दण्ड लिये था। कोई धनुष लिये था, कोई सरजाल और कोई एक करवाल लिये था। रावणके अनुचरों, की समस्त सेना, इस प्रकार सनद्ध होकर चल पड़ी, मानो समुद्रका जल ही प्रलयकालमें अपनी मर्यादा छोड़कर उछल पड़ा हो ॥१-१४॥

[१२] इस प्रकार लङ्कानगरी क्षुब्ध सागरकी तरह व्याकुल हो उठी। रथवर, गजवरसमूह जम्माण विमान और घोड़ों से वह व्याप्त हो रही थी। निकलती हुई सेना कहीं भी नहीं समा पा रही थी। वह गलियोंको रौंधती हुई जा रही थी, ध्वज और चपल महाध्वज फहरा रहे थे। पटु, पटह, शङ्ख और मद्दल बज रहे थे। उत्तम शस्त्र अपने हाथोंमें लिये हुए, रावणके अनुचरोंने तुरन्त उस उपवनको ऐसे घेर लिया, मानो नये मेघोंने तारामंडलको घेर लिया हो या मानो तीन प्रकारके पवनोंने त्रिभुवनको घेर लिया हो। इस प्रकार रथवरों और गजवरोंसे उसे घेरकर नरवरोंने हनुमान को ललकारा—"जैसे तुमने विशाल परकोटा ध्वस्त किया, कोतवाल वज्रायुधको युद्धमें आहत किया, वनपालोंकी हत्या की और उद्यान उजाड़ा है, खल, क्षुद्र, पिशुन, उसी तरह अब मर और प्रहार झेल।" यह सुनकर हनुमान विशाल कांपिल्य वृक्ष लेकर दौड़ा। पहली ही भिड़ंतमें उसने शत्रुसेनाको अनेक भागोंमें विभक्त कर दिया। मानो विरुद्ध होकर सिंहने हाथीके झुण्डको कई दिशाओंमें तितर-बितर कर दिया हो ॥१-१०॥

[१३]

दुवई

जउ जउ पवणपुत्तु परिसक्कइ तउ तउ बलु ण थक्कई ।
कुन्दएँ णियय-कन्तें सुकलत्तु व णउ णासइ ण ढुक्कई ॥१॥
सु-कलत्तु जेम अब्भिट्टइ जाइ । सु-कलत्तु जेम भिउडिहिँ ण थाइ ॥२॥
सु-कलत्तु जेम विवरिउ ण होइ । सु-कलत्तु जेम वयणु वि ण जोइ ॥३॥
सु-कलत्तु जेम तूरिउ मणेण । सु-कलत्तु जेम ढुक्कइ खणेण ॥४॥
सु-कलत्तु जेम ओसारु देइ । सुकलत्तु जेम करयलु धुणेइ ॥५॥
सु-कलत्तु जेम छिद्दन्तु जाइ । सु-कलत्तु जेम पासेउ लेइ ॥६॥
सु-कलत्तु जेम रोसेण वलइ । सु-कलत्तु जेम सम्पत्तु खलइ ॥७॥
सु-कलत्तु जेम संकुइय-वयणु । सु-कलत्तु जेम मउलन्त-णयणु ॥८॥
सु-कलत्तु जेम किय वङ्क-भमुहु । सु-कलत्तु जेम धावन्तु समुहु ॥९॥

घत्ता

रोक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ वि वेढइ वलइ धाइ परिपेल्लइ ।
हणुवहों बलु सु-कलत्तु जिह पिट्टिज्जन्तु वि मग्गु ण मेल्लइ ॥१०॥

[१४]

दुवई

हुलि-हल - मुसल-सूल - सर-सव्वल-पट्टिस-फलिह-कोन्तेंहिँ ।
गय-मोग्गर-भुसुण्ढि - फस - कोन्तेंहिँ सूलेंहिँ परसु-चक्केंहिँ ॥१॥
हउ पवण-पुत्तु । रणें उत्थरन्तु ॥२॥
तेण वि चलेण । दिढ-भुअ - बलेण ॥३॥
णिद्दलिउ सिमिरु । चमरेण चमरु ॥४॥
छत्तेण छत्तु । कोन्तेण कोन्तु ॥५॥
खग्गेण खग्गु । धउ धएँण भग्गु ॥६॥

[१३] जहाँ-जहाँ पवनसुत घूमता, वहाँ-वहाँ सेना ठहर नहीं पाती। अपने कांतके क्रुद्ध होनेपर सुकलत्रकी तरह (वह सेना) न नष्ट ही होती और न पास ही पहुँच पाती। सुकलत्र की तरह वह आड़-आड़े जाती थी। सुकलत्रकी तरह भृकुटि के सम्मुख नहीं ठहरती थी। सुकलत्रकी तरह विपरीत नहीं देखती थी। सुकलत्रकी तरह वह मन ही मन पीड़ित थी। सुकलत्र की तरह हट जाती थी। सुकलत्रकी तरह हाथ धुनती थी। सुकलत्रकी तरह छिपती हुई जाती थी। सुकलत्रकी तरह पसीना-पसीना हो जाती। सुकलत्रकी तरह रोषसे मुड़ पड़ती थी। सुकलत्रकी तरह निकट आते ही स्खलित हो जाती थी। सुकलत्रकी तरह वह अत्यंत संकुचित हो रही थी। सुकलत्रकी भाँति उसके नेत्र मुकुलित थे। सुकलत्रकी तरह उसकी भृकुटी टेढ़ी मेढ़ी हो रही थी। सुकलत्रकी भाँति ही वह सेना सामने-सामने ही दौड़ रही थी। हनुमान उसे रोकता, बुलाता और पास पहुँच जाता। कभी उसे घेर लेता, मुड़ता, दौड़ता और उसे पीड़ित करता। किन्तु वह सेना पीटी जाकर भी सुकलत्रकी भाँति अपना रास्ता नहीं छोड़ रही थी॥१-१०॥

[१४] हुलि, हल, मूसल, शूल, सर, सब्बल, पट्टिश, फलिह, भाला, गदा, मुद्‍गर, भुसुंडि, झस, कोंत, शूली और परशु चक्रसे सेनाने जब युद्धमें उछलते हुए हनुमानको आहत कर दिया, तब दृढ़भुज उसने भी रावणकी सेनाको चपेट डाला। चमरसे चमर, छत्रसे छत्र, कोंतसे कोंत, खंगसे खंग, ध्वजसे ध्वज,

चिन्धेण चिन्धु । सरु सरेंण छिण्णु ॥७॥
रहु रहवरेण । गउ गयवरेण ॥८॥
हउ हयवरेण । णरु णरवरेण ॥९॥
हत्थेण अण्णु । पाएण अण्णु ॥१०॥
पण्हियएँ अण्णु । जण्णुयएँ अण्णु ॥११॥
दिट्ठाएँ अण्णु । मुट्ठाएँ अण्णु ॥१२॥
उरसा वि अण्णु । सिरसा वि अण्णु ॥१३॥
तालेण अण्णु । तरलेण अण्णु ॥१४॥
सालेण अण्णु । सरलेण अण्णु ॥१५॥
चन्दणेण अण्णु । बम्भणेंण अण्णु ॥१६॥
णागेण अण्णु । चम्पऍण अण्णु ॥१७॥
णिम्बेण अण्णु । पक्खेण अण्णु ॥१८॥
सज्जेण अण्णु । अज्जुणेण अण्णु ॥१९॥
पाडलिएँ अण्णु । पुप्फलिए अण्णु ॥२०॥
केअइएँ अण्णु । मालइएँ अण्णु ॥२१॥
अण्णेण अण्णु । इउ एम सेण्णु ॥२२॥

घत्ता

पवण - सुअहों पहरन्ताहों णाणायाम - थाम-परिचत्तहँ ।
रिउसाहण-णन्दणवणइँ वेण्णि वि रणेँ सरिसाइँ समत्तइँ ॥२३॥

[१५]

दुवई

पाडिय वर-तुरङ्ग रह मोडिय चूरिय मत्त कुञ्जरा ।
वेस व णह-विलुक्क थिय केवल उक्खय-दुम-वसुन्धरा ॥१॥

वण - वलइँ दसाणण - केराइँ । सुरइ मि आणन्द - जणेराइँ ॥२॥
महियलेँ सोहन्ति पडन्ताइँ । णं जिण-पडिमहँ पणमन्ताइँ ॥३॥
इण-वलइँ णिसण्णाइँ धरणियलेँ । अल्लवइँ व सुक्कइँ उवहि-जलेँ ॥४॥
पण-वलइँ सु-संताविययइँ किह । दुप्पुत्तेंहि उभय-कुलाइँ जिह ॥५॥
वण-वलइँ परोप्परु मीसियइँ । णं वर-मिहुणाइँ पदीसियइँ ॥६॥
सामीरणि - णिहएँ सुयाइँ । रणेँ रयणिहिँ मिलेँवि पसुत्ताइँ ॥७॥

चिह्नसे चिह्न और सरसे सर भिड़ हो उठे। रथसे रथ, गजसे गज, अश्वसे अश्व और नखसे नख, टकरा गये। कोई हाथ, कोई पैरसे, कोई पिंडरी ? से, कोई जानसे, कोई दृष्टिसे, कोई मुट्ठीसे, कोई उरसे, कोई सिरसे, कोई तालसे, कोई तरलसे, कोई सालसे, कोई चन्दनसे, कोई बन्धनसे, कोई नागसे, कोई चम्पकसे, कोई नींबसे, कोई अक्षसे, कोई सर्जसे, कोई अर्जुनसे, कोई पाटलीसे कोई पुस्फलीसे, कोई केतकीसे, कोई मालतीसे, हनुमान द्वारा आहत हो उठा। इस प्रकार उसने समस्त सेनाको ध्वस्त कर दिया। प्रहार करते हुए हनुमानने उच्छ्वास रहित रिपुसेना और नन्दनवनको समान रूपसे नष्ट कर दिया ॥१–२३॥

[१५] उत्तम अश्व गिर पड़े। रथ मुड़ गये। मत्त कुञ्जर चूर-चूर हो उठे। केवल उच्छिन्न वृक्षोंकी धरती, नकटी वेश्याके समान बाकी बची थी। देवताओंको भी आनन्द प्रदान करनेवाला रावणका उद्यान और सैन्य दोनों ही धरतीपर पड़े हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वे जिनप्रतिमा को प्रणाम कर रहे हों। धराशायी नन्दनवन और सैन्य, ऐसे लगते थे मानो समुद्रका जल सूख जानेपर जलचर ही निकल आये हों। उद्यान और सैन्य उसी तरह संतप्त थे जैसे कुपुत्रके कारण अन्य कुल दुःखी होते हैं। उद्यान और सैन्य आपसमें मिले हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो उत्तम मिथुन ही दिखाई पड़ रहे हों। सामीरणी (हनुमान और

वण-वलइँ हणुव-पहराहयइँ । णं कालहों पाहुणाइँ गयइँ ॥८॥
अहवइ णं वलहों हियत्तणेण । वणु भग्गु भडग्गिहेँ कारणेण ॥९॥

घत्ता

समरेँ महासरेँ रुहिर-जलेँ णर-सिरकमलइँ दिसहिँ पढोएँ वि ।
मारुइ मत्त-गइन्दु जिह वग्गइ स इँ भुव-जुअलु पजोएँ वि ॥१०॥

●

[५२. दुवण्णासमो संधि]

विणिवाइएँ साहणेँ भग्गएँ उववणेँ णं हरि हरिहिँ समावडिउ ।
स-तुरङ्ग स सन्दणु दहमुह-णन्दणु अक्खउ हणुवहों अब्भिडिउ ॥

[१]

दुरियागणउ विहुणिय-बाहुदण्डओ ।
णं गयवरउ णिब्भर-गिल्ल गण्डओ ॥
तं दहवयणु जयकारेवि अक्खओ ।
णं णीसरिउ गरुडहों समुहु तक्खओ ॥१॥

संचल्लन्तएँ रह-गय-वाहणेँ । रणेँ पइट्ठउ देवाविउ साहणेँ ॥२॥
कड्ढिय-हय-संजोत्तिय-सन्दणु । लीलएँ चडिउ दसाणण-णन्दणु ॥३॥
धूमकेउ धय-दण्डेँ धवेप्पिणु । कालदिट्ठि सारत्थि करेप्पिणु ॥४॥
परिहिउ माया-कवउ कुमारेँ । रहु संचल्लिउ पच्छिम-दारेँ ॥५॥
ताव समुट्ठियाइँ दुण्णिमित्तइँ । जाइँ विओय-मरण-भयइत्तइँ ॥६॥
सिव फेक्कार करन्ति पढुक्कइ । सुक्कएँ पायवेँ वुक्कणु वुक्कइ ॥७॥
पहु छिन्दन्तु सप्पु संचल्लइ । पुणु पडिकूलु पवणु पडिपेल्लइ ॥८॥
रासहु रसइ कुमारहों पच्छएँ । णावइ सज्जणु लग्गु कडच्छएँ ॥९॥

हवा) के कारण मानो वे युद्ध और रातमें एकाकार हो उठे हों। पवनसुत हनुमानके प्रहारोंसे आहत चन और बल ऐसे जान पड़ते थे मानो दोनों ही यम के अतिथि जा बने हों। रुधिर जलसे पूर्ण उस युद्धरूपी महासमरमें दिशाओंको नरोंके सिरकमल उपहारमें चढ़ाकर और अपनी भुजाओंका प्रयोगकर गर्वीला हनुमान मत्तगजकी तरह गरज रहा था ॥१–१०॥

●

बावनवीं संधि

सेनाका विनाश और नन्दनवनका पतन होनेपर रावणका पुत्र अक्षयकुमार अश्व और रथके साथ आकर हनुमानसे भिड़ गया, वैसे ही जैसे सिंहसे सिंह भिड़ जाता है।

[१] उसका चेहरा तम-तमा रहा था, अपने दोनों हाथ मलते हुए वह ऐसा लगता था मानो, मद झरता हुआ महागज हो। रावणकी जय बोलकर अक्षयकुमार निकल पड़ा, मानो गरुड़ के सम्मुख तक्षक ही निकला हो। रथ और गजवाहनोंके साथ, सेनाके प्रस्थान करनेपर दुंदुभि बजवा दी गई। अश्व निकल पड़े। रथ खींचे जाने लगे और रावणपुत्र लीलापूर्वक उसपर चढ़ गया। ध्वजदंडपर धूमकेतु स्थापितकर, अक्षयकुमारने काल-दृष्टिको अपना सारथि बनाया। कुमारने मायाकवच पहन लिया। पश्चिम-द्वारसे रथ चल पड़ा। ठीक इसी समय, वियोग और मरणसे पूरित दुर्निमित्त होने लगे। शृंगाल फेत्कार करता हुआ आया। कौआ सूखे पेड़पर बैठकर काँव-काँव करने लगा। साँप रास्ता काटकर निकल गया। हवा उल्टी बहने लगी। कुमारके पीछे गधा बोल रहा था, वैसे ही जैसे सज्जनके पीछे दुर्जन हो ?

घत्ता

अवगण्णेंवि ताइँ मि सउण-सयाइँ मि दुप्परिणामें छाइयउ।
णहयल-पईहहों सीहु व सीहहों हणुवहों सम्मुहु पधाइयउ ॥१०॥

[२]

एत्थन्तरे पभणइ पवर-सारहि।
समरङ्गणएँ केण समउ पहारहि॥
ण तुरङ्ग [illegible] ण सिरत्ताइँ।
सवडम्मुहउ रहवरु कासु वाहमि ॥१॥
तं णिसुणेवि पजम्पिउ अक्खउ। 'जो णीसेस-णिहय-पविवक्खउ ॥२॥
सारहि समर-सएँहिँ जसवन्तहों। रहवरु वाहि वाहि हणुवन्तहों ॥३॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ रहवर। संचूरिय - सतुरङ्ग - सणरवर ॥४॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ कुञ्जर। दलिय-सिरग्ग 'भग्ग-भुव-पञ्जर ॥५॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ छत्तइँ। पडियइँ महिहिँ णाइँ सयवत्तइँ ॥६॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ चिन्धइँ। अण्णु पणच्चावियइँ कबन्धइँ ॥७॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ गिद्धइँ। परिभमंति वस-मंस-पसद्धइँ ॥८॥
रहवरु वाहि वाहि जहिँ उववणु। णं दरमलिउ वियड्ढें जोव्वणु ॥९॥

घत्ता

सारहि एहु पावणि हउँ सो रावणि विहि मि भिडन्तहँ एउ फलु।
जिम हणुवहों मायरि जिम मन्दोयरि मुअइ सुदुक्खउ अंसु-जलु' ॥१०॥

[३]

जं जाणियउ अक्खउ रण-रसाहिउ।
रहु सारहिण हणुवहों सम्मुहु वाहिउ॥
ढुक्कन्तु रणें तेण वि दिट्ठु केहउ।
रयणायरेंण गङ्गा-वाहु जेहउ ॥१॥

अभाग्य मानो उसपर छाया हुआ था। इसलिए उन सैकड़ों अप-शकुनोंकी उपेक्षाकर वह हनुमानके सम्मुख इस तरह दौड़ा मानो दीर्घ पूँछवाले सिंहके पीछे सिंह दौड़ा हो ॥१-१०॥

[२] इसी बीचमें उसके प्रवर सारथीने पूछा कि युद्धके प्रांगणमें आप किससे लड़ेंगे। मैं तो अश्व, गज और ध्वज-चिह्न कुछ भी नहीं देख रहा हूँ फिर रथ किसके सम्मुख हाँकूँ। यह सुनकर, समस्त प्रतिपक्षका संहार करनेवाले अक्षयकुमारने उत्तरमें सारथीसे कहा कि सैकड़ों युद्धोंमें यशस्वी हनुमानके सम्मुख मेरा रथ हाँक ले चलो। तुम रथ वहाँ हाँककर ले चलो जहाँ चूर-चूर हुए अश्वों और नरवरोंके साथ रथवर हैं। रथवरको हाँककर रथ तुम वहाँ ले चलो जहाँ फूटे सिर और भग्न शरीरवाले गज हैं। तुम रथ वहाँ हाँक ले चलो जहाँ छत्र, कमलकी तरह धरती पर बिखरे हैं, तुम रथवरको वहाँ पर हाँक ले चलो जहाँ पर धड़ लोट-पोट रहे हैं। तुम रथको वहाँ हाँक ले चलो जहाँ मज्जा और माँसके लोभी गीध मँडरा रहे हों। तुम रथवर वहाँ हाँक ले चलो जहाँ नन्दनवन इस प्रकार ध्वस्त कर दिया गया है मानो विदग्धने (किसीका) यौवन ही मसल दिया हो। सारथिपुत्र यह है हनुमान और यह है रावणपुत्र अक्षय कुमार। युद्धरत्त दोनोंकी यह सेना है। जिस प्रकार हनुमानकी माँ उसी प्रकार मन्दोदरी (अक्षयकी माँ) दुखके आंसू गिरायेगी ॥१-१०॥

[३] जब सारथीने यह देखा कि कुमार अक्षय रणरस (वीरता) से भरा हुआ है तो उसने हनुमानके सम्मुख रथ बढ़ा दिया। रणस्थलमें पहुँचते ही हनुमानने उसे इस प्रकार देखा मानो समुद्रने गंगाके प्रवाहको देखा हो। रथ देखकर हनुमान

जं णिज्झाइउ णिसियर-सन्दणु । मणें आरुट्ठु समीरण-णन्दणु ॥२॥
वलिउ दिवायर-चक्कहों राहु व । रइ-भत्तारहों तिहुवण-णाहु व ॥३॥
वलिउ तिविट्ठु व अस्सग्गीवहों । राहवो व मायासुग्गीवहों ॥४॥
दहवयणो व्व वलिउ सहसक्खहों । जिह हणुवन्तु समुहु रणें अक्खहों ॥५॥
दहमुह-णन्दणेण हक्कारिउ । णि-ट्ठुर-कडु-आलावहिँ सारिउ ॥६॥
'चक्कउ पवण-पुत्त पइँ जुज्झिउ । जिणवर-वयणु कयावि ण वुज्झिउ ॥७॥
अणुवउ गुणवउ णउ सिक्खावउ । परधण-वउ सुणासु जिह सावउ ॥८॥
एत्तिय जीव जेण संघारिय । ण वि जाणहुँ कहिँ थत्ति समारिय ॥९॥

घत्ता

मइँ वइँ सुक्क-जीवहों सव्वहों जीवहों किय णिवित्ति मारेवाहों'।
पर एक्कु परिग्गहु णाहिँ अवग्गहु पइँ समाणु पहरेवाहों ॥१०॥

[४]

अक्खसहो वयणु सुणेवि तणुवेण ।
पङ्कय-मुहेण सरहसु हसिउ हणुवेण ॥
'जिह एत्तियहुँ तुज्झु वि भिडन्तहो ।
जीविउ हरमि एत्तिउ रणें रसन्तहो ॥१॥

एव चवन्त सुहड-चूडामणि । भिडिय परोप्परु रावणि-पावणि ॥२॥
णं विण्णि मि आसीविस विसहर । णं विण्णि मि मुक्कङ्कुस कुञ्जर ॥३॥
णं विण्णि मि सरहस पञ्चाणण । णं विण्णि वि कुलिसहर-दसाणण ॥४॥
णं विण्णि मि गलगज्जिय जलहर । णं वेण्णि वि उत्थल्लिय सायर ॥५॥
विण्णि वि रावण-राहव-किङ्कर । विण्णि वि विजय-लच्छि विहुणिय-कर ॥६॥
विण्णि वि रत्त-णेत्त डसियाहर । विण्णि वि बहु-परिवड्ढिय-रण-भर ॥७॥

मन ही मन उमड़ पड़ा। सूर्यमण्डलपर राहुकी तरह या कामदेव पर शिवकी तरह, उसकी ओर मुड़ा। रणमुखमें पवनपुत्र कुमार अक्षयपर उसी प्रकार झपटा जिस प्रकार, अश्वग्रीवपर त्रिविष्ट, माया सुग्रीवपर राम या सहस्राक्षपर रावण झपटा था। तब रावणपुत्र कुमार अक्षयने निष्ठुर और कठोर शब्दोंमें पवनपुत्रको ललकारकर उसे क्षुब्ध कर दिया। उसने कहा, "अरे हनुमान् ! तुमने भला युद्ध किया ! जिनवरके वचनको तुमने कुछ भी नहीं समझा ! अणुव्रत, गुणव्रत और परधन व्रतमेंसे तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, जिनसे कि श्रावकका सुनाम होता है। जिसने इतने इतने जीवोंका संहार किया है कि पता नहीं वह कहाँ जाकर विश्राम पायेगा। मैंने इस समय सभी छोटे-छोटे जीव-जन्तुओंको मारनेसे निवृत्ति ग्रहण कर ली है, केवल एक बातको अभी तक ग्रहण नहीं किया और वह यह कि तुम्हारे जैसे लोगोंके साथ युद्ध करना नहीं छोड़ा" ॥१-१०॥

[४] कुमार अक्षयके वचन सुनकर, हनुमानके हर्षपूर्ण मुखकमलपर हँसी आ गई। वह बोला, "जैसे इतने लोगोंका वैसे ही लड़ते बोलते हुए तुम्हारा भी जीवनहरण कर लूँगा।" यह कहने पर सुभटश्रेष्ठ कुमार अक्षय और हनुमान दोनों आपस में ऐसे टकरा गये, मानो दोनों ही आशीविष सर्पराज हों। मानो दोनों ही अंकुशविहीन गज हों, मानो दोनों ही वेगशील सिंह हों, मानो दोनों ही गरजते हुए महामेघ हों, मानो दोनों ही उछलते हुए समुद्र हों। दोनों राम और रावणके अनुचर थे। विशाल वक्षःस्थलवाले वे दोनों ही अपने हाथ धुन रहे थे। दोनोंके नेत्र आरक्त थे और वे अपने ओंठ चबा रहे थे। दोनों ही, बढ़ते हुए युद्धभारसे दबे थे। दोनों ही अरहंत नाम

विण्णि वि णासु लिन्ति अरहन्तहों। तरु णिसियरेंण मुक्कु हणुवन्तहों ॥८॥
सेल वि तिक्ख-खुरुप्पेंहिं खण्डिउ। वलि जिह दिसिहिं विहत्तें वि छण्डिउ ॥

घत्ता

पुणु मुक्कु महीहरु स-तरु स-कन्दरु सो वि पडीवउ छिण्णु किह।
जण-णयणाणन्दें परम-जिणेन्दें भीसणु भव-संसारु जिह ॥१०॥

[५]

अप्फोडेवि किर गिरिवरु मुअइ अग्गेंहि।
आरुहुं [illegible] उप्प-खुरुप्प [illegible]हिं ॥
णिय-भुअ-बलेंण आमेंवि णहयलन्तरे।
सहु रहवरेंण घत्तिउ पुव्व-सायरे ॥१॥
सारहि णिहउ तुरङ्गम घाइय। आसालियहें महाघएँ ढाइय ॥२॥
अक्खउ गयण-मग्गें उप्पाएँ वि। आउ खणद्धें सिरु संधाएँ वि ॥३॥
किर परिघिवइ वियड-वच्छ-त्थलें। हणुवें णवर भमाडेवि णहयलें ॥४॥
घत्तिउ दाहिण-लवण-महण्णवें। आउ पडीवउ भिडिउ महाहवें ॥५॥
पुणरवि घत्तिउ पच्छिम-सायरें। तहि मि पराइउ णिविसब्भन्तरें ॥६॥
पुणु आवाहिउ उत्तर-वासें। पत्तु पडीवउ सहुँ णीसासें ॥७॥
पुणु णहयलहों विहु भामेप्पिणु। मेरुहें पासेंहिं भामरि देप्पिणु ॥८॥
पत्तु खणन्तरें जहिँ गज्जन्तउ। 'मारहु पहरु पहरु' पभणन्तउ ॥९॥

घत्ता

(तं) णिसुणेवि पवोल्लिय सुर मणें डोल्लिय 'कम्मइँ कहु दूअहों तणिय ॥
हणुवरु जीवेसइ रामहों लेसइ कुसल-वत्त सीयहें तणिय' ॥१०॥

[६]

जोयण-सएँण जो घल्लिउ आवइ (?)।
अइ-बलउ मणु कामिणिहें णावइ ॥

ले रहे थे। कुमार अक्षयने हनुमानके ऊपर एक वृक्ष फेंका। हनुमानने उसे अपने तीखे खुरपेसे वैसे ही खण्ड-खण्ड कर दिया जैसे बलिको विभक्तकर दिशाओंमें छिटक देते हैं। तब कुमार अक्षयने गुफाओंसे सहित पहाड़ फेंका, वह भी छिन्न-भिन्न होकर उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार जननेत्रोंको आनन्द देनेवाले जिनसे छिन्न-भिन्न होकर भीषण भव-संसार गिर पड़ता है ॥१-१०॥

[५] इतनेमें कुमार अक्षय एक और पहाड़ उठाकर फेंकने लगा। परन्तु पवनपुत्र हनुमानने अपने भुजबलसे उसे आकाशमें उछालकर रथसहित पूर्व समुद्रमें फेंक दिया। सारथी मारा गया। और दोनों अश्वोंने आशाली विद्याका अनुसरण किया। किन्तु कुमार अक्षय आधे ही क्षणमें शिला उठाकर मारने आया। तब विशाल वक्षःस्थलवाले हनुमानने उसे घुमाकर लवण समुद्रमें फेंक दिया। फिर भी वह लौटकर लड़ने लगा। तब हनुमानने उसे पश्चिम समुद्रमें फेंक दिया। वह वहाँसे भी पलभरमें लौट आया। तब हनुमानने उसे उत्तर दिशामें फेंका, वहाँसे भी एक निश्वासमें लौटकर आ गया। हनुमानने उसे आकाशमें फेंक दिया, वह भी मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर आधे ही क्षणमें आकाशमें गर्जन करता हुआ आ गया। उसने कहा, "प्रहार करो, प्रहार करो।" यह सुनकर देवता मन ही मन डर कर बोले, "अरे, अब तो हनुमानके दौत्यकी गाथा ही समाप्त हुई, अब इसका जीवित रहना और रामके पास सीतादेवीका कुशल-सन्देश ले जाना दुष्कर ही है।" ॥१-१०॥

[६] सौ सौ योजन दूर फेंके जानेपर भी वह वापस आ जाता था, इस प्रकार वह कामिनीके मनकी तरह चंचल हो रहा

जं आहयणें जिणेवि ण सक्किउ अरी ।
विम्भाविओं मणें हणुवन्त-केसरी ॥१॥

रावण-तणयहों फुरणु पसंसिउ । 'वलु वहुन्तरेण मइँ पासिउ ॥२॥
जसु संगामें सुरेहिँ ण वुज्झिउ । तेण समाणु केम हउँ जुज्झिउ ॥३॥
किह जसु लद्धु णिहउ मइँ आहवेँ । कुसल-वत्त किह पाविय राहवें' ॥४॥
मारुइ मणेंण वियप्पइ जावेंहिँ । मन्दोयरि-सुएण रणें तावेंहिँ ॥५॥
सावट्ठम्भें भडु वोल्लाविउ । 'किं भो पवण-पुत्त चिन्ताविउ ॥६॥
णासु णासु जइ पाणहुँ भीयउ । इन्दइ जाम ण आवइ वीयउ' ॥७॥
तं णिसुणेवि पइअण-जाएं । रिउ वच्छयलें विद्धु णाराएं ॥८॥
तेण पहारें णिसियरु मुच्छिउ । पडिवउ दुक्खु दुक्खु ओमुच्छिउ ॥९॥

घत्ता

तहिँ अवसरें आहय पासु पराइय अवरहों अक्खय-विज्ज किह ।
देवत्तणें लद्धएँ केवलि-सिद्धएँ परम-जिणिन्दहों रिद्धि जिह ॥१०॥

[७]

पभणिय मइँण 'चिन्तिउ किण्ण वुज्झहि ।
एत्तडउ करें एण समाणु जुज्झहि' ॥
पहसिय-मुहएँ णर-सुर-पुज्जणिज्जाए ।
संबोहियउ अक्खउ अक्खय-विज्जए (?) ॥१॥

'अहो मन्दोअरि-णयणाणन्दण । लङ्का-णयरि-णराहिव-णन्दण ॥२॥
जं पभणहि तं काइँ ण इच्छमि । सिरसा वज्जासणि वि पडिच्छमि ॥३॥
जइ हउँ अक्खय-विज्जा रूसमि । तो णिविसद्धें सायरु सोसमि ॥४॥
इन्दहों इन्दत्तणु उद्दालमि । मेरु वि वाम-करग्गें टालमि ॥५॥
णवरि एक्कु गुरु सव्वहुँ पासिउ । णउ अ-पमाणु होइ मुणि-भासिउ ॥६॥

था। जब हनुमान उसे युद्धमें जीत नहीं पाया तो वह अपनेमें आश्चर्यचकित रह गया। वह रावणके पुत्र कुमार अक्षयकी स्फूर्ति की यह प्रशंसा करने लगा कि यह मेरी अपेक्षा अधिक बलवान है। देवता भी जिसकी गतिका पार नहीं पा सकते, उसके साथ मैं कैसे युद्ध करूँ? यशके लोभी इसे मैं किस प्रकार आहत करूँ और राम तक सीता देवीकी कुशलवार्ता कैसे ले जाऊँ। इस प्रकार हनुमान अपने मनमें संकल्प-विकल्प कर ही रहा था कि कुमार अक्षयने अपने मंत्री अवष्टंभ द्वारा यह कहलवाया, "अरे पवन-पुत्र, क्या चिंता कर रहे हो, यदि अपने प्राणोंसे भयभीत नहीं हो, और दूसरे, अबतक इन्द्रजीत आता है, उसके पहले ही मैं तुम्हें नष्ट कर देता हूँ।" यह सुनकर हनुमान क्रुद्ध हो उठा। उसने शत्रुकी छातीमें तीर मारा। उसके प्रहारसे राक्षस मूर्छित हो गया। बड़ी कठिनाईसे जिस किसी तरह जब उसकी मूर्छा दूर हुई तो उसने अपनी अक्षय विद्याका चिंतन किया। वह उसके पास उसी तरह आ गई जिस प्रकार ऋद्धि, देवत्व प्राप्त होनेपर केवलज्ञानी परम सिद्धके पास आ जाती है॥१-१०॥

[७] सुभटकुमार अक्षयने कहा, "चिंतन करनेपर भी तुम नहीं समझ पा रही हो, लो इसके साथ लड़ो"। तब नर और देवताओंमें पूज्य उस विद्याने हँसमुख होकर कहा, "अरे मंदो-दरीके नेत्रप्रिय लंकानरेशके पुत्र कुमार अक्षय, तुमने जो कुछ कहा है उसे करनेकी मेरी इच्छा क्यों नहीं है। मैं अपने सिरपर वज्रको भी झेल सकती हूँ। कुमार अक्षयके कुपित होनेपर मैं आधे ही पलमें समुद्रका शोषण कर लूँ। इन्द्रके इन्द्रत्वको दल दूँ और मेरु पर्वतको हाथकी अंगुलीसे टाल दूँ। परन्तु इन सबकी अपेक्षा एक बात सबसे बड़ी है, और वह यह कि गुरुका कहा

पइ सि मइ सि हणुवन्तहों हत्थें । आएवउ पज्जाउइ - पन्थें ॥७॥

घत्ता

एम वि अइ जुज्झहि कज्जु ण बुज्झहि सो पडिवारउ करहि रणु ।
णिम्मवेंवि स-वाहणु माया-साहणु होमि सहेज्जी एक्कु खणु ॥८॥

[८]

तो णिम्मविउ माया-बलु अणन्तउ ।
मेहउलु जिह दस-दिसि-वहु भरन्तउ ॥
जलें थलें गयणें भुवणब्भन्तरें ण माइओ ।
अउव्व-सुअहों पहरण-कर [ए] धाइओ ॥१॥
केण वि लइउ महाकुल-पावउ । केण वि हुववहु जग-संतावउ ॥२॥
केण वि उम्मूलिउ वड-पायवु । केण वि तामसु केण वि वायवु ॥३॥
केण वि जल-धारा-हरु वारुणु । केण वि दिणयरत्थु अइ-दारुणु ॥४॥
केण वि णाग-पासु केण वि धणु । एम पधाइउ सयलु वि साहणु ॥५॥
सो पण्णत्ति-विज्ज हणुवन्तें । चिन्तिय अहिणव-बलु चिन्तन्तें ॥६॥
'रइ पेसणु पभणन्ति पराइय । माया - साहणु करेंवि पधाइय ॥७॥
वेण्णि वि बलइँ परोप्परु भिडियइँ । जल-थलाइँ णं एक्कहिँ मिलियइँ ॥८॥
उब्भिय-धयइँ समाहय-तूरइँ । णं कलि-काल-मुहइँ अइ-कूरइँ ॥९॥

घत्ता

हणु-अक्खकुमारहुँ विक्कम-सारहुँ जाउ जुज्झु पहरण-घणउ ।
जोइज्जइ इन्दें सहुँ सुर-विन्दें णावइ छाया-पेक्खणउ ॥१०॥

[९]

वेण्णि वि बलइँ जय-सिरि-लद्ध-पसरइँ ।
पहरन्ति रणें जीव-भयावण-सरइँ ॥
फुरियाहरइँ भउ - भिउडी - करालइँ ।
ए (को) लमेक्कहों पेसिय-वाण-आलइँ ॥१॥

कभी अप्रमाणित नहीं जाता। तुम और मैं दोनों हनुमानके हाथसे वज्रायुधके पथपर जायेंगे इतनेपर भी यदि तुम अपना हित नहीं समझते तो युद्ध करो, मैं भी वाहनसहित मायावी सेना उत्पन्न कर एक क्षणके लिए तुम्हारी सहायता करूँगी।" ॥१-८॥

[८] यह कहकर विद्याने अनंत सेना उत्पन्न कर दी जो मेघकुलकी तरह दसों दिशाओंमें फैल गई। जल, थल, आकाश और भुवनांतरमें भी वह नहीं समा पा रही थी। वह हाथमें अस्त्र लेकर हनुमान पर दौड़ी। किसीने महा-कुल अग्नि ले ली, किसीने जनसंतापकारी, हुतवह ले लिया। किसीने वटका पेड़ उखाड़ लिया, किसीने अंधकार, तो किसीने पवन। किसीने जलधाराधर वारुण, तो किसीने अत्यंत भयङ्कर दिनकर-अस्त्र ले लिया। किसीने नाग-पाश और किसीने मेघ ही ले लिया। इस प्रकार योधागण दौड़ पड़े। तब अभिनव सेनाका विचार करते हुए हनुमानने भी अपनी 'पण्णत्ति' प्रज्ञप्ति विद्याका चिंतन किया। वह "आज्ञा दो" यह कहती हुई आ पहुँची। वह भी विद्यामयी सेना रचकर दौड़ी। दोनों सेनाएँ आपसमें टकरा गईं। जल-थल दोनों मिलकर एक हो गये। दोनोंकी ध्वजाएँ उड़ रही थीं और तूर्य बज रहे थे, मानो अति क्रूर कलिकालके मुख ही हों। विक्रमके सारभूत हनुमान और अक्षयकुमारमें शस्त्रोंसे सघन युद्ध हुआ, इन्द्रने भी उसे देव-समूहके साथ ऐसे देखा मानो इन्द्रजाल हो ॥१-१०॥

[६] दोनों ही सेनाओंको जयश्रीके विस्तारकी चाह हो रही थी, वे युद्धमें प्राणोंके लिए भयङ्कर तीरोंसे प्रहार कर रही थीं। उनके अधर काँप रहे थे और योधाओंकी भौंहें भयङ्कर हो रही थीं। एक दूसरेपर बाणोंका जाल छोड़ रहे थे। कहीं

कत्थइ चोट्टाचोट्टि धराधरि । कत्थइ कुक्काकुक्कि घराघरि ॥२॥
कत्थइ हुलाहुलि मरामरि । कत्थइ कप्पाकप्पि सरासरि ॥३॥
कत्थइ दप्पादप्पि घणाघणि । कत्थइ केसाकेसि हणाहणि ॥४॥
कत्थइ छिन्दाछिन्दि लुणालुणि । कत्थइ कड्ढाकड्ढि धुणाधुणि ॥५॥
कत्थइ भिन्दाभिन्दि दलादलि । कत्थइ मुसलामुसलि हलाहलि ॥६॥
कत्थइ सेल्लासेल्लि णरिन्दहुँ । कत्थइ पेल्लापेल्लि गइन्दहुँ ॥७॥
कत्थइ पाडापाडि तुरङ्गहुँ । कत्थइ मोडामोडि रहङ्गहुँ ॥८॥
कत्थइ लोट्टालोट्टि विमाणहुँ । आहर - जाहर णरवर-पाणहुँ ॥९॥

घत्ता

विण्णि वि अ-णिविण्णइँ माया-सेण्णइँ ताव परोप्परु जुज्झियइँ ।
कहिँ गम्पि पइट्ठइँ कहि मि ण दिट्ठइँ जाणु ण केण वि बुज्झियइँ ॥१०॥

[१०]

उव्वरिय पर दुद्दम-दणु-विमद्दणा ।
संगर-सम-गय रावण-पवण-णन्दणा ॥
णं मत्त गय धाइय एक्कमेक्कहो ।
सहसोत्थरिय रण-धवलेन्त सक्कहो ॥१॥

तो आरुट्ठु समीरण-णन्दणु । चूरिउ रणेँ रयणायर-सन्दणु ॥२॥
सारहि णिहउ तुरङ्गम घाइय । वइवस-पुरवर-पन्थेँ लाइय ॥३॥
अक्खकुमार-हणुव थिय केवल । बाहा-जुज्झेँ भिडिय महा-बल ॥४॥
तो मारुय-सुएण आयामिउ । चलणेँहिँ लेवि णिसायरु भामिउ ॥५॥
ताम जाम आमेल्लिउ पाणेँहिँ । कह वि कह वि णिय-भिच्च-समाणेँहिँ ॥६॥
लोयणाइँ सि उच्छलियइँ फुट्टेवि । विण्णि बाहु-दण्ड गय तुट्टेवि ॥७॥

योद्धाओंमें नरवरोंकी कहासुनी हो रही थी। धक्का-मुक्की हो रही थी। कहीं हूलाहूलि हो रही थी और कहीं मारामारी हो रही थी। कहीं, तोरन्दाजी, कहीं लट्ठबाजी, कहीं घनबाजी, कहीं केशा-केशी और कहीं मारकाट हो रही थी। कहीं छेदन-भेदन, कहीं लोंचा-लोंची, कहीं खींचतान, और कहीं मारचपेट हो रही थी। कहीं भेदाभेदन, कहीं दलना-पीटना, कहीं मूसलबाजी, कहीं हलबाजी, कहीं राजाओंमें सेलबाजी और कहीं हाथियोंमें रेलपेल मची हुई थी। कहीं विमान गिर-पड़ रहे थे, कहीं रथोंमें मोड़ा-मोड़ मची। कहीं घोड़ोंमें पड़ापड़ी हो रही थी। कहीं, विमान लोट-पोट हो रहे थे, कहीं नरवरोंके प्राण आ जा रहे थे? इस तरह जमकर दोनों मायावी सेनाएँ लड़ते-लड़ते कहीं भी जाकर नष्ट हो गईं। न तो कोई उन्हें देख सका और न समझ ही सका॥१-९॥

[१०] तब दुर्दम दानवोंका मर्दन करनेवाले हनुमान और अक्षयकुमार युद्धमें समान रूपसे लड़ने लगे। पवनपुत्रने रुष्ट होकर रजनीचरके रथको चूर-चूर कर दिया, सारथीको मार डाला, और अश्वको आहत कर दिया। उसे वैश्रवणके पथपर भेज दिया। अब अकेले हनुमान और अक्षयकुमार बचे। दोनों महा-बलियोंका बाहुयुद्ध होने लगा। तदनन्तर हनुमानने झुककर अक्षयकुमारको पैरोंसे पकड़कर तब तक घुमाया जब तक कि अपने अनुचरोंके तुल्य प्राणोंने उसे मुक्त नहीं कर दिया। उसके नेत्र फूटकर उछल पड़े, दोनों हाथ टूटकर गिर गये, नीलकमलकी

सिरु णिवडिउ णीलुप्पल-कोमलु । किउ सरीरु तहोँ हुअउँ पोट्टलु ॥८॥
एह वत्त गय मय-मारिच्चहुँ । अन्तेउरहुँ असेसहुँ भिच्चहुँ ॥९॥

घत्ता

तो णिसियर-णाहेँ कोव-सणाहेँ हियउ दुणेक्कएँ ढोइयउ ।
रण-रस-सण्णद्धउ णिएँवि स मं भु व चन्दहासु अवलोइयउ ॥१०॥

●

[५३. तिवण्णासमो संधि]

भणइ विहीसणु 'जइ अज्जु कि कज्जु ण णासइ ।
रावण रामहोँ अप्पिअउ सीय-महासइ ॥

[१]

भो भुवणेक्क-सीह वीसद्ध-जीह तउ थाउ एह बुद्धी ।
अज्ज वि विगय-णामेँणं समउ रामेँणं कुणहि णरिन्द 'संधी ॥१॥
अज्ज वि णिय जाणइ को वि ण जाणइ धरणियलेँ ।
अज्ज वि सिय माणहि कुल-खइ माऽऽणहि णियय-बलेँ ॥२॥
अज्ज वि सं-सा-रएँ मा संसारएँ पइसरहि ।
अज्ज वि उज्जाणेंहिँ सिविया-जाणेंहिँ संचरहि ॥३॥
अज्ज वि तहुँ रावणु जग-जूरावणु सा जेँ सिय ।
अज्ज वि मन्दोअरि सा मन्दोअरि पाण-पिय ॥४॥
अज्ज वि ते सज्जण णरवर-सन्दण ते तुरय ।
अज्ज वि तं साहणु गहिय-पसाहणु ते जि गय ॥५॥
अज्ज वि करेँ खण्डउ करि-सिर-खण्डउ तं जि तउ ।
अज्ज वि भड-सायरु खलु-असायरु रणेँ अजउ ॥६॥
अज्ज वि पवराइउ जाम ण राहउ थोवइउ ।

तरह कोमल सिर गिर पड़ा। उसका शरीर हड्डियोंकी पोटली बन गया। यह खबर, शीघ्र ही, मय, मारीच और अन्तःपुरके दूसरे अनुचरोंके पास पहुँची। तब, अपने मनमें पवनसुतको मारनेका संकल्पकर निशाचरनाथ रावणने क्रुद्ध होकर, रणरस लुब्ध चन्द्र-हास खड्गको अपने हाथमें ले लिया ॥९-१०॥

•

त्रेपनवीं सन्धि

विभीषणने रावणसे कहा, "लो, आज भी अपना काम मत बिगाड़ो, महासती सीता देवी रामको सौंप दो।

[१] हे भुवनैकसिंह, विश्रब्ध जीव ! तुम्हारी यह क्या मति हो गई है। आज भी, प्रसिद्धनाम रामके पास जाकर सन्धि कर लो। आज भी जानकीको ले जाओ। दुनियामें कोई भी इस बातको नहीं जानेगा। आज भी सीताका सम्मान करो, और अपनी सेनामें कुलक्षय मत करो। आज भी सन्देह भरे संसारमें मत घूमो। आज भी तुम शिविका यानमें बैठकर अपने उद्यानोंमें विहार करो। आज भी, तुम विश्वको सतानेवाले वही रावण हो, और सीता देवी भी वहीं हैं। आज भी तुम्हारी वही कृशोदरी मन्दोदरी प्राणप्रिय है। आज भी वे ही रथ हैं, वही नरवरोंका आगमन है। वे ही अश्व हैं, वही सेना है। वे ही प्रसाधन हैं। और वे ही गज हैं। आज भी तुम्हारे हाथमें, गजसिरोंको खण्डित करनेवाला खड्ग है। आज भी भटसमुद्र, यशके आकरको प्राप्त करनेवाले तुम रणमें अजेय हो। आज भी तुम प्रवर अङ्गवाले हो। तब तक, जबतक कि राम नहीं आते, और आज जब तक

अज्ज वि बहु-लक्खणु जाम ण लक्खणु अब्भिडइ ॥७॥
वरि ताम दसाणण पवर-दसाणण पवर-भुअ ।
अप्पिज्जउ रामहों जण-अहिरामहों जणय-सुअ ॥८॥
परयारॆं रमन्ताहों कहों वि जियन्ताहों णाहिँ सुहु ।
अच्छहि समॅ सूडउ णिय-मणॅ मूढउ काइँ मुहुँ ॥९॥

घत्ता

जाम बिहीसणु दहवयणहों हियउ ण भिन्दइ ।
महि अप्फालॅवि भडु ताव समुट्ठिउ इन्दइ ॥१०॥

[२]

"भो दणुइन्द-मइन्द पइँ बिहीसणा काइँ एव वुत्तं ।
अक्ख-कुमारें घाइए हणुएँ आइए किह किउ ण जुत्तं ॥१॥
एवहिँ काइँ मन्तु मन्तिज्जइ । अक्कें विसहें किं वरुणु रक्खइ ॥२॥
पिसुण णासु णासु जइ भीयउ । उत्तर-सक्खि समरें महु बीयउ ॥३॥
एक्कु पहुच्चइ तोयदवाहणु । अच्छउ भाणुकण्णु पञ्चाणणु ॥४॥
अच्छउ मउ मारिच्चि सहोयरु । अच्छउ अण्णु मि जो जो कायरु ॥५॥
महु पुणु चडउ अवसरु वट्टइ । जो किर भज्जइ कवलें अब्भिडइ ॥६॥
जेणाऽऽसाल-विज्ज विणिवाइय । वणु भग्गउ वण-पाल वि घाइय ॥७॥
किङ्कर - खन्धावारु पलोट्टिउ । अक्खउ कुमारु जेण दलवट्टिउ ॥८॥
सो महु कह वि कह वि अब्भिट्टियउ । सीहहों हरिणु जेम करें चडियउ ॥९॥
दूउ भणेप्पिणु समरङ्गणें जइ वि ण मारमि ।
तो वि धरेप्पिणु तुम्हहँ समक्खु वियारमि ॥१०॥

[३]

पुणरवि रिउ-णिसुम्भ अहिमाण-खम्भ सुणि वयणु ताय ताय ।
जइ ण धरेमि सत्तु रणें उत्थरन्तु ता छिवमि तुम्ह पाय ॥१॥

मधुर वचनोंसे कुछ लक्षण प्रकट नहीं होता ! तबतक, हे रावण, श्रेष्ठनायक और विशालबाहु, तुम 'जन-अभिराम रामको जनकसुता सीता सौंप दो। परस्त्रीका रमण करते हुए तुम्हें जीते जी कहीं भी सुख नहीं मिल सकता ! तमसे मुक्त होओ। अपने मनमें मूर्ख क्यों बनते हो।" इस तरह विभीषण रावणके हृदयका भेद कर ही रहा था कि इतनेमें धरतीपर धमकता हुआ सुभट इन्द्रजीत उठा ॥९–१०॥

[२] वह बोला, "दानव और इन्द्रका दलन करनेवाले विभीषण, तुमने यह क्या कहा ! अक्षयकुमारके मारे जाने और हनुमानके आनेपर अब पलायन करना ठीक नहीं। अब मन्त्रणा करनेसे क्या होगा, पानी निकल जाने पर, अब बाँध बाँधना क्या शोभा देगा। पितृव्य ! यदि विनाशसे आप भयभीत हैं तो मुझे युद्धमें दूसरा उत्तर साक्षी समझना ! एक तोयदवाहन (मेघवाहन) ही पर्याप्त है। भानुकर्ण और पंचानन यहीं रहें। मय, मारीच और सहोदर भी रहें, और भी जो जो कायर हैं, वह भी रहें। यह मेरे लिए तो बहुत ही भला अवसर है। मैं आज-कल ही मैं युद्ध करूँगा ! जिसने आसाली विद्याका पतन किया, जिसने उद्यान उजाड़कर वनपालोंको भी मार डाला, अनुचरोंको भी आहत कर दिया और जिसने अक्षयकुमारको भी समाप्त कर दिया, उसे आज सिंहके पैरोंमें पड़े मृगकी तरह मैं किसी न किसी तरह नष्ट कर दूँगा। दूत समझकर युद्धस्थलमें यदि मैंने उसे न मारा तो कमसे कम पकड़कर तुम्हारे सामने लाकर रख दूँगा" ॥१–१०॥

[३] "और भी, शत्रुनाशक, अभिमानस्तम्भ हे तात ! मेरे वचन सुनो, यदि मैं रणमें उछलते हुए शत्रुको न पकड़ूँ तो

अहवइ लङ्केसरु किं परमेसरु वीसरिउ ।
अहवइ सुर-सुन्दरें गम्पि पुरन्दरें उत्थरिउ ॥२॥
तइयहुँ तेरम्बरें कुम्भ-णिरन्तरें धवल-धएँ ।
सिन्दूरुप्पङ्किएँ गिञ्जालङ्किएँ मत्तगएँ ॥३॥
संचोइय-रहवरें हिंसिय-हयवरें पत्तर-थट्टें ।
धणु-गुण-टङ्कारवें कलयल-रउरवें कुइय-भडें ॥४॥
आमेल्लिय-परियरें कड्ढिय-सरवरें गोन्द-करें ।
पडु-पडहउप्फालिएँ सद्द-वमालिएँ गहिर-सरें ॥५॥
रिउ-जय-सिरि-लुद्धएँ अमरिस-कुद्धएँ जुज्झ-मणें ।
सव्वल-हुलि-हूलहिँ सत्ति-तिसूलेंहिँ पहरणें ॥६॥
तहिँ तेहएँ साहणें हय-गय-वाहणें अब्भिडेंवि ।
साहेप्प व वर-करि धरिउ पुरन्दरि रहेँ चडेंवि ॥७॥
तहिँ इन्दइ घोसिउ णामु पगासिउ सुरवरेंहिँ ।
विज्जाहर-जक्खेंहिँ गन्धव-रक्खेंहिँ किण्णरेंहिँ ॥८॥
को एक्कें हणुवें अण्णु वि मणुवें को गहणु ।
रहेँ चडिउ तुरन्तउ जय-कारन्तउ परम-जिणु ॥९॥

घत्ता

हरि धुरेँ देप्पिणु धएँ चिन्धउ जणहोँ पेक्खन्ताहोँ ।
णिग्गउ इन्दइ णं सव्वमारु हणुवन्तहोँ ॥१०॥

[५]

पच्छएँ मेहवाहणो गहिय-पहरणो णिग्गओ तुरन्तो ।
णं जुअ-खएँ सणिच्छरो भरिय-मच्छरो अहर-विप्फुरन्तो ॥१॥
सो वि पधाइउ रहवरें चडियउ । णं केसरि-किसोरु णिक्खडियउ ॥२॥
संचल्लन्तएँ तोयदवाहणें । तूरइँ हयइँ असेस वि साहणें ॥३॥
सण्णज्झन्ति के वि रयणीयर । वर - तोमर - वाण-धणुवर-कर ॥४॥

देखना ? मैं तुम्हारे चरण छूता हूँ। हे लंकेश्वर परमेश्वर! क्या तुम वह बात भूल गये जब सुरसुन्दर इन्द्रपर आपने आक्रमण किया था। उस युद्धमें छत्र और धवल-ध्वजोंकी तो कोई गिनती ही नहीं थी। हाथी सिंदूर और गीतोंसे अंकुल हो रहे थे, रथ जुते हुए थे। घोड़े हींस रहे थे। सैन्यघटा प्रबल हो रही थी। धनुषकी डोरकी टंकार हो रही थी। कलकल शब्द हो रहा था। सैनिक कुपित थे। परिकर छोड़कर, और उत्तम तीर लेकर सैनिक तमतमा रहे थे। विजयश्रीके लालची और अमर्षसे भरे हुए उनका मन युद्धके लिए हो रहा था। सब्बल, हुलि, हलि, शक्ति और त्रिशूलसे सेना आक्रमण कर रही थी, वह अश्व, गज और वाहनोंसे भरपूर थी, ऐसे उस भयंकर युद्धमें रथपर आरूढ़ लड़ते हुए मैंने इन्द्रको उसी तरह पकड़ लिया था जैसे सिंहवर गजको पकड़ लेता है। और तब, सुरवरों, विद्याधर, यक्ष, गंधर्व, राक्षस और किन्नरोंने मेरा नाम इन्द्रजीत घोषित किया था? तो एक हनुमान और अन्य मनुष्योंको ग्रहण करनेमें कौन-सी बात है।" यह कहकर, वह मनमें जिनकी जय बोलता हुआ तुरंत रथपर चढ़ गया। रथकी धुरामें घोड़े जोतकर, विजयध्वज लेकर लोगोंके देखते-देखते इन्द्रजीत ऐसे निकल पड़ा मानो हनुमानको पकड़नेवाला ही हो ॥१–१०॥

[४] उसके पीछे, अस्त्र लेकर मेघवाहन भी तुरंत निकल पड़ा मानो युगका क्षय होनेपर मत्सरसे भरा कम्पिताधर शनैश्चर ही हो। वह भी रथपर चढ़कर दौड़ा मानो सिंहशावक ही निकल पड़ा हो। मेघवाहनके चलते ही सेनामें तूर्य बजा दिये गये। कितने ही निशाचर संनद्ध होने लगे, उनके हाथमें बाँधिया तूणीर, बाण और धनुष थे। उनके हाथोंमें खुली हुई पैनी तलवारें

के वि तिक्ख-खग्गुक्खय-हत्था । के वि गुरुहों ओणामिय-मत्था ॥५॥
के वि चडिय हिंसन्त-तुरङ्गेंहिं । के वि रसन्त-मत्त-मायङ्गेंहिं ॥६॥
के वि रहेंहिं के वि सिविया-जाणेंहिं । के वि परिट्ठिय पवर-विमाणेंहिं ॥७॥
आउच्छेप्पिणु के वि पिय-कन्तउ । को वि णिवारिउ रणें पइसन्तउ ॥८॥
केण वि णिय-कलत्तु णिब्भच्छिउ । 'एक्कु सु-सामि-कज्जु पइँ इच्छिउ' ॥९॥

घत्ता

अग्गाएँ इन्दइ पच्छाएँ रयणायर-साहणु ।
बीया-चन्दहों अणुलग्गु णाइँ तारायणु ॥१०॥

[५]

पुच्छिउ णियय-सारहि 'भणें महारहों णिवइँ काइँ जाइँ ।
कहि केत्तियइँ अत्थइँ रणहों सत्थइँ रहें चडावियाइँ' ॥१॥
तो एत्थन्तरें पभणइ सारहि । 'अत्थइँ अत्थि जेम सुहु पहरहि ॥२॥
चक्कइँ पञ्च सत्त वर-चावइँ । दस असिवरइँ अणिट्ठिय-गावइँ ॥३॥
बारह झस पण्णारह मोग्गर । सोलह लउडि-दण्ड रणें दुद्धर ॥४॥
वीस परसु चउवीस तिसूलइँ । कोन्तइँ तीस सत्तु-पडिकूलइँ ॥५॥
घण पणतीस चाल मसुणन्दा । बावण्णास तिक्ख अद्धेन्दा ॥६॥
सेल्लइँ सट्ठि खुरुप्पइँ सत्तरि । अण्णु वि कणय चडिय चउहत्तरि ॥७॥
असी तिसत्तिउ णवइ मुसुण्ढिउ । जाउ दिवें दिवें रण-रस-वड्ढिउ ॥८॥
सउ णारायहुँ जं परिमाणमि । अण्णहँ पुणु परिमाणु ण जाणमि ॥९॥

घत्ता

बारह णियलइँ सोलह विज्जउ रहें चडियउ ।
जेहिं धरिज्जइ समरङ्गणें इन्दु वि भिडियउ' ॥१०॥

[६]

तं णिसुणेवि रावणी जेत्थु पावणी तेत्थु रहें पयट्टो ।
णं मज्जाय-भेल्लणो पुहइ-रेल्लणो सायरो विसट्टो ॥१॥

थी। कोई भारसे मस्तक झुकाये हुए थे, कोई हँसते हुए घोड़ोंपर और कोई मद झरते हुए उन्मत्त हाथियोंपर, कोई रथ और शिविका यानपर, और कोई प्रवर विमानोंपर आरूढ़ हुए। कोई अपनी पत्नियोंसे मिल रहे थे, कोई रणमें जानेसे रोक लिया गया। किसीने अपनी पत्नीको यह कहकर डाँट दिया, "केवल एक स्वामी के कार्यकी इच्छा करो।" आगे इन्द्रजीत था और पीछे निशाचर की सेना। मानो दौजके चन्द्रके पीछे तारागण लगे हों ॥१–१०॥

[५] उसने सारथीसे कहा, "अरे महारथी हद हो गये? कहो कितने अस्त्र हैं, रणके सब हथियार रथपर चढ़ा लिये हैं न? इसपर सारथीने उत्तर दिया "देव! शीघ्र प्रहार कीजिये, पाँच चक्र और सात उत्तम धनुष हैं। अनिर्दिष्ट गर्ववाली, दस सुन्दर तलवारें हैं। बारह झस और पन्द्रह मुद्गर हैं। रणमें दुर्धर सोलह गदा हैं। बीस गदा और चौबीस त्रिशूल हैं, शत्रु-विरोधी तीस भाले हैं। पैंतीस घन फारक, बावन तीखे अर्धेन्दु, साठ सेलें, सत्तर सुरूपा और चौदह कणप चढ़े हुए हैं। अस्सी त्रिशक्ति, नब्बे भुसुंढि सौ-सौ बाणोंके परिमाणको जानता हूँ। और किसीका परिमाण मैं नहीं जानता। बारह निगड और सोलह विद्याएँ भी रथमें हैं, ये वे ही विद्याएँ थीं जो युद्धमें इन्द्रसे जा भिड़ी थीं ॥१–१०॥

[६] यह सुनकर इन्द्रजीतने उस ओर रथ बढ़वाया जहाँ हनुमान था। (वह रथ ऐसा लग रहा था) मानो धरतीको

परिवेढिउ मारुइ दुज्जएँहिँ । केवलु व अवहि-मणपज्जएँहिँ ॥२॥
जम्बू-दीवु व रयणायरेँहिँ । पञ्चाणणो व्व कुञ्जर-वरेँहिँ ॥३॥
लोयन्तउ व ति-पवणेँहिँ । दिवसाहिउ व्व णाइँ णव-घणेँहिँ ॥४॥
एक्कल्लउ सुहडु अणन्तु बलु । पप्फुल्लु तो वि तहोँ मुह-कमलु ॥५॥
परिसक्कइ थक्कइ उल्ललइ । हक्कारइ पहरइ दणु दलइ ॥६॥
आरोक्कइ ढुक्कइ ओत्थरइ । पवियम्भइ रुम्भइ वित्थरइ ॥७॥
ण वि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेँहिँ । जिह जिणु संसारहोँ कारणेँहिँ ॥८॥
हणुवहोँ पासेँहिँ परिभमइ बलु । णं मन्दर-कोडिहिँ उवहि-जलु ॥९॥

घत्ता

धरेँवि ण सक्कइ बलु सयलु वि उक्खय-पहरणु ।
मेरुहेँ पासेँहिँ परिभमइ णाइँ तारायणु ॥१०॥

[७]

धाइउ पवण-णन्दणो दणु विमद्दणो मल्लहोँ पुलइयङ्गो ।
हउ रहु रहवरेण गउ गयवरेण तुरएँण व तुरङ्गो ॥१॥
सुहडें सुहडु कबन्धु कबन्धें । धएँ धउ चिन्धु हउ चिन्धें ॥२॥
बाणें बाणु चाउ वर-चावें । खग्गें खग्गु अणिट्ठिय-गावें ॥३॥
चक्कें चक्कु तिसूलु तिसूलें । मुग्गरु मुग्गरेण हुलि हूलें ॥४॥
कणएँ कणउ मुसलु वर-मुसलें । कोन्तें कोन्तु रणङ्गणेँ कुसलें ॥५॥
सेल्लें सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पें । फलिहेँ फलिहु गय वि गय-रुप्पें ॥६॥
जन्तें जन्तु मन्तु पडिखलियउ । बलु रयणायरु जेम दरमलियउ ॥७॥
णासइ सयलोणामिय-मत्थउ । णिग्गइन्दु णिसुरउ णिरत्थउ ॥८॥
विवरामुहु ओहुल्लिय-वयणउ । भग्ग-मरप्फरु मउलिय-णयणउ ॥९॥

ठेलता हुआ मर्यादासे हीन समुद्र हो। दुर्जेय उनसे हनुमान उसी प्रकार घिर गया जिस प्रकार केवली अवधि और मनःपर्यय ज्ञानसे, जम्बूद्वीप समुद्रोंसे, सिंह गजोंसे, लोकांत तीन प्रकारके पवनोंसे, दिनकर नये जलधरोंसे घिरे रहते हैं। यद्यपि वह सुभट अकेला था, और शत्रुसेना अनंत थी, फिर भी उसका मुखकमल खिला हुआ था। वह कभी चलता, ठहरता, छलांग मारता, हुँकारता, प्रहार करता, कुचलता, अम्हाई लेता, क्रुद्ध होता, फैलता, दिखाई दे रहा था। प्रहारोंसे वह वैसे ही छिन्न-भिन्न नहीं हो रहा था जैसे सांसारिक कारणोंसे जिन छिन्न-भिन्न नहीं होते। हनुमानके चारों ओर सेना ऐसी घूम रही थी मानो मंदराचलके आस-पास समुद्रका जल हो। शस्त्र उठाये हुए भी वह सैन्यसमूह हनुमानको पकड़नेमें असमर्थ था। मानो मेरुके चारों ओर तारागण घूम रहे हों ॥१–१०॥

[७] तब राक्षससंहारक पवनपुत्र पुलकित होकर, सेनापर झपटा। रथवरसे रथको उसने आहत कर दिया, गजवरसे गजको, अश्वसे अश्वको, सुभटसे सुभटको, कबंधसे कबंधको, छत्रसे छत्रको, चिह्नसे चिह्नको, बाणसे बाणको, वरचापसे वरचापको, असिदिष्ट गर्ववाली ? तलवारसे तलवारको, चक्रसे चक्रको, त्रिशूलसे त्रिशूलको, मुद्गरसे मुद्गरको, हुलिसे हुलिको, कनकसे कनकको, मुसलसे मुसलको, रणके आंगनमें कुशल कोंतसे कोंतको, सेलसे सेलको, खुरुपासे खुरुपाको, फलिहसे फलिहको और गदासे गदाको और यंत्रसे आते हुए यंत्रको स्खलित कर दिया। सेनाको उसने उद्यानकी तरह ध्वस्त कर दिया। रथ और अश्वोंसे हीन, वे माथा झुकाये हुए थे। उनका मुख

घत्ता

वियलिय-पहरणु पासन्तु णिएँवि णिय - साहणु ।
रहवरु वाहेँवि थिउ अग्गएँ तोयदवाहणु ॥१०॥

[८]

रावण-राम-किङ्करा रणेँ भयङ्करा भिडिय विप्फुरन्ता ।
किउसुग्गीव-राहवा विजय-लाहवा णाइँ 'हणु' भणन्ता ॥१॥
बे वि पयण्ड बे वि सिआहर । वेण्णि वि अक्खय-तोण धणुद्धर ॥२॥
वेण्णि वि वियड-वच्छ पुलइय-भुअ । वेण्णि वि अञ्जण-मन्दोयरि-सुअ ॥३॥
वेण्णि वि पवण-दसाणण-णन्दण । वेण्णि वि दुद्दम - दाणव- मद्दण ॥४॥
वेण्णि वि पर - वल-पहरण-चड्डिय । वेण्णि वि जय-सिरि-वहु-अवरुण्डिय॥५॥
वेण्णि वि राहव-रावण- पक्खिय । वेण्णि वि सुरवहु-णयण-कडक्खिय॥६॥
वेण्णि वि समर-सएँहिँ जसवन्ता । वेण्णि वि पहु-सम्माणु सरन्ता ॥७॥
वेण्णि वि परम-जिणिन्दहोँ भत्ता । वेण्णि वि धीर वीर भय - चत्ता ॥८॥
वेण्णि वि अतुल मल्ल रणेँ दुद्धर । वेण्णि वि रस-वेस फुरियाहर ॥९॥

घत्ता

विहि मि महाहवु जो असुर-सुरेन्देँहिँ दीसइ ।
रावण - रामहँ सो तेहउ दुक्करु होसइ ॥१०॥

[९]

अमरिस-कुद्धएण जस-लुद्धएण जयसिरि-पसाहणेणं ।
पेल्लिउ विअ हणुवहो मेहवाहणं मेहवाहणेणं ॥१॥
'गम्पिणु जिणय-परक्कमु दरिसहि । जिह सक्कहि तिह उप्परि वरिसहि ॥२॥
तं णिसुणेप्पिणु विअ वियम्भिय । माया - पाउस - लीलारम्भिय ॥३॥
कहिँ जि मेह-दुग्गयं । सुरासहं समुग्गयं ॥४॥
कहिँ जि विज्जु-सज्जियं । घणेहिँ कं विसज्जियं ॥५॥

पीला, और नेत्र मलिन थे। समूची सेना नष्ट हो रही थी। अपनी सेनाको इस प्रकार प्रहारोंसे खंडित होते देखकर, मेघवाहन सबसे आगे बढ़ा। वह बढ़िया रथपर आरूढ़ था ॥१-१०॥

[८] तब युद्धमें भीषण, तमतमाते हुए, राम और रावणके वे दोनों अनुचर भिड़ गये। मानो विजयके लिए शीघ्रता करनेवाले मायासुग्रीव और राम ही 'मारो-मारो' कह रहे हों। दोनों ही प्रचंड थे, दोनों ही विद्याधर थे, दोनों ही अक्षय तूणीर और धनुष धारण किये हुए थे। दोनोंके वक्षःस्थल विशाल थे और भुजाएँ पुलकित थीं। दोनों ही अंजना और मंदोदरीके पुत्र थे। दोनों ही पवनंजय और रावणके लड़के थे। दोनों ही दुर्दम दानवों का मर्दन करनेवाले थे। दोनों ही शत्रुसेनापर विजयलक्ष्मी रूपी वधूको बलात् लानेवाले थे। दोनों ही क्रमशः राम और रावणके पक्षके थे। दोनोंको ही सुर-बालाएँ देख रही थीं। दोनों ही सैकड़ों युद्धोंमें यशस्वी थे। दोनों ही प्रभुके सम्मानको निबाहनेवाले थे। दोनों ही परम जिनेन्द्रके भक्त थे। दोनों ही धीर-वीर और भयसे रहित थे। दोनों ही अतुल मल्ल, रणमें दुर्धर थे। दोनों ही आरक्त नेत्र और स्फुरिताधर थे। देव और असुरोंमें जो महायुद्ध देखा जाता है, राम और रावणमें वह वैसा ही दुष्कर युद्ध होगा ॥१-१०॥

[९] अमर्षसे क्रुद्ध, यशके लोभी जयश्रीका प्रसाधन करनेवाले मेघवाहनने हनुमानके ऊपर मेघवाहनी विद्या छोड़ी और कहा—"जाकर अपना पराक्रम बताओ, जैसे संभव हो वैसे उसके ऊपर बरसो।" यह सुनकर विद्या बढ़ने लगी, और मायावी मेघों की लीला उसने प्रारंभ कर दी। कहीं मेघोंसे दुर्गमता थी, कहीं इन्द्रधनुष निकल आया, कहीं बिजली तड़क रही थी, कहीं मेघों

कहिँ मि गोमाउ [illegible] ॥६॥
कहिँ वि मोर-केइयं । कलाव - पन्ति - कोइयं ॥७॥
इय णव-पाउस-कालु पदरिसिय । सिर-धोरहिँ जल-धारहिँ वरिसिय ॥८॥
वाय-सुएण वि वायवु पेसिउ । तेण घणागमु सयलु विणासिउ ॥९॥

घत्ता

स-धउ स-सारहि स-तुरङ्गु मोडिउ सन्दणु ।
पर एक्कल्लउ गउ णासेंवि दहमुह-णन्दणु ॥१०॥

[१०]

भग्गए मेहवाहणे णियय-साहणे इन्दई विरुद्धो ।
मत्त-गइन्द-गन्धेणं मय-समिद्धेणं केसरि व्व कुद्धो ॥१॥
भाकइ थाहि थाहि कहिँ गम्मइ । सिरइँ समोड्डेंवि रण-पडु रम्मइ ॥२॥
रहवर-तुरय-सारि - संघट्टणेंहिँ । मत्त - महग्गय - पासा-वट्टणेंहिँ ॥३॥
कर-सिर-छेअणेहिँ पहरण-दाणेंहिँ । मरण-गमेंहिँ खग्ग-चर-संघाणेंहिँ ॥४॥
सुरवहु-णट्ट-सएंहिँ - परिचड्डिउ । अम्बरु एउ जुज्झ-पडु मण्डिउ ॥५॥
जो पिहिँ जिणइ तासु लिह दिज्जइ । जाणइ - भरणउ मेहाविज्जइ ॥६॥
जिम रामणहों होउ जिम रामहों । हउँ पुणु कुइ लग्गउ णिय रामहों ॥७॥
जिह उज्जाणु भग्गु हउ अक्खउ । पहरु पहरु सिह आउ कुल-क्खउ ॥८॥
एम भणेवि समीरण-पुत्तहों । इन्दइ भिडिउ समरेँ हणुवन्तहों ॥९॥

घत्ता

गज्जिणि-पज्जिणि सङ्गामेँ परोप्परु भिडिया ।
उत्तर-दाहिण णं दिस-गइन्द अभिडिया ॥१०॥

[११]

पउम-भिडन्तएण असहन्तएण दहवयण-णन्दणेणं ।
सर चेयारि मुक्क अहहि विलुक्क उज्जाण-मद्दणेणं ॥१॥
जं वाणेंहिँ वाण विद्धंसिय । आमेंवि भीम गयासणि पेसिय ॥२॥
धाइय फुडुवन्ति हणुवन्तहों । करयलेँ लग्ग सु-कन्त व कन्तहों ॥३॥

से पानी गिर रहा था। कहीं पानीसे धूलरहित मूसल बहा जा रहा था। कहींपर मोर शब्द कर रहे थे और कहीं पर बगुलोंका वेग दिखाई दे रहा था। इस तरह उसने नई पावस लीलाका प्रदर्शन किया, स्थिर और स्थूल जलधाराएँ बरसीं। तब पवन-सुतने भी, वायव्य तीर भेजा। उससे समस्त घनागम नष्ट हो गया। ध्वज सारथी और तुरंगसहित रथ मुड़ गया, परंतु एक अकेला रावणपुत्र ही मारा गया ॥१–१०॥

[१०] मेघवाहन और अपनी सेनाके इस प्रकार नष्ट होने पर इन्द्रजीत एकदम विरुद्ध हो उठा मानो मत्त गजराजकी मद-भरी गंधसे सिंह ही क्रुद्ध हो उठा हो। उसने कहा, "हनुमान, ठहरो-ठहरो, कहाँ जाते हो। अपना सिर सजाकर रथपट सजाओ। बड़े-बड़े रथ और घोड़े ही उसमें पासे होंगे। महागजोंका चलना ही पासोंका चलना होगा। हाथ और सिरका छेदन, प्रहार, मरण, गमन और पलि संघात ही उसमें कूटद्यूत होंगे। यह युद्धपट इस प्रकार मंडित है। भाग्यसे जो इसमें जीते, सीता और भूमि उसके लिए ही प्रदान की जाय। जिस तरह तुमने उद्यान उजाड़ा, कुमार अक्षयको मारा, वैसे ही मुझपर प्रहार करो, प्रहार करो, मैं तुम्हारा कुलक्षय आ गया हूँ"। यह कहकर इन्द्रजीत युद्धमें हनुमानसे भिड़ गया। पवनपुत्र और रावणपुत्र इस तरह आपसमें भिड़ गये मानो उत्तर और दक्षिणके दिग्गज ही लड़ पड़े हों ॥१–१०॥

[११] असहनशील रावणपुत्रने पहले ही भिड़न्तमें चार बाण छोड़े, परंतु उद्यानको उजाड़नेवाले हनुमानने आठ बाणोंसे उन्हें लुप्त कर दिया। जब बाणोंसे बाण विध्वस्त हो गये तो उसने भीषण गदा घुमाकर फेंकी। घू-घू करती वह दौड़कर हनुमानके

पुणु वि पडिक्खउ मेल्लिउ मोग्गरु । किउ हणुवेण सो वि सय-सक्करु ॥४॥
पुणु वि णिसिन्दें चक्कु विसज्जिउ । जं संगाम-सएँहिँ अ-पराजिउ ॥५॥
कह वि ण लग्गु पवड्ढिय-हरिसहोँ । दुज्जण-वयणु जेम सप्पुरिसहोँ ॥६॥
जं जं इन्दइ पहरणु घत्तइ । तं तं णं सयखण्डु पयत्तइ ॥७॥
दहमुह-सुएँण णिरत्थीहूएँ । हसिउ स-विब्भमु रामहोँ दूएँ ॥८॥
चवइ महद्दँ समाणु ओलग्गउ । पहरहि णं उववासेंहिँ भग्गउ' ॥९॥

घत्ता

हणुवहोँ वयणेंहिँ सो इन्दइ कह वि पलित्तउ ।
भय-भीसावणु सिहि णाइँ सिणिद्धें सित्तउ ॥१०॥

[१२]

मरु मरु काइँ एण रणेँ णिप्फलेण सयवार-गज्जिएणं ।
किं लङ्गूल-दीहेण पवर-साहेण णाइ-विवज्जिएणं ॥१॥
णिव्विसेण किं पवर-भुअङ्गे । किमदन्तेण मत्त-मायङ्गे ॥२॥
किं जल-विरहिएण णवें मेहें । किं णीसब्भावेण सणेहें ॥३॥
किं धुत्त-यण-मज्झेँ दुवियड्ढें । कवणु गहणु किर कु-पुरिस-सण्ढें ॥४॥
जइ पहरमि तो घाएँ मारमि । किर तुहुँ दूउ तेण ण वियारमि' ॥५॥
एव भणेवि भुवणेँ जसवन्तहोँ । मेल्लिउ णाग-पासु हणुवन्तहोँ ॥६॥
तेहएँ अवसरेँ तेण वि चिन्तिउ । 'अज्जुमि रिउ संघारमि केत्तिउ ॥७॥
तो वरि बन्धावमि अप्पाणउ । जें बोल्लमि रावणेण समाणउ ॥८॥
एम भणेवि पडिच्छिउ एन्तउ । णाइँ सहोयरु साहउ देन्तउ ॥९॥

घत्ता

रण-रसियएँण कउसल्लु करेप्पिणु भुत्तें ।
सइँ भु व-पञ्जरु वेढाविउ पवणहोँ पुत्तें ॥१०॥

●

करतलमें ऐसे लगी मानो सुकांता अपने कांतसे ही जा लगी हो। तब उसने मुद्गर मारा, हनुमानने उसके भी सौ टुकड़े कर दिये। तब निशाचरने वह चक्र छोड़ा, जो सैकड़ों युद्धोंमें अजेय था। अत्यन्त हर्षित हनुमानको वह कहीं भी नहीं लगा वैसे ही जैसे दुर्जनके वचन सज्जनको नहीं लगते। इन्द्रजीत जो-जो अस्त्र छोड़ता, वह सौ-सौ टुकड़ोंमें हो जाता। रावणपुत्रके अंतमें निरस्त्र होनेपर रामके दूत हनुमानने विलासपूर्वक हँसते हुए कहा—"अच्छा हुआ जो तुम मुझसे लड़े, प्रहार करो, मानो उपवासोंसे भग्न हो गये हो ?" उसके वचनोंसे इन्द्रजीत शीघ्र भड़क उठा मानो आगमें घी पड़ गया हो ॥१-१८॥

[१९] उसने कहा, "मर-मर, युद्धमें इस तरह व्यर्थ बार-बार गरजनेसे क्या, नखरहित लम्बी पूँछके प्रवर सिंहसे क्या! बिना विषके विशाल सर्पसे क्या, बिना दाँतके हाथीसे क्या, बिना सद्भावके स्नेहसे क्या, आकाशमें निर्जल मेघसे क्या, धूर्तजनोंके बीच दुर्विदग्धसे क्या, कुपुरुषसमूहके द्वारा किसी बातके ग्रहणसे क्या, यदि प्रहार करूँ तो एक ही आघातमें मार डालूँ, परन्तु तुम दूत हो इसलिए विदीर्ण नहीं करता।" यह कहकर उसने भुवनमें यशस्वी हनुमानके ऊपर नागपाश फेंका। इसी अवसरपर हनुमानने अपने मनमें सोचा कि मैं कितना और शत्रुसंहार करूँ। तो उचित यही है कि मैं अपने आपको बँधवा दूँ। जिससे रावणके साथ बातचीत कर सकूँ।" यह विचारकर उसने आते हुए उस नागपाशका सगे भाईकी तरह आलिङ्गन कर लिया। रणरससे भरपूर कुशल हनुमानने कौशलपूर्वक अपने आपको घिरवा लिया ॥१-१०॥

[५४. चउवण्णासमो संधि]

हणुवन्त - कुमारु पवर - भुअङ्गोमालियउ ।
दहवयणहोँ पासु मलयगिरि व संचालियउ ॥

[१]

णव-णीलुप्पल-णयण-जुय सोएं णिरु संतत्त ।
'पवण-पुत्त पइँ विरहियउ कवणु परायइ वत्त' ॥१॥

सो अञ्जण - पवणञ्जयहुँ सुउ । अइरावय - कर - सारिच्छ - भुउ ॥२॥
संचालिउ लङ्कहेँ सम्मुहउ । णं णियल - णिबद्धउ मत्त - गउ ॥३॥
णिविसद्धें पुरेँ पइसारियउ । णिय - णामु णाइँ हक्कारियउ ॥४॥
एत्थन्तरेँ पाण - पओहरिहिँ । चलगेहिणि - लङ्कासुन्दरिहिँ ॥५॥
हर-एरउ जाउ पवेसियउ । हणुवन्तहोँ वत्त गवेसियउ ॥६॥
आयाउ ताउ ससि - वयणियउ । कुवलय - दल - दीहर - णयणियउ ॥७॥
जाणाविउ तुरियउ हर - हरेँहिं । पगलन्त - अंसु - गग्गर - गिरेँहिं ॥८॥
'सुणु माएँ काइँ दूसणु किउ । जं णिसियर - णाहहोँ पाण-पिउ ॥९॥
तं णन्दण - वणु संचूरियउ । किङ्कर - साहणु मुसुमूरियउ ॥१०॥
अक्खयहोँ जीउ विद्धंसियउ । घणवाहण - बलु संतासियउ ॥११॥
इन्दइण णवर अवमाणु किउ । बन्धेंवि दहवयणहोँ पासु णिउ' ॥१२

घत्ता

तं वयणु सुणेवि णीलुप्पलइँ व डोल्लियइँ ।
मायहेँ णयणाइँ बिण्णि मि अंसु-जलोल्लियइँ ॥१३॥

[२]

जं जसु दिण्णउ अण्ण-भवेँ जीवहोँ कहि मि पियासु ।
तासु कि णासेंवि सक्कियइ कम्महोँ पुव्व - कियासु ॥१॥

चौवनवीं संधि

कुमार हनुमान, मलयपर्वतकी तरह प्रवर भुजंगोंसे मालित (नाग-पाशसे बँधा हुआ और नागोंसे लिपटा हुआ) रावणके पास चला।

[१] यह देखकर नवनील कमलकी तरह नेत्रवाली शोकसे संतप्त सीतादेवी अपने मनमें सोचने लगीं, कि "पवनपुत्र, तुम्हें छोड़कर अब कौन मेरी कुशलवार्ता ले जा सकता है।" उधर वह ऐरावतकी तरह सूँड़वाला हनुमान लंकाके सम्मुख ऐसे ले जाया गया मानो साँकलोंसे बँधा हुआ मत्तगज ही हो। आधे ही पलमें उसे लंकानगरीमें प्रविष्ट कराया गया। इस तरह मानो उन्होंने अपने विनाशको ही ललकारा हो। इसी बीचमें पीन-पयोधरा सीतादेवी और लंकासुन्दरीने जो इरा और अचिराको हनुमानकी खबर लेनेके लिए भेजा था, वे दोनों लौटकर आ गईं। शीघ्र ही उन दोनोंने आकर भरते हुए आँसुओं और गद्गद स्वरमें चंद्रमुखी और कमलनयनी उन लोगोंको तुरंत कहा, "माँ, सुनो। उस दूतने क्या-क्या किया। लंकानरेशका जो प्राणप्रिय उद्यान था वह उसने उजाड़ दिया है, और समस्त अनुचरसेनाको मसल दिया है। कुमार अक्षयके प्राण हरण कर लिये और घन-वाहनकी सेनाको संत्रस्त कर दिया है। केवल इन्द्रजीत ही उसे अपमानित कर सका है। वह उसे बाँधकर रावणके पास ले गया है।" यह सुनकर सीतादेवीके नेत्र नीलकमलकी भाँति हिल उठे और उनसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी ॥१-१३॥

[२] वह अपने मनमें विचार करने लगी कि जीव चाहे कहीं हो, उसने पूर्वभवमें जो किया है, उसके पूर्वभवमें किये गये

पुणु रुवइ स-दुक्खउ जणय-सुअ । मालइ - माला - सारिच्छ- भुअ ॥२॥
'खल खुद्द पिसुण हय दड्ढ विहि । पूरन्तु मणोरह होउ दिहि ॥३॥
दसरह - कुडुम्बु जं छन्दरिउ । वलि जिह दस-दिसिहिं णं अवयरिउ ॥४॥
अण्णहिँ हउँ अण्णहिँ दासरहि । अण्णहिं लक्खणु अन्तरेँ उवहि ॥५॥
एहएँ वि कालेँ वसणावडिएँ । वहु- दुह- विओय- सोय- भरिएँ ॥६॥
जो किर णिक्खुड - महाहवहों । सन्देसउ पेसइ राहवहों ॥७॥
पइँ समरेँ सो वि वन्धाविय‍उ । वलहद्दहों पासु ण पाविय‍उ ॥८॥
अहवइ किं तुहु मि करहि खलइँ । एयइँ दुक्किय - कम्महों फलइँ' ॥९॥

घत्ता

अकुसल - वयणेहिँ सोय वि लङ्कासुन्दरि वि ।
णं रवि-किरणेहिँ तप्पइ जउण वि सुर-सरि वि ॥१०॥

[२]

मारुइ-णन्दण भणमि पइँ कुल-वल-जाइ-विहीण ।
तावस जे फल - भोयणा ते पइँ सेविय दीण' ॥१॥
एत्तहेँ वि सुहड - पहाणणहोँ । णिउ मारुइ पासु दसाणणहोँ ॥२॥
वहुसारेँ वि कलालाव किय । 'हे सुन्दर काइँ दु-वुद्धि थिय ॥३॥
चक्कउ कुसलत्तणु सिक्खियउ । अह उत्तमु कुलु ण परिक्खियउ ॥४॥
सुर-डामरु रावणु मुएँ वि मइँ । परियरिउ वराय‍उ रामु पइँ ।
पञ्चाणणु मेल्लेँवि धरिउ गउ । जिणु मुएँवि पसंसिउ पर-समउ ॥६॥
जो जसु भायणु सो तं धरइ । कइ णालियरेण काइँ करइ ॥७॥
जो सयल-कालु सुपहुत्तएँहिँ । मणि-कडय - मउड-कडिसुत्तएँहिँ ॥८॥
पुज्जिज्जहि सो एम्वहिँ धरिउ । लक्खिज्जइ जेम जण - परियरिउ ॥९॥

घत्ता

मइँ मुएँ वि सु-सामि मारुइ कियइँ जाइँ खलइँ ।
इह-लोएँ जेँ ताइँ पत्तु कु-सामि-सेव-फलइँ ॥१०॥

कर्मका नाश कौन कर सकता है ? जनकसुता इस प्रकार फूट-फूटकर रोने लगीं। उनकी भुजाएँ मालती मालाकी तरह थीं। वह बोलीं, "हे खल क्षुद्र पिशुन कठोरविधि, तुम भाग्यवश अपना मनोरथ पूरा कर लो। दशरथ-कुटुम्बको तुमने तितर-बितर कर दिया है, । बलिकी तरह तुमने उसे दशों दिशाओंमें बिखेर दिया है। मैं कहीं हूँ, राम कहीं हैं। बीचमें (इतना बड़ा समुद्र) है। अपने इष्ट लोगोंके वियोग और शोषसे पूर्ण आपत्तिकालमें जो महायुद्धोंमें समर्थ रामके पास मेरा संदेश ले जाता, तुमने युद्धमें उसे भी बँधवा दिया। अथवा क्या तुम भी कुछ कर सकते हो, नहीं कदापि नहीं, यह मेरे पापकर्मोंका फल है।

[३] इधर, वे लोग (इन्द्रजीत आदि) हनुमानको सुभटश्रेष्ठ रावणके पास ले गये। उसने बैठाकर उससे वार्तालाप किया। और कहा, "हे हनुमान, मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कुल, बल, जातिसे विहीन है, जो फलभोजी दीन-हीन तापस है, तुमने उसकी सेवा की। हे सुंदर, आखिर तुम्हें यह दुर्बुद्धि क्यों हुई। तुमने अच्छा दूतपन सीखा यह। अथवा अरे तुमने कुल तककी परीक्षा नहीं की। देवभयंकर मुझ रावणको छोड़कर तुमने उस अभागे रामकी शरण ग्रहण की। (सचमुच) तुमने सिंह छोड़कर गधेको पकड़ा। जिनवरको छोड़कर तुमने पर-सिद्धान्तकी प्रशंसा की। फिर जो जिसके पात्र होता है, उसमें वही वस्तु रखी जाती है। बताओ, नारियल (इसकी खोपड़ी)का क्या होता है। जो (तुम) सदैव प्रभुताके गुणों चूड़ामणि, कटक, मुकुट और कटिसूत्रोंसे सम्मानित किये जाते थे वही तुम घेरकर लोगोंके द्वारा चोरकी भाँति पकड़ लिये गये। मुझ जैसे उत्तम स्वामीको छोड़कर हे हनुमान, तुमने जो कुछ किया है। तुमने कुस्वामीकी सेवाके उस फलको यहीं प्राप्त कर लिया है ॥१-१०॥

[४]

रावण सुहु भुञ्जन्ताहँ लङ्काउरि जिह णारि ।
आणिय सीय ण गहइ पइँ णिय-कुल-वंसहों मारि' ॥१॥

अण्णु मि जो दुग्गइ-गामिएँहिं । कुकलत्त - कुमित्त-कुसामिएँहिं ॥२॥
कुपरियण-कुमन्ति कुसेवएँहिं । कुतित्थ - कुधम्म - कुदेवएँहिं ॥३॥
आएहिँ असेसेंहिँ भावियउ । सो कवणु ण आवइ पावियउ' ॥४॥
तं वयणु सुणेवि कइद्धएँण । णिब्भच्छिउ वेहाविद्धएँण ॥५॥
'किर काइँ दसाणण हसहि मइँ । अप्पणु सलग्घु किउ काइँ पइँ ॥६॥
परदारु होइ चिलिसावणउ । णाणाविह - भय - दरिसावणउ ॥७॥
दुक्खहुँ पोट्टलु कुल लञ्छणउ । इहलोय - परत्त - विणासणउ ॥८॥
दुज्जण - धिक्कार - पडिच्छणउ । घरु अयसहों जम्महों लञ्छणउ ॥९॥

घत्ता

संसारहों वारु दिढु कवाडु सासय-घरहों ।
लङ्कहँ वि विणासु अकुसलु अण्ण-भवन्तरहों ॥१०॥

[५]

जोव्वणु जीविउ धणिय घरु सम्पय-रिद्धि णरिन्द ।
भावेंवि सुहु अणिच्चु तुहुँ पइ वि सीय णिसिन्द ॥१॥

पर-धणु पर-दारु मज्ज-वसणु । आयरइ को वि जो मूढ-मणु ॥२॥
तुहुँ पइँ सयलागम-कल-कुसलु । मुणि-सुव्वय - चलण-कमल-भसलु ॥३॥
जाणन्तु ण अप्पहिं जणय-सुअ । अद्धुव-अणुवेक्ख काइँ ण सुअ ॥४॥
को कासु सव्वु माया-तिमिरु । जल-बिन्दु जेम जीविउ अ-थिरु ॥५॥
सम्पत्ति समुद्द - तरङ्ग - णिह । सिय चञ्चल विज्जुल-लेह जिह ॥६॥
जोव्वणु गिरि-णइ-पवाह-सरिसु । पेम्मु वि सुविणय-दंसण-सरिसु ॥७॥
धणु सुर-धणु-रिद्धिहेँ अणुहरइ । खणें होइ खणद्धें ओसरइ ॥८॥
झिज्जइ सरीरु आउसु गलइ । जिह गउ जल-णिवहु ण संभवइ ॥९॥

[४] हनुमानने तब उत्तरमें कहा, "तुम लंका नगरीका नारीकी तरह सुन्दर भोग करो। किन्तु यह तुम सीता देवी नहीं, किन्तु साक्षात् अपने कुलको मारी (विनाश) लाये हो।" यह सुनकर रावणने कहा, "और जो दुर्गतिगामी, कुकलत्र, कुमंत्री, कुस्वामी और कुपरिजन, कुमंत्री, कुसेवक, कुतीर्थ कुधर्म, और कुदेव इन सबकी भावना करनेवाला होता है, कहो उसे कौनसी आपत्ति नहीं होती।" तब क्रुद्ध हनुमानने उसकी निंदा करते हुए कहा, "परस्त्री घृणाजनक और नाना प्रकारके भयों को दिखाने वाली होती है। वह दुखकी पोटली और कुलकी कलंक है। इहलोक और परलोकका नाश करने वाली है। वह दुर्जनोंके धिक्कारसे भरी हुई होती है, वह अयशका घर, जीवनका लांछन है। वह संसारका द्वार और मोक्षका किवाड़ है। वह लंकाका विनाश और जन्मान्तरका अकल्याण है ॥१-१०॥

[५] हे राजन्, यौवन, जीवन, धन, घर, सम्पदा और ऋद्धि इन सबको तुम अनित्य समझ कर सीताको वापस भेज दो। कोई मूर्ख जन भी पर धन, परदारा और मद्य व्यसनका आदर नहीं करता। तुम तो फिर सकल आगम और कलाओंमें निपुण हो। मुनिसुव्रत भगवानके चरणकमलोंके भ्रमर हो। जानते हुए भी सीताका अर्पण नहीं कर रहे हो। क्या तुमने अनित्य प्रेक्षा को नहीं सुना। कौन किसका है, यह सब मायाका अंधकार है। जीवन जलकी बूँदकी तरह अस्थिर है। सम्पत्ति समुद्रकी लहरकी तरह है। लक्ष्मी बिजलीकी रेखाकी तरह चंचला है। यौवन पहाड़ी नदीके प्रवाहके समान है। प्रेम भी स्वप्नदर्शनकी तरह है। धन इंद्रधनुषके समान है। वह क्षणमें होता है और क्षणमें विलीन हो जाता है। शरीर छीज रहा है और आयु गल रही है।

घत्ता

घरु परियणु रज्जु सम्पय जीविउ सिय पवर ।
एयइँ अ-थिराइँ एक्कु मुएप्पिणु धम्मु पर ॥१०॥

[६]

'रावण अ-सरणु सम्भरेंवि पइट्ठि रामहों सीय ।
णं तो मम्पइ सयल सुय पइँ तम्बारहों णाय' ॥१॥

अहो केकसि-रयणासवहों सुय । असरण-अणुवेक्ख । काइँ ण सुय ॥२
जावेंहिँ जीवहों दुक्कइ मरणु । तावेंहिँ जगें णाहिँ को वि सरणु ॥३
रक्खिज्जइ जइ वि भयङ्करेंहिँ । असि-लउडि-विहत्थेंहिँ किङ्करेंहिँ ॥४
मायङ्ग - तुरङ्गम - सन्दणेंहिँ । कमलासण - रुद्द - जणद्दणेंहिँ ॥५
जम-वरुण - कुबेर - पुरन्दरेंहिँ । गण-जक्ख - महोरग - किण्णरेंहिँ ॥६
पइसरइ जइ वि पायालयलेँ । गिरि-गुहिलेँ हुआसणेँ उवहि-जलेँ ॥७
रणेँ वणेँ लिणेँ णहयलेँ सुर-भवणेँ । रयणप्पहाइ - दुग्गइ - गमणेँ ॥८
मञ्जूस-कूवें घर - पञ्जरएँ । कड्ढिज्जइ तो वि मरणन्तरएँ ॥९

घत्ता

तहिँ असरण-कालेँ जीवहों अण्णु ण को वि धरु ।
पर रक्खइ एक्कु अहिंसा-लक्खणु धम्मु पर ॥१०॥

[७]

रावण गय-घड भड-णिवहु घरु परियणु तुहिँ रज्जु ।
एत्थिउ तुहुँ वि आसि तुहुँ पर मुहु दुक्खु सहेज्जु ॥१॥

अहो रावण णव-कुवलय-दलक्ख । किं ण सुहय एकत्ताणुवेक्ख ॥२
जगें जीवहों णत्थि सहाउ को वि । दढ बन्धइ मोह-वसेण तो वि ॥३
"हउ घरु इउ परियणु इउ कलत्तु" । णउ बुज्झहिँ जिह सयलेहिँ चत्तु ॥४
एक्केण कणेव्वउ विहुर - कालें । एक्केण वसेव्वउ जल-वमालें ॥५
एक्केण वसेव्वउ तहिँ णिगोएँ । एक्केण रुएव्वउ पिय-विओएँ ॥६

गत जल-समूहकी तरह वह तुम्हारा नहीं होता। घर, परिजन, राज्य, सम्पदा, जीवन और प्रवर लक्ष्मी ये सब अस्थिर हैं। केवल एक धर्मको छोड़कर ॥१-१०॥

[६] हे रावण, तुम अशरण अनुप्रेक्षाका चिंतन कर सीताको भेज दो। नहीं तो तुम्हारी संपदा और समस्त सुख नाशको प्राप्त हो जायँगे। अरे कैकशी और रत्नाश्रवके पुत्र, क्या तुमने अशरण अनुप्रेक्षा नहीं सुनी। जब जीवको मृत्यु पास आ जाती है, तब उसे कोई शरण नहीं मिलती चाहे तलवार और गदा हाथमें लेकर बड़े-बड़े भीषण किंकर, गज, अश्व, रथ, ब्रह्म, विष्णु, महेश, यम, वरुण, कुबेर, पुरन्दर, गण, यक्ष, नागराज और किन्नर भी इसकी रक्षा करें। चाहे वह, पातालतल, गिरि-गुफा, आग, समुद्रजल, रण-वन, तृण, नभतल, सुरभवन, दुर्गतिगामी रत्नप्रभ नरक, मंजूषा, कुआ या घररूपी पिंजड़ेमें प्रवेश करे, एक क्षणमें उसे निकाल लिया जाता है। अशरण कालमें जीवका और कोई नहीं होता है। केवल एक अहिंसामूलक धर्म (जिन) ही रक्षा करता है ॥१-१०॥

[७] रावण, गजघटा, भट समूह, घर-परिजन, पंडित और राज्य ये सब तुझे छोड़ देंगे। केवल एक तूँ ही सुख-दुख सहेगा। ओ नवनीलकमलनयन रावण, क्या तुमने एकत्व अनुप्रेक्षाको नहीं सुना। मोहके वशसे कोई कितनी भी रति करे, परन्तु इस संसारमें जीवका कोई भी सहायक नहीं है। यह घर, ये परिजन यह स्त्री, नहीं देखते, इनको सबने छोड़ दिया। विधुरकालमें अकेले क्रन्दन करोगे, ज्वालमालामें अकेले बसोगे। निगोदमें अकेले रहोगे, प्रिय वियोगमें अकेले ही रोओगे, कर्मसमूह और मोहके

एक्केण भवेव्वउ भव-समुद्दें । कम्मोह-मोह-जलयर-रउद्दें ॥७॥
एक्कहों जें दुक्खु एक्कहों जें सुक्खु । एक्कहों जें बन्धु एक्कहों जें मोक्खु ॥८॥
एक्कहों जें पाउ एक्कहों जें धम्मु । एक्कहों जें मरणु एक्कहों जें जम्मु ॥९॥

घत्ता

तहिं तेहएँ विहुरें सयण-सयाइँ ण ढुक्कियइँ ।
पर बेण्णि सया इ जीवहों दुक्किय-सुक्कियइँ ॥१०॥

[८]

'रावण जुत्ताजुत्त तुहुँ चिन्तेंवि णियय-मणेण ।
अण्णु सरीरु वि अण्णु जिउ विहडइ एउ खणेण' ॥१॥
पुणु वि पईविउ उववण-मद्दणु । कहइ हियत्तणेण मरु-णन्दणु ॥२॥
अण्णत्ताणुवेक्ख दहगीवहों । अण्णु सरीरु 'अण्णु गुणु जीवहों ॥३॥
अण्णहिं तणउ धण्णु धणु जोव्वणु । अण्णहिं तणउ सयणु घरु परियणु ॥४॥
अण्णहिं तणउ कलत्त लइज्जइ । अण्णहिं तणउ तणउ उप्पज्जइ ॥५॥
कइ वि दिवस गय मेलावक्कें । पुणु विहडन्ति मरन्तें एक्कें ॥६॥
अण्णहिं जीउ सरीरु वि अण्णहिं । अण्णहिं घरु घरिणि वि अण्णण्णहिं ॥७॥
अण्णहिं तुरय महागय रहवर । अण्णहिं आण-पडिच्छा णरवर ॥८॥
एहएँ अण्ण-भवन्तर-वन्तरें । अत्थ-विढत्तिएँ होइ खणन्तरें ॥९॥

घत्ता

जणु कज्जवसेण मुह-रसियउ पिय-जम्पणउ ।
जिण-धम्मु मुएवि जीवहों को वि ण अप्पणउ ॥१०॥

[९]

चउ-गइ-सायरें दुह-पवरें जम्मण-मरण-रउद्दें ।
अप्पहिं सिय स गाहु करि मं पडि णरय-समुद्दें ॥१॥
भो भुवण-भयङ्कर दुण्णिरिक्ख । सुणु चउगइ संसाराणुवेक्ख ॥२॥

जलचरोंसे भयंकर भवसागरमें अकेले ही भटकोगे। जीवको अकेले ही दुख, अकेले ही सुख, भोगना पड़ता है, अकेले ही उसे बन्ध और मोक्ष होता है। अकेले ही उसको पाप धर्मका बन्ध होता है। अकेले उसीका ही मरण और जन्म होता है। उस संकटके समयमें कोई भी स्वजन नहीं आते, केवल दो ही पहुँचते हैं, वे हैं जीवके सुकृत और दुष्कृत ॥१-१०॥

[८] हे रावण, तुम अपने मनमें उचित और अनुचितका विचार करो, यह शरीर अलग है और जीव अलग। यह एक क्षणमें नष्ट हो जायगा। बार-बार उपवनको उजाड़नेवाले हनुमानने हृदयसे रावणको अन्यत्व-अनुप्रेक्षा बताते हुए कहा—"शरीर अन्य है और जीवका स्वभाव अन्य है, धन-धान्य, यौवन दूसरेके हैं। स्वजन, घर, परिजन भी दूसरेके हैं। स्त्री भी दूसरेकी समझना। तनय भी दूसरेका उत्पन्न होता है। यह सब कुछ ही दिनोंका मिलाप है, फिर मरकर सब एकाकी भटकते फिरते हैं। जीव और शरीर भी अन्यके ही रहते हैं, घर भी दूसरेका, गृहिणी भी दूसरेकी, तुरग, महागज और रथवर भी अन्यके ही जाते हैं। आज्ञाकारी नरवर भी दूसरेके ही रहते हैं। इस दूसरे जन्मांतरमें जीवका अर्थनाश एक क्षणमें ही हो जाता है। लोग कार्यके वशसे (अपने मतलबसे) मुँहके मीठे और प्रिय बोलनेवाले होते हैं, परंतु जिनधर्मको छोड़कर, इस जीवका और कोई भी अपना नहीं है ॥१-११॥

[९] सीताको अर्पित कर दो। उसे ग्रहण मत करो, नहीं तो, दुखसे भरपूर, जन्म और मरणसे भयंकर चार गतियोंके समुद्र, और नरक-सागरमें पड़ोगे। हे भुवनभयंकर और दुर्दर्शनीय

जल - थल - पायाल - णहङ्गणेहिँ । सुर-णरय- तिरय - मणुअत्तणेहिँ ॥३॥
णर - णारि - णपुंसय - रूवएहिँ । विस-मेसें हिँ महिस- पसूअएहिँ ॥४॥
मायङ्ग - तुरङ्ग - विहङ्गमेहिँ । पञ्चाणण - मोर - भुअङ्गमेहिँ ॥५॥
किमि- कीड - पयङ्गेन्दिन्दिरेहिँ । विस-वहुल- गहन्दें (?) मच्छरेहिँ ॥६॥
हम्मन्तु हणन्तु मरन्तु जन्तु । कलुणइँ रुअन्तु लवन्तु खन्तु ॥७॥
गेण्हन्तु मुअन्तु कलेवराइँ । अणुहवइ जीउ पावहाँ फलाइँ ॥८॥
घरिणि वि माय माया वि घरिणि । भइणि वि धीय धीया वि भइणि ॥९॥
पुत्तो वि बप्पु बप्पो वि पुत्तु । सत्तो वि मित्तु मित्तो वि सत्तु ॥१०॥

घत्ता

एहएँ संसारे रावण सोक्खु कहिं तणउ ।
अप्पिज्जउ सीय सीलु म खण्डहि अप्पणउ ॥११॥

[१०]

चउदह रज्जुय दहवयण भुअणेँ वि सोक्ख- सयाइँ ।
तो इ ण हुइय तित्ति तउ अप्पहि सीय ण काइँ ॥१॥

अहोँ सुर-समर-सएँहिँ सवडम्मुह । तइलोकाणुवेक्ख सुणि दहमुह ॥२॥
जं तं णिरवसेसु आयासु वि । तिहुवणु मज्झें परिट्ठिउ तासु वि ॥३॥
आइ णिहणु णउ केण वि धरियउ । अच्छइ सयलु वि जीवहँ भरियउ ॥४॥
पहिलउ वेत्तासण-अणुमाणें । थियउ सत्त-रज्जुअ-परिमाणें ॥५॥
वीयउ झल्लरि-रूवायारें । थियउ एक्क-रज्जुव-विच्छारें ॥६॥
तइयउ भुवणु मुरव-अणुमाणें । थियउ पञ्च-रज्जुअ-परिमाणें ॥७॥
मोक्खु वि विवरिय-छत्तायारें । थियउ एक्क-रज्जुअ-विच्छारें ॥८॥
इय चउदह-रज्जुएँहिँ णिबद्धउ । तिहुअणु तिहिँ पवणेँहिँ उद्दद्धउ ॥९॥

रावण, तुम चारगतिवाली संसार-अनुप्रेक्षा सुनो। जल-थल, पाताल और आकाशतलमें स्वर्ग नरक तिर्यंच और मनुष्य ये चारगतियाँ हैं, नर-नारी और नपुंसक आदिरूप, वृषभ, मेष, महिष, पशु, गज, अश्व और पक्षी, सिंह, मोर और साँप, कृमि, कीट, पतंग और जुगनू, वृष, वायस, गयंद और मंजारी ? (इन सब रूपोंमें) जीव उत्पन्न होता है। वह मारता है, पिटता है, मरता है, जाता है, करुण रोता है, खाता है, खाया जाता है, शरीरोंको छोड़ता है, ग्रहण करता है। इस प्रकार जीव अपने पापका फल भोगता है। कभी स्त्री माँ बनती है, और माँ स्त्री, बहन लड़की बनती है, और लड़की बहन। पुत्र बाप बनता है और बाप पुत्र बनता है। शत्रु भी मित्र बनता है और मित्र शत्रु। इस संसारमें, 'हे रावण,' सुख कहाँ है। सीता सौंप दो, अपना शील खंडित मत करो" ॥१–११॥

[१८] हे रावण, चौदहराजू इस विश्वमें तुमने सैकड़ों भोगों का अनुभव किया है। फिर भी तुम्हें तृप्ति नहीं हुई। सीता क्यों नहीं सौंप देते ? अहो सैकड़ों देवयुद्धोंमें अभिमुख रहनेवाले रावण, त्रिलोक-अनुप्रेक्षा सुनो। यह जो निरवशेष आकाश है, उसके बीचमें त्रिभुवन प्रतिष्ठित है, अनादिनिधन वह, किसी भी वस्तुपर आधारित नहीं है। सबका सब जीवराशिसे भरा हुआ है, पहला, वेत्रासनके समान सात राजू प्रमाण है, दूसरा लोक झल्लरीके आकारका एक राजू विस्तारवाला है, और तीसरा लोक, पाँचराजू प्रमाण मृदंगके आकारका है, मोक्ष भी छत्र और आकारसे रहित, एक राजू विस्तारवाला है। इस प्रकार चौदह-राजुओंसे निबद्ध, तीनों लोक तीन पवनोंसे घिरे हुए हैं। उसीके

घत्ता

तहिँ मज्झेँ असेसु जलु थलु गयण-कडक्खियउ ।
तं कवणु पएसु जं ण वि जीवेँ भक्खियउ ॥१०॥

[११]

वसेँ वि चिलिचिलेँ देह-घरेँ खणेँ भङ्गुरएँ असारेँ ।
रावण सोयहेँ लुद्धु कुडुं जिह अप्पउलउ कवारेँ ॥१॥
अहोँ अहोँ सयल-भुवण-संतावण । असुइत्ताणुवेक्ख सुणि रावण ॥२॥
माणुस-देहु होइ विणि-विट्टलु । सिरेहिँ णिबद्धउ हड्डहुँ पोट्टलु ॥३॥
चलु कु-जन्तु मायमउ कुहेडउ । मलहोँ पुञ्जु किमि-कीडहुँ मूडउ ॥४॥
पूअगन्धि रुहिरामिस-भण्डउ । चम्म-रुक्खु दुग्गन्ध-करण्डउ ॥५॥
अन्तहुँ पोट्टलु पक्खिहुँ भोयणु । बाहिहिँ भवणु मसाणहोँ भायणु ॥६॥
आयएहिँ कलुसिउ जहिँ अङ्गउ । कवणु पएसु सरीरहोँ चङ्गउ ॥७॥
सुण्णउ सुण्णहरु व दुप्पेच्छउ । कलिथलु पच्छाहर-सारिच्छउ ॥८॥
जोव्वणु गन्धहोँ अणुहरमाणउ । सिरु णालियर-करङ्क-समाणउ ॥९॥

घत्ता

एहएँ असुइत्तेँ अहोँ लङ्काहिव भुवण-रवि ।
सोयहेँ चरि तो वि हुउ विरत्तीभाउ ण वि ॥१०॥

[१२]

पञ्च-पयारेंहिँ दुहवयण जीवहोँ ढुक्कइ पाउ ।
सुहु दुक्खहुँ जं जेम ठिय तं भुञ्जेवउ साउ ॥१॥
भो सुरकरि-कर-संकास-भुअ । आसव-अणुवेक्ख काइँ ण सुअ ॥२॥
वेढिज्जइ जीउ मोह-मएँहिँ । पञ्चाणणु जेम मत्त-गएँहिँ ॥३॥
रयणायरु जिह सरि-वाणिएँहिँ । पञ्च-विहेँहिँ णाणावरणिएँहिँ ॥४॥
णव-दंसणेहिँ विहिँ वेयणेहिँ । अट्ठावीसहिँ वामोहणेहिँ ॥५॥

बीचमें समस्त जल-थल दिखाई देते हैं, इसमें ऐसा कौन-सा प्रदेश है जिसका जीवने भक्षण न किया हो ॥१-१०॥

[११] इस घिनौने क्षणभंगुर और असार सीताके देह रूपी घरमें तुम उसी तरह लुब्ध हो जिस तरह कुत्ता मांसमें लुब्ध होता है ? अरे-अरे सकल भुवनसंतापकारी रावण, तुम अशुचि-अनुप्रेक्षा सुनो, यह मनुष्यदेह घृणाकी गठरी है। हड्डियों और नसोंसे यह पोटली बँधी हुई है। चंचल कुजन्तुओंसे भरी, कुत्सित मांसपिंडवाली, नश्वर मलका ढेर, कृमि और कीड़ोंसे व्याप्त, पीपसे दुर्गन्धित, रुधिर और मांसके पात्र, रूखे चमड़ेवाली और दुर्गन्धकी समूह है। अन्तमें यह पोटली, पक्षियोंका भोजन, व्याधियोंका घर और श्मशानका पात्र बनती है। पापसे इसका एक-एक अंग कलुषित है, भला बताओ शरीरका कौन-प्रदेश अमर है। सूने घरकी तरह वह सूना और अदर्शनीय है। इसका कटितल 'पच्छाहर' ? के समान है, यौवन व्रणके अनुरूप है, और सिर नारियलकी खोपड़ीकी तरह है। अरे विश्वरवि लंका-नरेश, शरीरके इतना अपवित्र होने पर भी, सीताके ऊपर तुम्हारा विरक्तिभाव नहीं हो रहा है ॥१-१०॥

[१२] हे दसमुख ! जीवको पाँच प्रकारके पाप लगते हैं। जो जिस तरह सुख-दुखमें होता है, उसे वैसा भोग सहन करना पड़ता है। अरे ऐरावतकी सूँड़की तरह प्रचण्डबाहु रावण, क्या तुमने आस्रव-अनुप्रेक्षा नहीं सुनी। यह जीव, मोह-मदसे वैसे ही घेर लिया जाता है, जैसे मत्त गज सिंहको घेर लेते हैं, या नदियोंकी धाराएँ समुद्रको घेर लेती हैं,। पाँच प्रकारका ज्ञाना-वरणीय, नौ प्रकारका दर्शनावरणीय, दो प्रकारका वेदनीय, अट्ठाईस

चउ-विहेंहिं आउ-परिमाणएँहिं । ते णउइ-पयारेंहिं णामएँहिं ॥६॥
विहिं गोत्तेहिं मङ्गल-समुमलेहिं । पञ्चहि मि अन्तराइय-खलेंहिं ॥७॥
खाइज्जइ छिज्जइ भिज्जइ वि । मारिज्जइ तज्जइ पिज्जइ वि ॥८॥
णिट्ठिज्जइ बज्झइ मुच्चइ वि । जन्तेहिं दलिज्जइ रुज्झइ वि ॥९॥

घत्ता

णिय-कम्म-वसेण, जम्मण-मरणोहुल्लएँण ।
विसहेव्वउ दुक्खु जेम गइन्दें बद्धएँण ॥१०॥

[१३]

भणमि सणेहें दहवयण जाणेंवि एउ असारु ।
संवरु भावेंवि णियय-मणें वज्जिज्जउ पर-दारु ॥१॥

भो सयल-भुअण-लच्छी-णिवास । संवर-अणुवेक्खा सुणि दसास ॥२॥
रक्खिज्जइ जीउ स-रागु केम । णउ ढुक्कइ अयस-कलङ्कु जेम ॥३॥
दिज्जइ रक्खणु जो जासु मल्लु । कामहों अ-कामु सल्लहों अ-सल्लु ॥४॥
दम्भहों अ-दम्भु दोसहों अ-दोसु । पावहों अ-पाउ रोसहों अ-रोसु ॥५॥
हिंसहों अहिंस मोहहों अ-मोहु । माणहों अ-माणु लोहहों अ-लोहु ॥६॥
णाणु वि अण्णाणहों विढ-कवाडु । मच्छरहों अ-मच्छरु दप्प-साडु ॥७॥
अ-विओउ विओयहों दुण्णिवारु । जसु अयसहों दुप्पइसारु वारु ॥८॥
मिच्छत्तहों दिढ-सम्मत्त-पयरु । भेल्लिज्जइ जेम ण देह-णयरु ॥९॥

घत्ता

परियाणेंवि एउ णव-णीलुप्पल-णयण-जुय ।
वरि रामहों गम्पि करें लाइज्जउ जणय-सुय ॥१०॥

[१४]

रावण णिज्जर भावि तुहुँ जा दय-धम्महों मूलु ।
तो वरि जाणवि परिहरहि किज्जइ तहों अणुकूलु ॥१॥

लङ्काहिव दणु-दुग्गाह-गाह । णिज्जर-अणुवेक्खा णिसुणि णाह ॥२॥

प्रकारका मोहनीय, चार प्रकारका आयुकर्म, नौ प्रकारका नामकर्म, दो प्रकारका गोत्रकर्म और शुभ-अशुभ पाँच प्रकारका अन्तराय कर्म। इन सब कर्मोंसे जीव आच्छन्न होता, छीजता, मिटता, मारा, खाया और पिया जाता है। जन्म-मरणसे बँधे हुए इस जीवको अपने कर्मोंके वशीभूत होकर उसी प्रकार दुख उठाना पड़ता है जिस प्रकार बंधनमें पड़ा हुआ गज उठाता है ॥१-१०॥

[१३] रावण! मैं स्नेहपूर्वक कह रहा हूँ। तुम इसे असार समझो। अपने मनमें संवर-तत्त्वका ध्यान करो, और परस्त्रीसे बचो रहो। त्रिभुवनलक्ष्मीके विशाल हे रावण, तुम संवर-अनुप्रेक्षा सुनो। रागरहित होकर इस जीवको इस तरह रखना चाहिए कि इसे किसी तरहका कलङ्क न लगे। जो जिसका प्रतिद्वंद्वी है उसकी उससे रक्षा करो, कामसे अकामको, शल्यसे अशल्यको, दम्भसे अदम्भको, दोषसे अदोषको, पापसे अपापको, रोषसे अरोषको, हिंसासे अहिंसाको, मोहसे अमोहको, मानसे अमानको, लोभसे अलोभको, अज्ञानसे दृढ़ ज्ञानको, मत्सरसे दर्पनाशक अमत्सरको, वियोगसे दुर्निवार अवियोगको, अपथसे दुष्प्रवेश द्वारपथको, और मिथ्यात्वसे दृढ़ सम्यकत्वके समूहको बचाओ जिससे देहरूपी नगर नष्ट न हो जाय, हे नवनील कमल-नयन रावण, यह सब जानकर, तुम जाकर रामको जनकसुता अर्पित कर दो" ॥१-१०॥

[१४] रावण, तुम निर्जरा-तत्त्वका ध्यान करो जो दया-धर्मकी जड़ है। अच्छा हो तुम सीताको छोड़ दो और उसके अनुसार आचरण करो। हे दानवरूपी माहोंसे अग्राह्य लंकाधिप रावण तुम निर्जरा-अनुप्रेक्षा सुनो। षष्ठी, अष्टमी, दशमी, द्वादशीको

छट्ठम - दसम - दुवालसेहिँ । बहु - पाणाहारेँहिँ णीरसेहिँ ॥३॥
चउथेहिँ तिरत्त - तोरणेहिँ । एक्केक्कवार - किय - पारणेहिँ ॥४॥
मासोववास - चन्दायणेहिँ । अवरेहि मि दुद्धर - मुण्डणेहिँ ॥५॥
बाहिर-सयणेँहिँ अत्तावणेहिँ । तरु - मूलेँहिँ वर - वीरासणेहिँ ॥६॥
सज्झाय - झाण-मण-खञ्चणेँहिँ । वन्दण - पुज्जण - देवच्चणेहिँ ॥७॥
संजम-तव-णियमेँहिँ दूसहेहिँ । घोरेँहिँ बावीस - परीसहेहिँ ॥८॥
चारित्त-णाण - सम्म - दंसणेहिँ । अवरेहि मि दुप्पय - खण्डणेहिँ ॥९॥

घत्ता

जो जम्म-सएण सञ्चिउ दुक्किय-कम्म-मलु ।
सो गलइ असेसु वरणेँ दु-वड्डएँ जेम जलु ॥१०॥

[१५]

धम्मु अहिंसा दहवयण जाणहिँ मुहुँ दह-भेउ ।
तो वि ण जाणइ परिहरहि काइँ मि कारणु एउ ॥१॥

अहोँ जिणवर-कम-कमलिन्दिन्दिर । दसधम्माणुवेक्ख सुणेँ दस-सिर ॥२॥
पहिलउ एउ ताम बुज्झेव्वउ । जीव - दया - वरेण होएव्वउ ॥३॥
बीयउ मद्दवत्तु दरिसेव्वउ । तइयउ उज्जय - चित्तु करेव्वउ ॥४॥
चउथउ पुणु लाहवेँण जिवेव्वउ । पञ्चमउ वि तव-चरणु चरेव्वउ ॥५॥
छट्ठउ संजम - वउ पालेव्वउ । सत्तमु किम्पि णाहिँ मग्गेव्वउ ॥६॥
अट्ठमु बम्भचेरु रक्खेव्वउ । णवमउ सच्च-वयणु बोल्लेव्वउ ॥७॥
दसमउ मणेँ परिचाउ करेव्वउ । एँहु दस-भेउ धम्मु जाणेव्वउ ॥८॥
धम्मेँ होन्तएण सुहु केवलु । धम्में होन्तएण चिन्तिय-फलु ॥९॥

घत्ता

धम्मेण दसास घरु परियणु सव्वकम्मुहउ ।
विणु एक्कें तेण सयलु वि थाइ परम्मुहउ ॥१०॥

नीरस उपवास करना चाहिए। पक्षमें चार तीन ? या एक बार पारणा करनी चाहिए। एक माहके उपवास वाला चान्द्रायण व्रत, तथा और भी दण्डन-मुण्डन करना चाहिए! बाहर सोना या पेड़ोंके मूलमें या आतापिनी शिलापर वीरासन लगाना चाहिए। सुध्यात ध्यानसे मनको वशमें करना, वन्दना, पूजन और देवार्चा करना, दुःसह संयम, तप और नियमोंको पालना, और बाईस परीषह सहन करना, चारित्र ज्ञान, व्रत और दर्शनका अनुष्ठान तथा अन्य दण्डन-खण्डन करना चाहिए। इस प्रकार जो सैकड़ों जन्मोंसे पापरूपी कर्ममल संचित हैं, वे सब वैसे ही गल जाते हैं जैसे बाँध खोल देनेसे पानी बह जाता है ॥१-१०॥

[१५] हे रावण! तुम अहिंसा धर्मके दस अंगोंको जानते हो। फिर भी सीताका परित्याग नहीं करते। आखिर इसका क्या कारण है। जिनवरके चरणकमलोंके भ्रमर दशशिर रावण, दसधर्म-अनुप्रेक्षा सुनो। पहली तो यह बात समझो कि तुम्हें जीवदयामें तत्पर होना चाहिए। दूसरे मार्दव दिखाना चाहिए। तीसरे सरलचित्त होना चाहिए। चौथे अत्यन्त लाघवसे जीना चाहिए। पाँचवें तपश्चरण करना चाहिए। छठे संयम धर्मका पालन करना चाहिए। सातवें किसीसे याचना नहीं करनी चाहिए। आठवें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। नवें सत्य व्रतका आचरण करना चाहिए। दसवें मनमें सब बातका परित्याग करना चाहिए। तुम इन धर्मोंको जानो। धर्म होनेसे ही केवल सुखकी प्राप्ति होती है, और धर्मसे ही चिन्तित फल मिलता है। हे रावण! धर्मसे ही गृह, परिजन सब अभिमुख (अनुकूल) होते हैं, और एक उसके बिना सब विमुख हो जाते हैं ॥१-१०॥

[१६]

'मारुइ मण-आणन्दयर णिय-कुलेँ ससि अ-कलङ्क ।
जाणइ जाणिय सयल-जगेँ कहइ भय-भीएँ सुक्ख' ॥१॥

अण्णु वि दहवयणु मणेण मुणेँ । णामेण वोहि - अणुवेक्ख सुणेँ ॥२॥
चिन्तेव्वउ जीवेँ रत्ति-दिणु । "भवेँ भवेँ महु सामिउ परम-जिणु ॥३॥
भवेँ भवेँ लब्भउ समाहि-मरणु । भवेँ भवेँ होज्जउ सुगइ-गमणु ॥४॥
भवेँ भवेँ जिण-गुण-सम्पत्ति महु । भवेँ भवेँ दंसण-णाणेण सहु ॥५॥
भवेँ भवेँ सम्मत्तु होउ थिरयरु । भवेँ भवेँ [illegible] ॥६॥
भवेँ भवेँ सम्भवउ महन्त दिहि । भवेँ भवेँ उप्पज्जउ धम्म-णिहि" ॥७॥
रावण अणुवेक्खउ एयाउ । जिण - सासणेँ वारह-भेयाउ ॥८॥
जो पढइ सुणइ मणेँ सद्दहइ । सो सासय-सोक्ख-सयइँ लहइ' ॥९॥

घत्ता

सुन्दर - वयणाइँ लग्गाइँ मणेँ लङ्केसरहों ।
सइँ भुव-जुवलेण किउ जयकारु जिणेसरहों ॥१०॥

●

[५५. पञ्चवण्णासमो संधि]

'एत्तहेँ दुल्लहउ धम्मु एत्तहेँ विरहग्गि गरूयउ ।
आयहँ कवणु लएमि' दहवयणु दुवक्खीहूयउ ॥

[१]

'एत्तहेँ जिणवर-वयणु ण चुक्कइ । एत्तहेँ वम्महु वम्महों ढुक्कइ ॥१॥
एत्तहेँ भव-संसारु विरूवउ । एत्तहेँ विरह-परव्वसिहूयउ ॥२॥

[१६] मनके लिए आनन्दकर, अपने कुलका कलंकहीन चन्द्र हनुमान जानता था कि जानकी समस्त विश्वमें भय और भ्रांतिसे मुक्त है। फिर भी उसने कहा, "हे रावण अपने मनमें गुनो, और बोधि अनुप्रेक्षा सुनो। जीवको दिनरात यही सोचना चाहिए, जन्म-जन्ममें मेरे स्वामी प्रभु जिन हों, जन्म-जन्ममें मुझे समाधिमरण प्राप्त हो, जन्म-जन्ममें सुगति गमन हो, जन्म-जन्ममें जिनगुणोंकी सम्पदा मिले, जन्मजन्ममें दर्शन और ज्ञानका साथ हो, भवभवमें अचल सम्यक् दर्शन हो, भवभवमें मैं कर्ममलका नाश करूँ। जन्म-जन्ममें मेरा महान् सौभाग्य हो, जन्म-जन्ममें मुझे धर्मनिधि उत्पन्न हो। हे रावण, जिनशासनमें ये बारह प्रकारकी अनुप्रेक्षाएँ हैं, जो इन्हें पढ़ता, सुनता और अपने मनमें श्रद्धा करता है, वह शाश्वत शतशत सुखोंको पाता है। ये सुन्दर वचन रावणके मनमें गड़ गये और उसने अपने हाथ जोड़कर जिनका जयकार किया ॥१-१०॥

●

पचपनवीं सन्धि

रावणके सम्मुख अब बहुत बड़ी समस्या थी; एक ओर तो उसके सामने दुर्लभ धर्म था और दूसरी ओर विपुल-विरहाग्नि। इन दोनोंमें वह किसको ले, इस सोचमें वह व्याकुल हो उठा।

[१] एक ओर तो वह जिनवरके उपदेशसे नहीं चूकना चाहता था तो दूसरी ओर, उसके मर्मको काम भेद रहा था, एक ओर विरूपित भवसंसार था, तो दूसरी ओर वह कामके वशी-

एत्तहेँ णरएँ पडेव्वउ पाणेँहिँ । एत्तहेँ भिण्णु अणङ्गहोँ बाणेँहिँ ॥३॥
एत्तहेँ जीउ कसाएँहिँ रुब्भइ । एत्तहेँ सुरय-सोक्खु कहिँ लब्भइ ॥४॥
एत्तहेँ दुक्खु दुकम्महोँ पासिउ । एत्तहेँ जाणइ-वयणु सुहासिउ ॥५॥
एत्तहेँ हय-सरीरु चिलिसावणु । एत्तहेँ सुन्दरु सीयहेँ जोव्वणु ॥६॥
एत्तहेँ दुलहइँ जिण-गुण-वयणइँ । एत्तहेँ मुद्धइँ सीयहेँ णयणइँ ॥७॥
एत्तहेँ जिणवर-सासणु सुन्दरु । एत्तहेँ जाणइ-वयणु मणोहरु ॥८॥
एत्तहेँ असुहु कम्मु णिरु भावइ । एत्तहेँ सीय-अहरु को पावइ ॥९॥
एत्तहेँ णिन्दिउ उत्तम-जाइहेँ । एत्तहेँ केस-भारु वरु सीयहेँ ॥१०॥
एत्तहेँ णरउ रउद्दु दुरुत्तरु । एत्तहेँ सीयहेँ कण्ठु सु-सुन्दरु ॥११॥
एत्तहेँ णारइयहुँ गिर 'मरु मरु' । एत्तहेँ सीयहेँ मणहरु थणहरु ॥१२॥
एत्तहेँ जम-गिर 'लइ लइ धरि धरि' । एत्तहेँ जाणइ कडह-किसोयरि ॥१३॥
एत्तहेँ दुक्खु अणन्तु दुणित्थरु । एत्तहेँ सीयहेँ रमणु स-वित्थरु ॥१४॥
एत्तहेँ जम्मन्तरेँ सुहु विरलउ । एत्तहेँ सुललिय-ऊरुअ-जुवलउ ॥१५॥
एत्तहेँ मणुव-जम्मु अइ-विरलउ । एत्तहेँ जंघा-जुअलउ सरलउ ॥१६॥
एत्तहेँ एउ कम्मु ण वि विमलउ । एत्तहेँ सीयहेँ वरु कम-जुअलउ ॥१७॥
एत्तहेँ पाउ अणोवमु वज्झइ । एत्तहेँ विसएँहिँ मणु परिरुज्झइ ॥१८॥
एत्तहेँ कुविउ कयन्तु सु-भीसणु । एत्तहेँ दुत्तरु मयणहोँ सासणु ॥१९॥
कवणु लएमि कवणु परिसेसमि । तो वरि एवहिँ णरएँ पइसमि ॥२०॥

घत्ता

जाणमि जिह ण वि सोक्खु पर-तिय पर-दव्वु लयन्तहोँ ।
जं रुच्चइ तं होउ तहोँ रामहोँ सीय अ-देन्तहोँ ॥२१॥

भूत था, इधर यदि प्राण नरकमें पड़ेंगे तो उधर कामके बाणोंसे अंग छिन्न हो जायेंगे, इधर कषायोंसे वह अवरुद्ध हो जायगा तो उधर सुरतसुख उसे कहाँ मिलेगा; इधर दुष्कर्मोंका दुष्फल पाना है; तो उधर हँसता हुआ जानकीका मुख है। इधर घिनौना आहत शरीर है, उधर सीताका सुन्दर यौवन है, इधर दुर्लभ जिन गुण और वचन हैं, उधर सीताके मुग्ध नयन हैं, इधर सुन्दर जिनवर शासन है और उधर, मनोहर सीताका मुख है। यहाँ अत्यन्त अशुभ कर्म मनको अच्छा लग रहा है और उधर सीताके अधरोंको कौन पा सकता है, इधर उत्तम जातिकी निन्दा है, उधर सीताका उत्तम केशभार है, इधर दुस्तर रौद्र नरक है, और उधर सीताका सुन्दर कण्ठ है, इधर नारकियोंकी 'मारो मारो" वाणी है और इधर सीताके सुन्दर स्तन हैं। इधर यमकी "लो-लो पकड़ो-पकड़ो" वाणी है और उधर सुन्दरियोंमें सुन्दरी सीता है। इधर अनन्त दुस्तर दुख है और उधर सीताका सविस्तार रमण है। यहाँ जन्मान्तरमें भी सुख विरल है और वहाँ सुन्दर ऊरु युगल हैं। इधर विरल मानव-जन्म है, और उधर सरल सुन्दर जंघा युगल है। इधर यह कर्म बिलकुल ही पवित्र नहीं है उधर सीता का उत्तम चरण-युगल है, यहाँ अनुपम पापका बन्ध होगा उधर विषयोंमें मन अवरुद्ध हो जायगा। इधर सुभीषण कृतान्त कुपित हो जायगा और उधर मदनका दुस्तर शासन है। किसे स्वीकार करूँ और किसे छोड़ दूँ। अच्छा, इस समय नरकमें पड़ना ही ठीक है। मैं जानता हूँ कि पर-स्त्री और परद्रव्य लेनेमें किसी भी तरह सुख नहीं है, फिर भी उस रामको सीता नहीं दूँगा, फिर चाहे जो रुचे वह हो ॥१-२१॥

[२]

जइ अप्पमि तो लक्खणु णामहों । जणु बोल्लेसइ "सक्किउ रामहों" ॥१॥
मणें परिचिन्तेंवि जय-सिरि-माणणु । हणुवहों सम्मुहु चलिउ दसाणणु ॥२॥
'अरें गोवाल बाल धी-वज्जिय । वड्डउ मक्कडहि काइँ अलज्जिय ॥३॥
लवणु समुद्दहों पाहुडु पेसहि । सासय-थाणें सुहाइँ गवेसहि ॥४॥
मेरुहें कणय-दण्डु दरिसावहि । दिणयर-मण्डलें दीवउ लावहि ॥५॥
जोण्हाणिवहहें जोण्ह संपावहि । लोह-पिण्डें सण्णाहु भमाडहि ॥६॥
इन्दहों देव-लोउ अप्फालहि । मड्डु अमराएँ कहाउ संचालहि' ॥७॥
तं णिसुणेवि पवोल्लिउ सुन्दरु । पवर-भुअङ्ग-बद्ध-भुअ-पञ्जरु ॥८॥

घत्ता

'रावण तुज्झु ण दोसु लइ ढुक्कउ मुणिवर-भासिउ ।
अण्णहिँ कइहिँ दिणेहिँ खउ दीसइ सीयहें पासिउ' ॥९॥

[३]

दुव्वयणेंहिँ दहवयणु पलित्तउ । केसरि केसरग्गें णं छित्तउ ॥१॥
'मरु मरु लेहु लेहु सिरु पावहों । णं तो लहु विप्फोडेंवि धावहों ॥२॥
खरें वइसारहों सिरु मुण्डावहों । वेल्लएँ बन्धेंवि घरें घरें दावहों ॥३॥
तं णिसुणेवि पधाइय णिसियर । असि-झस-परसु-सत्ति-पहरण-कर ॥४॥
तहिँ अवसरें सरीरु विहुणेप्पिणु । पवर-भुअङ्ग-बन्ध तोडेप्पिणु ॥५॥
मारुइ भड भडअन्तु समुट्ठिउ । सणि अवलोयणें णाइँ परिट्ठिउ ॥६॥
जउ जउ देइ दिट्ठि परिसक्कइ । तउ तउ अहिमुहु को वि ण थक्कइ ॥७॥
भणइ दसाणणु 'सइँ संघारमि । खेत्तहों जाइ तं जें मरु मारमि' ॥८॥

[२] यदि मैं अर्पित कर दूँगा तो नामको कलङ्क लगेगा, लोग कहेंगे कि रामके डरसे ऐसा किया !" जयश्रीके अभिमानी रावण अपने मनमें यह सब विचार करके हनुमानके सम्मुख मुड़ा, और बोला, "अरे बुद्धिहीन बाल गोपाल, बँधा हुआ भी व्यर्थ क्यों बक रहा है। लवण-समुद्रमें पत्थर फेंकना चाहता है। शाश्वत स्थानमें सुख खोजना चाहता है। मेरुको सोनेका दण्डा दिखाना चाहता है। सूर्यमण्डलको दीपक दिखाना चाहता है। चन्द्रमामें चाँदनी मिलाना चाहता है। लोहपिण्डपर निहाईको घुमाना चाहता है। इन्द्रसे देवलोक छीनना चाहता है। मेरे आगे कहानी कहना चाहता है।" यह सुनकर सुन्दर पवनपुत्र (नागपाशसे दोनों हाथ जकड़े हुए थे) ने कहा, "रावण, इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, असलमें मुनिवरका कहा सत्य होना चाहता है, कुछ ही दिनोंमें सीतासे तुम्हारा नाश दिखाई देता है ॥१-६॥

[३] इन दुर्वचनोंसे रावण भड़क उठा, मानो सिंह सिंहको क्षुब्ध कर दिया हो। उसने कहा, "मारो-मारो, पकड़ो या सिर गिरा दो, नहीं तो इसका धड़ अलग कर दो। इसे गधेपर बैठाओ, सिर मुड़वा दो, रस्सीसे बांधकर घर-घर दिखाओ"। यह सुनकर राक्षस दौड़े, उनके हाथमें तलवार, झस, फरसा और शक्ति शस्त्र थे। उस अवसरपर हनुमान भी अपने शरीरको हिलाकर नागपाशको तोड़कर और भटोंका संहार करता हुआ उठा। देखने में वह ऐसा लगता मानो शनीचर ही प्रतिष्ठित हुआ हो, जहाँ-जहाँ उसकी दृष्टि जाती वहाँ-वहाँ सम्मुख आनेमें और कोई समर्थ नहीं पा रहा था। तब रावणने कहा, "मैं स्वयं मारूँगा, जहाँ जायगा, वहीं इसे मारूँगा"। इस प्रकार हनुमान, उस विद्याधर

घत्ता

वड्ढेंवि सेण्णु असेसु विज्जाहर-भवण- पईवहों ।

मुहेँ मसि-कुच्चउ देवि गउ उप्परि दहगीवहों ॥९॥

[४]

थिउ बलु सयलु मउप्फर-मुक्कउ । कोद्दस - चक्कु व थाणहों चुक्कउ ॥१॥

कमल-वणु व हिम- वाएँ दड्ढउ । दुविलासिणि- वयणु व दुवियड्ढउ ॥२॥

रयणिहिँ वर-भवणु वं णिद्दीवउ । किर उद्दवणु करेइ पईवउ ॥३॥

भणइ सहोअरु 'जाउ कु-दूअउ । एसडेण किं उत्तिमु हूअउ ॥४॥

गिरिवर-उवरि विहङ्गमु जन्तउ । तो किं सो जें होइ बलवन्तउ ॥५॥

एम भणेवि णिवारिउ रावणु । सण्णज्झन्तु भुवण-संतावणु ॥६॥

तावेंसहुँ वि तेण हणुवन्तें । णाइँ विहङ्गें णहयलें जन्तें ॥७॥

चिन्तिउ एक्कु खणन्तरु थाएँवि । कोव - दवग्गि मुहुमुप्पाएँवि ॥८॥

घत्ता

'लक्खण-रामहुँ कित्ति जगेँ णीसावण्ण भमाडमि ।

दहमुह-जीविउ जेम वरि थम्महिँ घरु उप्पाडमि' ॥९॥

[५]

चिन्तिऊण सुन्दरेँण सुन्दरं । भुअबलेण दहवयण - मन्दिरं ॥१॥

स - सिहरं स - मूलं समुक्खयं । स-वलियं (?) स-जाला-गवक्खयं ॥२॥

स - कुसुमं स - वारं स - तोरणं । मणि- कवाड - मणि - मत्तवारणं ॥३॥

मणि - तवङ्ग - सव्वङ्ग - सुन्दरं । वलहि - चन्दसाला - मणोहरं ॥४॥

हीर- गहण- सल- उब्भ- खम्भयं । गुमगुमन्त - रुण्टन्त - छप्पयं ॥५॥

विप्फुरन्त - णीसेस - मणिमयं । सूरकन्त - ससिकन्त - भूमयं ॥६॥

इन्दणील - वेरुलिय - णिम्मलं । पोमराय - मरगय - समुज्जलं ॥७॥

सर - पवाल - माला - पलम्बिरं । मोत्तिएक्क - झुम्बुक्क - झुम्बिरं ॥८॥

घत्ता

तं घरु पवर-भुएहिँ रसमसमसन्तु णिहालियउ ।

हणुव-पियहुँ णाइँ कड्ढेँ जोव्वणु दरमलियउ ॥९॥

द्वीपकी समस्त सेनाको वंचितकर, और उनके मुखपर स्याहीकी कूँची फेरनेके लिए रावणके ऊपर झपटा ॥१-६॥

[४] सारी सेना अहंकारशून्य होकर ऐसे रह गई, मानो ज्योतिषचक्र ही अपने स्थानसे च्युत हो गया हो, या कमलवन हिमसे ध्वस्त हो उठा हो या दुर्विलासिनीका मुख ही कलङ्कित हो गया हो या रत्नोंसे उत्तम भवन ही उद्दीप्त नहीं हो रहा हो। वह बार-बार उठना चाह रही थी। इतनेमें विभीषणने रावणसे कहा, "यह कुदूत है, इतनेसे क्या यह उत्तम हो जायगा। पहाड़के ऊपरसे पक्षी निकल जाता है, तो क्या इससे वह उसकी अपेक्षा बलवान् हो जाता है," यह कहकर उसने रावणका निवारण किया। इतनेपर भी, हनुमानने आकाशमें जाते हुए पक्षीकी भाँति, एक क्षण रुककर और क्रोधाग्निसे भड़ककर अपने मनमें सोचा कि मैं राम-लक्ष्मणकी असाधारण कीर्तिको संसारमें घुमाऊँ, और दशमुखके जीवनकी तरह इस घरको ही उखाड़ दूँ ॥१-६॥

[५] तब हनुमानने अपने भुजबलसे शिखर और नींव सहित उसके प्रासादको कसमसाते हुए दलित कर दिया। मानो हनुमानने लंकाका यौवन ही मसल दिया था। वह राजप्रासाद, जाल-गोखों, कुसुमद्वार, तोरण, मणिमय किवाड़ और छज्जोंसे सहित था। मणियोंके तवांग ? से सुन्दर तथा वलभी और चन्द्रशाला से मनोहर था। उसका तल हीरोंसे जड़ा था। और डोलों और खम्भे थे। जिनपर भ्रमर गुनगुना रहे थे। समस्त भूमि चमकते हुए मणियों तथा सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणियोंसे जड़ित थी। इन्द्रनील और वैदूर्यसे निर्मल पद्मराग और मरकत मणियोंसे उत्तम मूँगोंकी मालासे लम्बमान और मोतियोंके झूमरोंसे कुम्बिर था वह भवन ॥१-६॥

[६]

तहिँ सरिसाइँ जाइँ अणुलग्गइँ । पञ्च सहासइँ गयहुँ भग्गइँ ॥१॥
किउ कडमद्दणु पवणाणन्दें । णं सरवरें पइसरेंवि गइन्दें ॥२॥
पुणु वि स-इच्छएँ परिसक्कन्तें । पाडिय पुर-पओलि णियन्तें ॥३॥
सहइ समीरणि णहयलें जन्तउ । लक्खहँ जीउ णाइँ उक्कन्तउ ॥४॥
तहिं अवसरें सुरवर-पञ्चाणणु । चन्दहासु किर लेइ दसाणणु ॥५॥
मन्तिहिँ णवर कडक्खएँ धरियउ । 'किं पहु-णित्ति देव वीसरियउ ॥६॥
जइ णासइ सियालु विसराणणु । तो किं तहाँ रूसइ पञ्चाणणु' ॥७॥
एव भणेवि णिवारिउ जावेंहिं । जाणइ मणें परिओसिय तावेंहिं ॥८॥

घत्ता

जं वर-सिहरु दलेवि हणुवन्तु पधाविउ आहउ ।
सीयहें राहउ जेम परिओसें अङ्गें ण माइउ ॥९॥

[७]

जं जें पयट्टु समुद्दु किक्किन्धहाँ । पवरासीस दिण्ण कइचिन्धहाँ ॥१॥
'होहि वच्छ जयवन्तु चिराउसु । सूर-पयाव-हारि जिह पाउसु ॥२॥
लच्छी-सय-सहाणु जिह सरवरु । सिय-लक्खण-अमुक्कु जिह हलहरु' ॥३॥
तेण वि दूरत्थेण समिच्छिय । सिरु णामेंवि आसीस पडिच्छिय ॥४॥
पुणु एक्कल्ल-वीरु जग-केसरि । लद्धु आउच्छेंवि लङ्कासुन्दरि ॥५॥
मिलिउ गम्पि णिय-खन्धावारएँ । थिउ विमाणें घण्टा-टङ्कारएँ ॥६॥
तूरइँ हयइँ समुट्ठिउ कलयलु । तारावइ-पुरु पत्तु महाबलु ॥७॥
णिग्गय अङ्गङ्गय सहुँ चप्पें । अण्ण वि णिव णिय-णिय-माहप्पें ॥८॥

[६] उसीके साथ लगे हुए पाँच सौ मकान और भी ध्वस्त हो गये। पवनके आनन्द हनुमानने उन सबको ऐसे दल-मल कर दिया मानो गजेन्द्रने घुसकर सरोवरको ही रौंद डाला हो। फिर भी स्वेच्छासे घूमते हुए उसने जाते-जाते, पुरप्रतोलीको गिरा दिया। आकाशतलमें उड़ता हुआ हनुमान ऐसा सोह रहा था मानो लंकाका 'जीव' ही उड़कर जा रहा हो! उस अवसरपर, सुरवरसिंह रावण अपने हाथमें चन्द्रहास तलवार लेकर दौड़ा। परन्तु मन्त्रियोंने बड़े कष्टसे उसे रोकवाया। उन्होंने कहा,—"देव! क्या आप राजाकी मर्यादाको भूल गये। यदि शृगाल गुफाका मुख नष्ट कर दे, तो क्या उससे सिंह रूठ जाता है"। जब उसे यह कहकर रोका तो [illegible] अपने मनमें [illegible] [illegible] हुई! गृह शिखरको दलकर हनुमान जब लौटकर आया तो सीता ही की तरह राम आनन्दसे अपने अङ्गोंमें फूले नहीं समाये॥१–६॥

[७] जैसे ही हनुमान किष्किधनगरके सम्मुख आया तो वानरोंने उसे प्रवर आशीर्वाद दिया, "हे वत्स! तुम चिरायु और जयशील बनो, पावसकी तरह सूर्यके प्रतापको हरण करो, सरोवर की तरह लक्ष्मी और शचीसे सहित बनो। बलभद्रकी तरह लक्खण (लक्ष्मण और गुण) तथा प्रिय (सीता और शोभा) से अमुक्त रहो।" उसने भी दूरसे आदरपूर्वक उन सब आशीर्वादोंको ग्रहण किया। उसके अनन्तर जगसिंह अद्वितीय वीर वह, लंका सुन्दरी से पूछकर, अपने स्कन्धावारमें घंटाध्वनिसे मुखरित अपने विमानमें स्थित हो गया। तब तूर्य बज उठे और कल-कल शब्द होने लगा, जब वह महाबली सुग्रीवके नगरमें पहुँचा तो कुमार अङ्ग और अङ्गद अपने पिताके साथ निकले। अन्य राजे भी अपने अपने अमात्योंके साथ बाहर आये। वे सब मिलकर, उसे भीतर

तेहिँ मिलेँवि पइसारिउ भत्तउ । लक्खिउ लक्खण-रामेँहिँ एन्तउ ॥९॥

घत्ता

छिण्णन्तेँहिँ वण-वासेँ जो विहि-परिणामेँ णट्ठउ ।
सो पुण्णोदय-कालेँ जसु णाइँ पडीवउ दिट्ठउ ॥१०॥

[८]

तहोँ तइलोक्क - चक्क - मम्भीसहोँ । मारुइ चलणेँहिँ पडिउ हलीसहोँ ॥१॥
सिरु कम-कमल-णिसण्णु पसंसिउ । णं णीलुप्पलु पङ्कय - मीसिउ ॥२॥
वलेँण समुट्ठाविउ सइँ हत्थेँ । कुसलासीस दिण्ण परमत्थेँ ॥३॥
कण्ठउ कडउ मउडु कडिसुत्तउ । सयलु समप्पेँवि मणेँ पजलन्तउ ॥४॥
अद्धासणेँ वइसारिउ मारुइ । जं पेसिउ सीयएँ चूडामणि ॥५॥
तं अहिणाणु समुज्जल - णामहोँ । दाहिण - करयलेँ घत्तिउ रामहोँ ॥६॥
मणि पेक्खेँवि सव्वङ्गु पहरिसिउ । उरेँ ण मन्तु रोमञ्चु पदरिसिउ ॥७॥
जो परिओसु तेत्थु संभूअउ । दुक्करु सीय - विवाहेँ वि हूयउ ॥८॥

घत्ता

पभणइ राहवचन्दु 'महु अज्ज वि हियउ ण धीवइ ।
मारुइ अक्खि दुवत्ति किं मुइय कन्त किं जीवइ' ॥९॥

[९]

जिण-चलणारविन्द - दल-सेवहोँ । मारुइ कहइ वत्त वलएवहोँ ॥१॥
'जाणइ दिट्ठु देव ओयन्ती । अणुदिणु तुम्हहँ णामु लयन्ती ॥२॥
जहिँ अवसरेँ णिसियरेँहिँ गिलिज्जइ । तहिँ तेहएँ वि कालेँ पडिवज्जइ ॥३॥
इह-लोयहोँ तुहुँ सामि पियारउ । पर-लोयहोँ अरहन्तु भडारउ ॥४॥
झायइ साहु जेम परमप्पउ । उववासेहिँ सहसावइ अप्पउ ॥५॥
मइँ पुणु गम्पि णिएन्तहुँ तियसहुँ । पाराविय वावीसइँ दिवसहुँ ॥६॥
अङ्गुत्थलउ णवेवि समप्पिउ । तावहिँ महु चूडामणि अप्पिउ ॥७॥
अण्णु वि देव एउ अहिणाणु । जं लिउ गुत्त-सुगुत्तहँ दाणु ॥८॥

ले गये। तब राम लक्ष्मणने भी आते हुए उसे देखा। वनवासमें घूमते हुए, दैवके परिणामसे उनका जो यश नष्ट हो गया था अब पुण्योदयकालसे वह फिरसे उन्हें लौटता हुआ दिखाई दिया ॥१-१०॥

[८] तब त्रिलोकचक्रको अभय देनेवाले रामके चरणोंपर हनुमान गिर पड़ा। उनके चरणकमलोंपर उसका सिर ऐसा जान पड़ रहा था मानो नीलकमलमें मधुकर ही बैठा हो। रामने उसे अपने हाथोंसे उठाकर, कुशल आशीर्वाद दिया। कण्ठा, कटक, मुकुट और कटिसूत्र सब कुछ देकर, राम अपने मनमें उद्दीप्त हो उठे। हनुमानको उन्होंने अपने आधे आसनपर बैठाया। सीताने जो चूड़ामणि भेजा था, वह हनुमानने पहचानके लिए उज्ज्वल-नाम रामकी दाईं हथेलीपर रख दिया। उस समय जो परितोष रामको हुआ वह शायद सीताके विवाहमें भी कठिनाईसे हुआ होगा। तब रामने कहा—"आज भी मेरा हृदय शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहा है, हनुमान तुम शीघ्र कहो कि वह मर गई या जीवित है ॥१-९॥

[९] तब, जिन-चरणकमलके सेवक रामसे हनुमानने कहा—"हे देव, जानकीको मैंने प्रतिदिन तुम्हारा नाम लेते हुए—जीवित देखा है। जिस समय निशाचर उन्हें सताते, उस प्रतिकूल अवसरपर भी, तुम्हीं उसके इस लोकके स्वामी हो और परलोकके भट्टारक अरहंत साधुकी तरह वह परमात्माका ध्यान करती है, उपवास आदिसे आत्मक्लेश करती रहती है। मैंने जाकर स्त्रियोंके बीचमें बाईस दिनोंमें उन्हें पारणा कराई। जब मैंने प्रणाम करके अँगूठी दी तो उन्होंने मुझे यह चूड़ामणि अर्पित किया। और भी देव, यह पहचान है कि आपने गुप्त और सुगुप्त मुनियोंको दान

घत्ता

णिव्वाहिय घरें वसु-हार णिसुणिउ अक्खाणु जयाइहँ ।
अण्णु मि तं अहिणाणु कहेँ लग्गु देव जं भाइहेँ' ॥९॥

[१०]

तं णिसुणेँवि वलु हरिसिय-गत्तउ । 'कहेँ हणुवन्तु केम तहिँ पत्तउ' ॥१॥
एहएँ अवसरेँ णयणाणन्दें । हसिउ पियासणेँ थिएँण महिन्दें ॥२॥
'एयहोँ केरउ अक्खउ दक्खु । णिसुणें भडारा जं किउ साहसु ॥३॥
णरु णामेण अत्थि पवणञ्जउ । पहूलायएहोँ पुत्तु रएँ दुक्कउ ॥४॥
तासु दिण्ण मइँ अञ्जणसुन्दरि । गउ उक्खन्धें वरुणहोँ उप्परि ॥५॥
वारह-वरिसहँ(हँ) एक्कएँ वारएँ । वासउ देवि मिलिउ खन्धारएँ ॥६॥
उप्पण-जणेरिएँ सुएँ [illegible] कलङ्कउ लाएँवि ॥७॥
मइँ वि ताहेँ पइसारु ण दिण्णउ । वणेँ पसविय तहिँ एहु उप्पण्णउ ॥८॥
तं जि वइरु सुमरेँवि हणुवन्तें । तउ आएसें दूएं जन्तें ॥९॥
णयरेँ महारएँ किउ कडमद्दणु । हउ मि धरिउ स-कलत्तु स-णन्दणु ॥१०॥

घत्ता

भग्गइँ सुहड-सयाइँ गय-जूहइँ दिसहिँ पणट्ठइँ ।
एयहोँ रण-चरियाइँ पुत्तियाइँ देव मइँ दिट्ठइँ' ॥११॥

[११]

तं णिसुणेवि ति-कण्ण सहाएं । पुणु पोमाइउ दहिमुह-राएं ॥१॥
'अण्णु जइ वि पुरन्दरु आवइ । एयहोँ तणउ चरिउ को पावइ ॥२॥
वेण्णि महारिसि पडिमा-जोएं । अट्ठ दिवस थिय णियय-णिओएं ॥३॥
अण्णेक्केणहँ अब्भासण्णउ । महु धीयउ इमाउ ति-कण्णउ ॥४॥
ताम दुआसणेण संदीविउ । वणु चाउद्दिसु जालालीविउ ॥५॥
धगधगधगधगन्त - धूमन्तएँ । उह मह गुरुहूँ पासेँ ढुक्कन्तएँ ॥६॥

किया था। घरपर वसुहार बरसे और आपने जटायुका आख्यान सुना था। और एक पहचान यह भी है कि देव, आप भाईके पीछे गये थे" ॥१-९॥

[१०] यह सुनकर, राम हर्षित शरीर हो उठे, उन्होंने पूछा, "अरे हनुमान, बताओ तुम वहाँ कैसे पहुँचे।" इस अवसरपर अपने आसनपर बैठे हुए, नेत्रानन्ददायक महेन्द्रने हँसकर कहा, "अरे इसका साहस बहुत भारी है, आदरणीय आप सुनें। इसने जो-जो साहस किया है। राजा प्रह्लादका पुत्र, रणमें अजेय पवनञ्जय है, उसे मैंने अपनी लड़की अंजनीसुन्दरी दी थी, वह वरुणके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए गया था, वह बारह बरसमें एक बार, स्कन्धावारसे वास देकर उससे मिला। परन्तु पवनकी माताने ईर्ष्याके कारण कलंक लगाकर अंजनाको घरसे निकाल दिया, मैंने भी उसे प्रवेश नहीं दिया, वह वनमें चली गई। वहीं यह उत्पन्न हुआ। उसी वैरका स्मरणकर, आपके दूत कार्यके लिए आकाशमार्गसे जाते हुए इसने हमारे नगरको ध्वस्त कर दिया और मुझे भी इसने स्त्री और पुत्रके साथ पकड़ लिया। सैकड़ों सुभट भग्न हो गये और हाथियोंका झुण्ड दिशाओंमें भाग गया। इसका इतना रणचरित्र, हे देव मैंने देखा" ॥१-१०॥

[११] यह सुनकर, तीन कन्याओंके साथ, दधिमुख राजाने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—"स्वयं यदि पुरन्दर भी आये, परन्तु इसके चरित्रको कौन पा सकता है। दो महामुनि प्रतिमा योगसे अपने ध्यानमें आठ दिनसे स्थित थे। अत्यन्त निकट, एक और स्थानपर ये मेरी तीनों लड़कियां बैठी हुई थीं। इतनेमें वनमें आग लग गई, और वह चारों ओरसे आगकी लपटोंमें आ गया। धक-धक करती और धुँआती हुई, धीरे-धीरे वह आग गुरुओंके

तहिँ अवसरेँ हणुवन्तें जाएँ वि । मग्गा-पाउसु णाइँ उप्पाएँ वि ॥७॥
सो दावाणलु पसमिउ जावेँहिँ । हउ मि तेत्थु संपाइउ तावेँहिँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ कण्णाएँ समाणु महँ तुम्हहुँ पासेँ विसज्जेँ वि ।
अप्पुणु लङ्कहेँ सम्मुहु गउ सीहु जेम गलगज्जेँ वि ॥९॥

[१२]

दहिमुह-वयणु सुणेँ वि गब्भोलिउ । पिहुमइ हणुवहोँ मन्ति पबोल्लिउ ॥१॥
णिसुणेँ भडारा सहयलेँ जन्तेँ । पउमासालि हय हणुवन्तेँ ॥२॥
पुणु वज्जाउहु णरवर-केसरि । कलहेँ वि परिणिय लङ्कासुन्दरि ॥३॥
गरुअ-सणेहँ दिट्ठु विहीसणु । तेण समाणु करेँ वि संभासणु ॥४॥
कडुवालाव - कालेँ अवगणोयहुँ । अग्गएँ थिउ मन्दोअरि-सोयहुँ ॥५॥
णन्दण-वणु मि भग्गु हउ अक्खउ । इन्दइ किउ पहरन्तु विलक्खउ ॥६॥
पुणु वि बन्धाविउ अप्पाणउ । किर उवसमइ दसाणण-राणउ ॥७॥
णवरि विरुद्धँ कह वि ण थाइउ । सहोँ घर-सिहरु दलेप्पिणु आइउ ॥८॥

घत्ता

इय चरियाइँ सुणेवि वड-दुम-पारोह-विसालेँहिँ ।
अवरुण्डिउ हणुवन्तु राहवेँण स इँ भु य-डालेँहिँ ॥९॥

●

[५६ छप्पण्णासमो सन्धि]

हणुवागमेँ दिवसयरागमेँ दसरह-वंस-अणुकमवेँण ।
गज्जेँ वि दहवयणहोँ उप्परि दिण्णु पयाणउ राहवेँण ॥१॥

पास पहुँचने लगी। उस अवसरपर हनुमानने आकाशमें मायाके बादल उत्पन्नकर, छाया कर दी। जब तक वह दावानल शान्त हुआ तबतक हम लोग भी वहाँ पहुँचे। यहींपर कन्याओंके साथ मुझे आपके पास भेज दिया, और स्वयं सिंहकी तरह गरजकर लंकाकी ओर गया ॥१-९॥

[१२] दधिमुखके वचन सुनकर, पुलकित होकर, हनुमानके मन्त्री पृथुमतिने कहा, "सुनिये देव, सबसे पहले आकाश मार्गसे जाते हुए हनुमानने आसाली विद्या नष्ट कर दी, फिर नरवरसिंह वज्रायुधको मार दिया। तदनन्तर युद्ध करके लंकासुन्दरीसे विवाह किया, भारी स्नेहसे विभीषणसे भेंट की और उसके साथ बात-चीत की। अविनीत मन्दोदरी और सीता देवीकी कटु बातोंके प्रसङ्गमें वह बीचमें जा खड़ा हो गया। नन्दन वन उजाड़ डाला और अक्षयकुमारको भी मार दिया। प्रहार करते हुए इन्द्रजीतको व्याकुल कर दिया। फिर अपने आपको बँधवा दिया। रावण राजाको उपदेश दिया। विरुद्ध होने पर उसे किसी तरह मारा भर नहीं। उसका गृहशिखर नष्ट करके ये चले आये।" यह सब चरित्र सुनकर रामने, वट-पेड़के बरोहकी तरह विशाल अपनी भुजाओंसे हनुमानका आलिङ्गन कर लिया ॥१-६॥

●

छप्पनवीं संधि

हनुमानके आने और सूर्योदय होनेपर दशरथ-कुल उत्पन्न रामने गरजकर रावणके ऊपर अभियान किया।

[१]

हयाणन्द-भेरी वही दिण्ण सङ्खा । करप्फालियाणेय-तूराण लक्खा ॥१॥
जयं णन्दणं णन्दिघोसं सुघोसं । तुरं सुन्दरं मोहणं देवघोसं ॥२॥
वरङ्गं वरिट्ठं गहीरं पहासं । कमाणन्द-तूरं सिरीवद्धमाणं ॥३॥
सिवं सन्तियत्थं सुकल्लाण-धेयं । महामङ्गलत्थं णरिन्दाहिसेयं ॥४॥
पसण्णज्झुणी दुन्दुही णन्दिसद्दं । पवित्तं पसत्थं च भद्दं सुभद्दं ॥५॥
विवाहप्पियं पत्थिवं णायरीयं । पयाणुत्तमं वद्धणं पुण्डरीयं ॥६॥
महन्त-तूरइँ णामेंहि एएँहि । पुणु अण्णण्णइँ अण्णेंहि भेएँहि ॥७॥
डउँडउँ-डउँडउँ-डमरुअ-सद्देंहि । तरडक-तरडक-तरडक-णद्देंहि ॥८॥
धुम्मुक-धुम्मुक-धुम्मुक-तालेंहि । रं-रं-रं-रुअन्त-बमालेंहि ॥९॥
तक्किस-तक्किस-सरेंहि मणोज्जेंहि । दुणिकिटि-दुणिकिटि-घरिसद्द-वज्जेंहि ॥१०॥
गेगगु-गेगगु-गेग्गगु-घाएँहि । पयणेय-भेय-संघाएँहि ॥११॥

घत्ता

तं तूरहँ सद्दु सुणेप्पिणु राहव-साहणु संमिलइ ।
सरि-सोत्तेंहि आवेंवि आवेंवि सलिलु समुद्दहों जिह मिलइ ॥१२॥

[२]

सण्णद्धु कइद्धय-पवर-राउ । सण्णद्धु अङ्गु अङ्गय-सहाउ ॥१॥
सण्णद्धु हणुउ पइरिस-विसट्टु । रावण-णन्दणवण-मइयवट्टु ॥२॥
सण्णद्धु गवउ अण्णु वि गवक्खु । जम्बुण्णाउ दहिमुहु दुण्णिरिक्खु ॥३॥
सण्णद्धु विराहिउ सीहणाउ । सण्णद्धु कुन्दु कुमुएं सहाउ ॥४॥
सण्णद्धु णीलु णलु परिमियङ्गु । सण्णद्धु सुसेणु वि रणें अभङ्गु ॥५॥
सण्णद्धु सीहरहु रयणकेसि । सण्णद्धु वालि-सुउ चन्दरासि ॥६॥
सण्णद्धु स-तणउ महिन्दराउ । मइ लच्छिभुत्ति पिहुमइ-सहाउ ॥७॥
चन्दप्पहु चन्दरीचि अण्णु । सण्णद्धु असेसु वि राम-सेण्णु ॥८॥

[१] हर्षोंसे आनन्द-भेरी बज उठी, शंख बजने लगे और लाखों तूर्य हाथोंसे आस्फालित हो उठे। उनमें मङ्गल तूर्योंके नाम थे—जय, नन्दन, नन्दिघोष, सुघोष, शुभ, सुन्दर, सोहन, देवघोष, वरङ्ग, वरिष्ठ, गम्भीर, प्रधान, जनानन्द, श्रीवर्धमान, शिव, शान्ति, अर्थ, ?? सुकल्याण, महामङ्गलार्थ, नरेन्द्राभिषेक, प्रसन्न-ध्वनि, दुन्दुभि, नन्दीघोष, पवित्र, प्रशस्त, भद्र-सुभद्र, विवाह प्रिय, पार्थिव नागरीक—प्रयाणोत्तम, वर्धन और पुण्डरीक। इनके सिवा और भी तरह-तरहके तूर्य थे। डउँ-डउँ-डउँ, डमरु शब्द, तरडक-तरडक नाद, घुम्मुक-घुम्मुक ताल, कँ-कँ-कँ कल-कल, तक्किस-तक्किस मनोहर स्वर, दुणिकिटि, दुणिकिटि, वाद्य और गेमादु-गेमादु-घात इत्यादि अनेक भेद संघातोंसे युक्त तूर्य बज उठे। उन तूर्योंके शब्दको सुनकर राघवकी सेना वैसे ही इकट्ठी होने लगी, जैसे नदियोंके स्रोत आकर समुद्रमें मिलते हैं ॥१-१२॥

[२] कपिध्वज नरेश सुग्रीव तैयार होने लगा। अङ्गदके साथ अङ्ग भी सन्नद्ध हो गया। विशेष हर्षसे रावणके नन्दन वनको उजाड़नेवाला हनुमान भी तैयारी करने लगा, गवय और गवाक्ष सन्नद्ध होने लगे, जाम्बवंत और दुदर्शनीय दधिमुख भी तैयार होने लगे। विराधित और सिंहनाद भी तैयार होने लगे। कुमुद सहाय कुंद तैयार होने लगे, परिमिताक्ष नल और नील तैयार होने लगे। सिंह रथ और रत्नकेशि तैयार होने लगे। बालि पुत्र भी तैयार होने लगा। अपने पुत्रके साथ राजा महेंद्र तैयार होने लगा। लक्ष्मीभुक्ति और पृथुमति भी तैयार होने लगे, और भी चन्द्रप्रभ, चन्द्रमरीची आदि तैयार होने लगे। इस तरह रामकी अशेष सेना सन्नद्ध हो उठी। एक और तैयार

घत्ता

अण्णेक्कु वि सण्णज्झन्तउ उप्परि जय-सिरि-माणणहों।
लक्खिज्जइ लक्खणु कुद्धउ णं खय-कालु दसाणणहों ॥९॥

[३]

अण्णेक्क सुहड सण्णद्ध के वि। पिय-कन्तहें आलिङ्गणउ देवि ॥१॥
अण्णेक्कहों धण तम्बोलु देइ। अण्णेक्कु समप्पियउ वि ण लेइ ॥२॥
'मइँ कन्तें समाणेव्वउ दलेहिं। गय-पण्णेंहिं रहवर-पोप्फलेहिं ॥३॥
णरवर-संचूरिय-चुण्णएण। रिउ-जय-सिरि-वहुअए दिण्णएण' ॥४॥
अण्णेक्कहों जाएँ स-कन्त देइ। ओहुल्लइँ फुल्लइँ णरु ण लेइ ॥५॥
'ण समिच्छमि हउँ तुहुँ लेहि भज्जें। घल्लिउ सिरु णिवडइ सामि-कज्जें' ॥६॥
अण्णेक्कहों धण भूसणउ देइ। अण्णेक्कु तं पि तिण-समु गणेइ ॥७॥
'किं गन्धें किं चन्दण-रसेण। मइँ अङ्गु पसाहेव्वउ जसेण' ॥८॥

घत्ता

अण्णेक्कहों धण अप्पाहइ 'हिम-ससि-सङ्ख-समुज्जलइँ।
करि-कुम्भइँ णाह दलेप्पिणु आणेज्जहि मुत्ताहलइँ' ॥९॥

[४]

अण्णेक्केसहँ वि सुहङ्कराइँ। सज्जियइँ विमाणइँ सुन्दराइँ ॥१॥
घण्टा-टङ्कार-मणोहराइँ। रुण्टन्त-मत्त-महुअर-सराइँ ॥२॥
ससि-सूरकन्त-कर-णिब्भराइँ। वहु-इन्दणील-किय-सेहराइँ ॥३॥
पवलय-माला-रङ्खोलिराइँ। मरगय-रिञ्छोलि-पसोहिराइँ ॥४॥
मणि-पउमराय-समुज्जलाइँ। वेडुज्ज-वज्ज-पह-णिम्मलाइँ ॥५॥
मुत्ताहल-माला-धवलियाइँ। किङ्किणि-घग्घर-सर-मुहलियाइँ ॥६॥
धुवंत-धवल-धुअ-धयवडाइँ। वज्जन्त-सङ्ख-सय-सङ्कडाइँ ॥७॥

होता हुआ क्रुद्ध लक्ष्मण ऐसा जान पड़ता था, मानो जयश्रीके अभिमानी रावणके ऊपर जयकाल ही आ रहा हो ॥१–६॥

[३] कोई-कोई सुभट अपनी पत्नियोंको आलिङ्गन देकर सन्नद्ध हो गये। किसी एकको उसकी धन्या पान दे रही थी, कोई एक अर्पित भी उसे ग्रहण नहीं कर रहा था। उसका कहना था कि आज मैं सैन्यदलों, गजवरों, रथवरों, पोप्फलों और विजय लक्ष्मीरूपी वधू द्वारा दिये गये, नरवरोंसे सञ्चूर्णित चूर्णकसे अपने आपको सम्मानित करूँगा। किसी एकको उसकी पत्नी खिले हुए फूलोंकी मालती माला दे रही थी, परन्तु वह यह कहकर नहीं ले रहा था, कि मैं इसको नहीं चाहता। आर्ये, तुम्हीं इसे ले लो, मेरा यह सिर तो आज स्वामीके काममें ही निपट जायगा। किसी एकको उसकी पत्नी आभूषण दे रही थी, परन्तु वह उसे तृणके समान समझ रहा था। उसने कहा, 'क्या गंधसे और क्या रससे ? मैं यशसे अपने तनको मण्डित करूँगा।' किसी एककी पत्नीने यह इच्छा प्रकट की कि हे नाथ, तुम गज-कुम्भोंको फाड़कर हिम, चन्द्र और शंखकी तरह उज्ज्वल मोतियोंको अवश्य लाना ॥१–६॥

[४] एक ओर शुभङ्कर सुन्दर विमान सजने लगे, जो घण्टोंकी टंकारसे सुन्दर, रुन-झुन करते हुए भौंरोंकी झंकारसे युक्त थे। चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त मणियोंकी किरणोंसे व्याप्त थे। उनके शिखर इन्द्रनील मणियोंके बने थे। लटकती हुई मालाओंसे जो आन्दोलित, हीरोंकी पंक्तियोंसे शोभित, पद्मराग मणियोंसे उज्ज्वल, वैदूर्य और वज्र मणियोंकी प्रभासे निर्मल, मोतियोंकी मालासे धवल, किंकिणियोंकी घर-घर ध्वनिसे मुखरित थे। कम्पित पताकाएँ उनके ऊपर फहरा रही थीं। सैकड़ों

सुग्गीवेँ रयणुज्जोविमाणइँ । बिहि बिण्णि विमाणइँ ढोइयाइँ ॥८॥

घत्ता

णन्दिय-जण-जय-जयकारेँण लक्खण-रामारूढ किह ।
सुर-परिमिय-पवर-विमाणेँहिँ बेण्णि वि इन्द-पडिन्द जिह ॥९॥

[५]

अणोक्क-पासेँ किय सारि-सज्ज । सुविसाल-सुघण्टा-धवल-गेज्ज ॥१॥
अलि-झङ्कारिय गय-घड पयट्ट । विहलङ्घल णिब्भर-मय-विसट्ट ॥२॥
सिन्दूर-पङ्क-पङ्किय-सरीर । सिक्कार-फार-गज्जण-गहीर ॥३॥
उम्मेट्ठ णिरङ्कुस जाइ थाइ । मरहस्थि मणोहर वेस णाइँ ॥४॥
अण्णेक्क-पासेँ रह रहिय-थट्ट । चूरन्त परोप्परु पहेँ पयट्ट ॥५॥
स-तुरङ्ग स-सारहि स-कइ-चिन्ध । णाणाविह-वर-पहरण-समिद्ध ॥६॥
अणोक्क-पासेँ बल-दरिसणाइँ । वज्जन्त-तूर-सर-भीसणाइँ ॥७॥
आयड्ढिय-चाव-महासराइँ । उग्गामिय-भामिय-असिवराइँ ॥८॥

घत्ता

अण्णेक्क-पासेँ हिंसन्तउ हयवर-साहणु णीसरइ ।
सुकलत्तु जेम्व सुकुलीणउ पय-संचारु ण वीसरइ ॥९॥

[६]

अण्णोक्के-सहुँ अण्णेक्क वीर । गज्जन्ति समर-संघट्ट-धीर ॥१॥
एक्केण वुत्तु 'सोसमि समुद्दु' । अण्णेक्कु भणइ 'महु णिसियरिन्दु' ॥२॥
अण्णेक्कु भणइ 'हउँ धरमि सेण्णु' । अण्णेक्कु भणइ 'महु कुम्भयण्णु' ॥३॥
अण्णेक्कु भणइ 'महु मेहणाउ' । अण्णेक्कु भणइ 'महु भय-णिणाउ' ॥४॥
अण्णेक्कु भणइ 'भो णिसुणि मित्त । हउँ वलहोँ स-हत्थेँ देमि कम्प' ॥५॥
अण्णेक्कु भणइ 'किं गज्जिएण । अज्ज वि सङ्गाम-वियक्किएण ॥६॥

शंख बज रहे थे। इस तरह सुग्रीव रत्नोंसे दीप्त दो विमानोंमें राम और लक्ष्मणको ले गया। बन्दियोंके जय-जयकार शब्दके साथ, विमानमें बैठे हुए राम और लक्ष्मण ऐसे मालूम होते थे मानो देवोंसे घिरे हुए प्रवर विमानोंके साथ, इन्द्र और प्रतीन्द्र हों ॥१-६॥

[५] कितने ही के पास, अंबारीसे सजी हुई, सुविशाल सुन्दर घण्टाघुंघरुओंसे गाती हुई गजघटा थी। जो भौंरोंसे संकुल, विह्वलांग और परिपूर्ण मदसे विशिष्ट थी। सिंदूरके पंखसे उसका शरीर पंकिल था और जो शीत्कारके स्फार और गर्जनसे गम्भीर थी। महावतसे रहित और निरंकुश वह वेश्याकी भाँति सुन्दर रूपसे मल्हाती हुई जा रही थी। कईके पास रथ और रथियोंके समूह एक दूसरेको चूर-चूर करते हुए चल पड़े। वे अश्वों, सारथी कपिध्वज और तरह-तरहके अस्त्रोंसे समृद्ध थे। कईके पास पैदल सेना थी, जो बजते हुए तूणीरों और बाणोंसे भयङ्कर थी। महा धनुर्धोंसे सहित थी। वह, उत्तम खड्गोंको निकालकर घुमा रही थी। कईके पाससे हींसती हुई उत्तम अश्वोंकी सेना निकली। वह सुकलत्रकी तरह सुकुलीन और पदसंचारको नहीं भूल रही थी ॥१-६॥

[६] एक ओर, समरकी भिड़न्तमें धीर, वीर योधा गरज रहे थे। एकने कहा "मैं समुद्र सोख लूँगा।" एक औरने कहा, "मैं निशाचरराजका शोषण करूँगा।" एक औरने कहा, "मैं सेनाको पकड़ लूँगा।" एक औरने कहा, "मैं कुम्भकर्णको पकड़ूँगा।" एक औरने कहा, "मैं मेघनादको"। एक औरने कहा— "मैं भटसमूहको पकड़ूँगा।" एक औरने कहा, "हे मित्र! सुनो। मैं अपने हाथसे सीता रामके हाथमें दूँगा।" एक औरने कहा,

सयलु वि जाणिज्जइ तहिँ जि कालेँ। पर-बलेँ ओवडियएँ सामि-सालेँ' ॥७॥
अण्णेक्कु वीरु णिय-मणेँ विसण्णु । 'मइँ सामिहेँ अवसरेँ काइँ दिण्णु ॥८॥

घत्ता

अण्णेक्कु सुहडु ओवग्गइ अग्गएँ थाएँ वि हलहरहों ।
'जं बुत्तउ मइँ सिरु सन्देँण तं होसइ पहु अवसरहों' ॥९॥

[७]

अण्णेक्क- पासेँ सुविसालियाउ । थिअउ विज्जाहर - पालियाउ ॥१॥
पण्णत्ती बहुय - विरूविणी । वेयाली णहयल - गामिणी ॥२॥
थम्भणियाकरिसणि मोहणी ॥३॥
सामुद्दी रुद्दी केसवी । भुवइन्दी सन्दी वासवी ॥४॥
कम्भाणी रउरव - दारुणी । पोरिसी मायव - वारुणी ॥५॥
चन्दी सूरी वइसाणरी । मायङ्गि मयन्दी साणरी ॥६॥
हरिणी वाराहि गुरुक्कमी । बल - सोसणि गरुड - विहङ्गमी ॥७॥
पच्चइ मयरद्धय - रूविणी । आसालि - विज्ज बहु - रूविणी ॥८॥

घत्ता

सण्णद्धउ असेसु वि साहणु रामहोँ सुग्गीवहोँ तणउ ।
णं जम्बूदीउ पयट्टउ लङ्कादीवहोँ पाहुणउ ॥९॥

[८]

संचल्लेँ णिय - बंसुब्भवेण । दिट्ठइँ सु-णिमित्तइँ राहवेण ॥१॥
गम्भीरउ वम्भणु सिद्ध - सेस । जिण पुज्जँ वि बाहु सुवेस वेस ॥२॥
दप्पणउ सु-कलसु सु - सहसवत्तु । णिग्गन्थ - रूउ पण्डुरउ छत्तु ॥३॥
पण्डुरउ हत्थि पण्डुरउ चमरु । पण्डुरउ तुरउ पण्डुरउ चमरु ॥४॥

"अरे अभीसे संग्रामके बिना ही गरजनेसे क्या, यह सब उसी समय जाना जायगा, जब स्वामिश्रेष्ठ राम शत्रु-सेनाको विघटित करेंगे।" एक और वीर यह सोचकर अपने मनमें खिन्न हो गया, कि मैंने स्वामीके लिए अवसर क्यों दिया। एक और सुभट, रामके आगे खड़ा होकर गरज उठा, "जब मेरा सिर युद्धमें उड़ जायगा, तभी प्रभुका अवसर पूरा होगा" ॥१-६॥

[७] एक और सुभटके पास विद्याधरों द्वारा साधित विद्याएँ थीं। पण्णत्ती, बहुरूपिणी, वैताली, आकाशतलगामिनी, स्तम्भिनी, आकर्षणी, मोहिनी, सामुद्री, रुद्री, केशवी, भोगेन्द्री, स्कन्दी, वासवी, ब्रह्माणी, रौरवदारिणी, नैर्ऋति, वायवी, वारुणी, चन्द्री, सूरी, वैश्वानरी, मातंगी, मृगेन्द्री, वानरी, हरिणी, वाराही, तुरंगमी, बलशोषणी, गारुड़ी, पन्नगई ??, कामरूपिणी, बहुरूपकारिणी और आशाली विद्या। इस प्रकार राम और सुग्रीवकी सेना सन्नद्ध हो गई। मानो जम्बूद्वीप ही लंकाद्वीपका अतिथि होना चाह रहा था ॥१-६॥

[८] अपने कुलमें उत्पन्न होनेवाले रामके चलते ही, शुभ शकुन दिखाई दिये। जैसे गन्धोदक, चन्दन, सिद्ध, शेष (नाग), जिनपूजा करके व्याध ? और उत्तम वेशवाला दर्पण, शंख, सुन्दर कमल, नग्न साधु, सफेद छत्र, सफेद गज, सफेद भ्रमर, सफेद अश्व और सफेद चमर। सब अलंकारोंको पहने

सव्वालङ्कार पवित्त णारि । दहि-कुम्भ-विहत्थी वर-कुमारि ॥५॥
णिद्धूमु जलणु अणुकूलु वाउ । पियमेलावउ कुलुगुलइ काउ ॥६॥
सुणिमित्तइँ णिएँवि जसुज्जएण । वलएउ वुत्तु अम्बुज्जएण ॥७॥
'धण्णोऽसि देव तउ सहलु गमणु । आयइँ सु-णिमित्तइँ लहइ कवणु' ॥८॥

घत्ता

विहसेप्पिणु वुच्चइ रामेण रइ सु-णिमित्तइँ अन्ताहुँ ।
जग-लग्गण-खम्भु भडारउ जिणवरु हियएँ वहन्ताहुँ ॥९॥

[९]

संचल्लें राहव - साहणेण । संघट्टिउ साहणु साहणेण ॥१॥
चिन्धेण चिन्धु रहु रहवरेण । छत्तेण छत्तु गउ गयवरेण ॥२॥
तुरएण तुरङ्गु णरु णरेण । चलणेण चलणु करयलु करेण ॥३॥
वलु रण - रहसुच्छिउ णहेँ ण माइ । संचल्लिउ देवागमणु णाइँ ॥४॥
थोवन्तरे दिट्ठु महा - समुद्दु । सुंसुअर - मयर - जलयर - रउद्दु ॥५॥
मच्छोहर - णक्क - गाह - घोरु । कल्लोलावग्गु तरङ्ग - थोरु ॥६॥
वेला - वङ्कुल्लु पवड्ढणग्गु । फेणुज्जल - तोय - तुसार देन्तु ॥७॥
तहोँ उवरि पयट्टउ राम-सेण्णु । णं मेह-जालु णहयलेँ णिसण्णु ॥८॥

घत्ता

णरवइहिँ विमाणारूढेँहिँ लङ्घिउ लवण-समुद्दु किह ।
सिद्धेँहिँ सिद्धालउ जन्तेँहिँ चउगइ-भव-संसारु जिह ॥९॥

[१०]

थोवन्तरेँ तहोँ सायरहोँ मज्झेँ । वेलन्धर-पुरेँ तियसहुँ असज्झेँ ॥१॥
विज्जाहर सेउ - समुद्द वे वि । थिय मग्गएँ दारुणु जुज्झु देवि ॥२॥
'भड तुम्हहँ कुद्धउ कयन्तु अज्जु । को सक्कइ सक्कहोँ हरेँवि रज्जु ॥३॥
को पइसइ भीसणेँ जलण-जालेँ । को जीवइ दुक्कएँ पलय - कालेँ ॥४॥

हुए पवित्र नारी। हाथमें दहीका घड़ा लिये हुए उत्तम कन्या, निर्धूम आग, अनुकूल पवन, और प्रियसे मिलाने वाला, कौएका काँव-काँव शब्द। इन्हें देखकर यशसे उन्नत जाम्बवन्तने रामसे कहा, "हे देव! आप धन्य हैं, आपका यह गमन सफल है, भला इतने सुनिमित्त किसे मिलते हैं!" तब रामने हँसकर कहा, "विश्वके आधार स्वामी भट्टारक जिनको हृदयमें धारणकर यात्रा करनेसे ही ये सुनिमित्त अपने आप हुए" ॥१-८॥

[९] रामकी सेनाके प्रस्थान करते ही, वाहनसे वाहन टकराने लगे, चिह्नसे चिह्न, रथवरसे रथ, छत्रसे छत्र, गजवरसे गजवर, तुरगसे तुरग, नरसे नर, चरणसे चरण, करतलसे करतल भिड़ने लगे। रण-रससे भरी हुई सेना आकाशमें नहीं समा सकी, वह देवागमनके समान जा रही थी! थोड़ी दूरपर उन्हें महासमुद्र दीख पड़ा। वह शिशुमार, मगर और जलचरोंसे रौद्र था। मच्छधर, नक्र और ग्राहसे घोर, और स्थूल तरंगोंसे तरंगित था। फेनसे उज्ज्वल तोय और तुषारसे युक्त उसका बहुत बड़ा तट था ?? रामकी सेना उसपर ठहर गई मानो मेघ जाल ही नभतलमें ठहर गया हो। विमानोंपर आरूढ़ राजाओंने लवण समुद्र उसी तरह लाँघ लिया जैसे सिद्धालयको जाते हुए सिद्ध चार गतियों वाले भव-संसारका अतिक्रमण कर जाते हैं ॥१-९॥

[१०] उस सागरके मध्यमें थोड़ी दूरपर, देवोंको भी असाध्य वेलंधर नगर था, उसमें रहने वाले सेतु और समुद्र नामके दोनों विद्याधर भयंकर युद्ध करनेके लिए आगे आकर स्थित हो गये। उन्होंने कहा, "मरो, तुमपर आज कृतांत क्रुद्ध हुआ है। इन्द्रका राज्य कौन हरण कर सकता है, भीषण ज्वालमालामें कौन

को सेस-फणा-मणि-रयणु लेइ । को लङ्कहेँ अहिमुहु पउ वि देइ' ॥५॥
चवारिय समय वि अमरिसेण । 'अहों किक्किन्धाहिव अहों सुसेण ॥६॥
अहों कुमुअ कुन्द सुणि मेहणाय । णल णील विराहिय पवण-जाय ॥७॥
दहिमुह माहिन्द महिन्द-राय । अवर वि जे णरवर के वि आय ॥८॥

घत्ता

लइ वलहों णलहों जइ सक्कहों देवाहय णारक्खएँहिँ ।
कहिँ लङ्का-उवरि पयाणउ सेउ-समुद्दहिँ बद्धएँहिँ ॥९॥

[११]

एत्थन्तरेँ जयसिरि-लाहवेण । सुग्गीउ पपुच्छिउ राहवेण ॥१॥
'एए जे दणु दीसन्ति के वि । कसु केरा थिय पहरणइँ लेवि' ॥२॥
तं वयणु सुणेँवि पणमिय-सिरेण । पुणु पुणु थोत्तुग्गीरिय-गिरेण ॥३॥
सुग्गीवें पभणिउ रामचन्दु । 'एँहु सेउ भडारा एँहु समुद्दु ॥४॥
दहवयणहों केरउ णामु लेवि । पाइक्काचारेँ थक्क वे वि ॥५॥
आयहुँ पडिमल्लु ण को वि समरेँ । अह भिडन्ति जुज्झु णल-णील णवरेँ' ॥६॥
तं णिसुणेँवि रामहों हियउ भिण्णु । णिद्दिसेण विहि मि आएसु दिण्णु ॥७॥
पणिवाउ करेप्पिणु ते पयट्ट । रोमञ्च-उच्च-कञ्चुअ-विसट्ट ॥८॥

घत्ता

णलु धाइउ समुहु समुद्दहों सेउहेँ णीलु समावडिउ ।
गउ गयहों मइन्दु मइन्दहों जिह ओरालेँवि अब्भिडिउ ॥९॥

[१२]

ते भिडिय परोप्परु रणेँ रउद्द । विज्जाहर वेण्णि वि णल-समुद्द ॥१॥
विण्णाणेँहिँ करणेँहिँ करुहेहिँ । सब्भेहिँ असेसेहिँ आवट्टेहिँ ॥२॥

प्रवेश कर सकता है। प्रलयके आनेपर कौन बच सकता है। शेषनागके फनसे मणि कौन तोड़ सकता है। लंकाके सम्मुख कौन पग बढ़ा सकता है।" अमर्षसे भरकर सब लोगोंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने और भी कहा—"अरे किष्किंधा-नरेश, अरे सुषेण, अरे कुमुद, कुन्द, मेघनाद, नल, नील, विराधित, पवनजात, दधिमुख, महेन्द्र, माहेन्द्रराज, सुनो, और भी जो-जो नरपति हैं वे भी सुनें। यदि सम्भव हो तो शत्रुजनोंसे नम्र होकर आप लौट जायें। सेतु और समुद्रके रहते हुए आपका लंकाके प्रति प्रस्थान कैसा ?" ॥१-६॥

[११] इसी अन्तरमें जयश्रीके लिए शीघ्रता करनेवाले रामने सुग्रीवसे पूछा—"ये जो राक्षस हथियार लिये हुए दिखाई दे रहे हैं, वे किसके अनुचर हैं ?" यह सुनकर नतमस्तक सुग्रीवने स्तुति-वचन पूर्वक रामसे कहा—"आदरणीय, ये सेतु और समुद्र विद्याधर हैं, ये यहाँ रावणका नाम लेकर, सेवावृत्तिमें नियुक्त हैं। युद्धमें इनका प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं है। केवल नल और नील इनके प्रति युद्ध कर सकते हैं।" यह सुनकर रामका हृदय खिन्न हो गया। उन्होंने तत्काल उन दोनोंको आदेश दिया। वे भी रामको नमस्कार करके, पुलकके कारण ऊँचे कंचुकोंसे विशिष्ट होकर लड़ने लगे। नल समुद्रके सम्मुख दौड़ा और नील सेतुसे जा भिड़ा, वैसे ही जैसे गजराज गजराजसे गरजकर भिड़ते हैं ॥१-६॥

[१२] रणमें भयंकर वे आपसमें भिड़ गये, दोनों विद्याधर और दोनों नल तथा समुद्र। विज्ञानकरण करकह तथा और भी दूसरे समस्त आयुधोंसे वे प्रहार करने लगे। दोनोंके चेहरे

पहरन्ति धगित विप्फुरिय-वयण । रत्तुप्पल-दल - सारिच्छ - णयण ॥३॥
एत्थन्तरें रावण-किङ्करेण । मेल्लिय मयरहरी विज्ज तेण ॥४॥
धाइय गज्जन्ति गुलुगुलन्ति । वेला-कल्लोलुल्लोल देन्ति ॥५॥
एत्तहें वि णलेण विरुद्धएण । समरङ्गणें जयसिरि-लुद्धएण ॥६॥
आयामेंवि महिहर-विज्ज मुक्क । जलु सयलु वि पडिपूरन्ति ढुक्क ॥७॥
तं माया-सायरु दरमलेंवि । विज्जाहर-करणें उच्छलेंवि ॥८॥

घत्ता

जलु उप्परि कीणु समुद्दहों णालु वि सेउहें सिर-कमलें ।
विहिं वेण्णि वि सण्ड धरेप्पिणु घल्लिय रामहों पय-जुअलें ॥९॥

[१३]

सेउ-समुद्द बे वि जं आणिय । णल-णीलेंहिं समाणु सम्माणिय ॥१॥
तेहि मि पवर पसाहँवि कण्णउ । तहों लक्खणहों स-हत्थें दिण्णउ ॥२॥
सच्चसिरी कमलच्छि विसाला । अण्ण वि रयणचूल गुणमाला ॥३॥
पञ्च वि कण्णउ देवि कुमारहों । थिय पाइक्क सीय-भत्तारहों ॥४॥
एक्क रयणि गय कह वि विहाणउ । पुणु अरुणुग्गमें दिण्णु पयाणउ ॥५॥
साहणु पत्तु सुवेलु महीहरु । ताहि मि सुवेलु पवरु विज्जाहरु ॥६॥
धाइउ जिह गइन्दु ओरालेंवि । भीसणु करें धणुहरु अप्फालेंवि ॥७॥
भिडइ ण भिडइ रणङ्गणें जावेंहिं । सेउ-समुद्देंहिं वारिउ तावेंहिं ॥८॥

घत्ता

एएँहिं समाणु जुज्झन्तहँ अह पर-जणवएँ जम्पणउ ।
पहु पाएँहिं राहवचन्दहों मं मारावहि अप्पणउ ॥९॥

[१४]

चलणेवहों पणमिउ सा सुवेलु । णं पढम-जिणहों सेयंस-धवलु ॥१॥
णिसि एक्क वसेंवि संचल्लु सेण्णु । णं पलय-घणु भुवणाय-छण्णु ॥२॥

तमतमा रहे थे और नेत्र रक्तकमलकी तरह आरक्त थे। इसी बीचमें रावणके अनुचरने मकरहरी (सामुद्री) विद्या छोड़ी। वह गरजती, गुल-गुल करती और तटपर तरंगोंका समूह उछालती हुई दौड़ी, तब इधर युद्धके प्रांगणमें जयश्रीके लोभी, नलने विरुद्ध होकर, सामर्थ्यके साथ महीधर विद्याका प्रयोग किया। वह समस्त जलको समाप्त करती हुई पहुँची। इस प्रकार उस माया समुद्रको नष्टकर और विद्याधरकरणसे उसे उन्मूलन कर नलने समुद्रके ऊपर और नीलने सेतुके ऊपर उड़कर, उनके सिर-कमलको बलपूर्वक पकड़कर, रामके चरणोंमें रख दिया ॥१-९॥

[१३] जब उन्होंने सेतु और समुद्रको ला दिया तो रामने उन दोनोंका समान रूपसे आदर किया। उन्होंने भी प्रसन्न होकर अपने हाथसे कुमार लक्ष्मणको अपनी सत्यश्री, कमलाक्षी, विशाला, रत्नचूला और गुणमाला, ये पाँच कन्याएँ देकर सीता-पति रामकी सेवा स्वीकार कर ली। एक रात बीतनेपर जैसे ही प्रभात हुआ, सूर्योदय होने पर रामने कूच कर दिया। तब उनकी सेनाको सुबेल पहाड़ मिला। उस पर भी सुबेल नामक एक विद्याधर था। वह गजकी तरह गरजकर, अपने भयंकर धनुषको टंकारकर दौड़ा। लेकिन जब तक वह युद्ध-प्रांगणमें लड़े या न लड़े, तब तक सेतु और समुद्रने उसका निवारण कर दिया। उन्होंने कहा, "जो दूसरे जनपदमें जाकर इस प्रकार युद्ध कर रहे हैं, उन रामके पैरों में गिर पड़ो। अपना घात मत करो" ॥१-९॥

[१४] तब सुबेल रामके सम्मुख झुक गया मानो प्रथमजिन (आदिनाथ) के सामने श्रेष्ठ श्रेयांस झुक गया हो। एक रात ठहर-कर सेना चल दी, मानो भ्रमरोंसे आच्छन्न कमलवन हो, मानो

णं लीलएँ जिण-समसरणु जाइ । पुणुरुत्तेंहिँ देवागमणु णाइँ ॥३॥
थोवन्तरु वलु चिक्कमइ जाम । लक्खिज्जइ लङ्काणयरि ताम ॥४॥
आरामेंहिँ सीमेंहिँ सरवरेंहिँ । बहु-वण्णणवण्णेंहिँ मणोहरेंहिँ ॥५॥
पायार-वार - गोउर - घरेंहिँ । रह-तिक्क-चउक्केंहिँ चच्चरेंहिँ ॥६॥
कामिणि-मन्दिरेंहिँ सुहावणेंहिँ । चउहट्टेंहिँ टेण्टेंहिँ आवणेंहिँ ॥७॥
दीहिय-विहार - चेइय - हरेंहिँ । धुव्वन्तेंहिँ चिन्धेंहिँ दीहरेंहिँ ॥८॥

घत्ता

धय-णिवहु पवण-पडिकूलउ दूरत्थेंहिँ सिहासियउ ।
णं लक्खण-रामागमणेण रावण-मणु डोल्लावियउ ॥९॥

[१५]

जं दिट्ठ लङ्क विज्जाहरेंहिँ । किउ हंसदीवे आवासु तेहिँ ॥१॥
हंसरहु रणङ्गणेँ णिज्जिणेवि । णं थिय रिउ-सिरेँ असि णिक्खणेवि ॥२॥
आवासिय भड पासेइयङ्ग । रह मेल्लिय उज्जोविय तुरङ्ग ॥३॥
खञ्चियइँ विमाणइँ वद्ध गोण । सण्णाह विमुक्क स-कवय-तोण ॥४॥
णाणाविह-विज्जाहर - समूहु । णं हंसदीवेँ थिउ हंस-जूहु ॥५॥
सइँ सब्भेँ कएँ केसवेण । णं मुक्कु पयाणउ वासवेण ॥६॥
तहिँ सुहड के वि पभणन्ति एव । 'जुज्झेव्वउ सुन्दरु अज्जु देव' ॥७॥
अण्णेक्कु भणइ 'भो भीरु-चित्त । उव्वलिहूअउ काइँ मित्त' ॥८॥

घत्ता

अण्णेक्क के वि पिय-वयणेंहिँ समउ कलत्तेंहिँ सुहु रमहिँ ।
आराहेंवि अक्खेवि पुज्जेवि जिणु पणमन्ति स इं भुएँहिँ ॥९॥

सुन्दर-कण्डं समत्तं

लीलापूर्वक जिनेन्द्र का समवसरण जा रहा हो और उसमें बार-बार देवागमन हो रहा हो, जैसे ही थोड़ी दूर सैन्य चला है कि इतने में लंकानगरी दिखाई दी है जो आरामों, सीमाओं, सरोवरों, अनेक सुन्दर नंदनवनों, प्रकाशद्वारों, गोपुरों, घरों, रथ्याओं, तिगड्डों, चौकों-चौराहों, सुहावने नारीनिवासों, चार तरह के रास्तों, धूतों, बाजारों, लम्बे बिसारों, चैत्यघरों और उड़ते हुए दीर्घ चिन्हों के द्वारा जो (शोभित था)। हवा से प्रतिकूल उड़ते हुए ध्वजसमूह दूर से ऐसे मालूम होते थे मानो राम और लक्ष्मण ने रावणके मनको डगमगा दिया हो ॥ ६ ॥

[१५] जब विद्याधरों ने लंकाद्वीपको देखा तो उन्होंने हंसद्वीप में अपना डेरा डाला। हंसरथ को युद्धके आंगनमें जीतकर और मानो शत्रु के सिरपर तलवार रखकर वे लोग स्थित हो गए। पसीनेसे लथपथ सैनिक ठहरा दिए गए। रथ छोड़ दिए गए और घोड़े खोल दिए गए। विमान ठहरा दिए गए, बैल बाँध दिए गए। कवच सहित तूणीर और युद्ध सज्जा छोड़ दी गई। नाना विद्याधर समूह ऐसे मालूम हो रहे थे मानो हंसद्वीप पर हंसोंका समूह ठहरा हो। मानो ब्रह्मा, रुद्र, और केशवके साथ इन्द्र ने अपना प्रयाण स्थगित कर दिया हो। इस अवसर पर कोई सुभट इस प्रकार कहते हैं—

"हे देव, आज मैं सुंदरयुद्ध करूँगा।" एक और सुभट कहता है—"हे भीरुहृदय मित्र, उतावली क्यों कर रहे हो ?"

घत्ता—कितने ही दूसरे अपने भवनों और स्त्रियों के साथ सुख से रमण करते हैं तथा आराधना-पूजा और अर्चा कर, अपनी बाहुओं से प्रणाम करते हैं।